महर्षि मनु

बनाम

डॉ० अम्बेडकर

डॉ० सुरेन्द्र कुमार

(मनुस्मृति शोधकर्त्ता एवं भाष्यकार)

* ओ३म् *

महर्षि मनु

बनाम

डॉ० अम्बेडकर

लेखक :

डॉ० सुरेन्द्र कुमार

(मनुस्मृति शोधकर्त्ता एवं भाष्यकार)

प्रकाशक :

सत्यधर्म प्रकाशन

पुस्तक प्राप्ति स्थान

[illegible] ा)

चलभाष : 08930737619, 09812560233

प्रकाशक : **सत्यधर्म-प्रकाशन**

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

फोन : 08930737619, 09812560233

21
सुरेन्द्र-म

पुस्तक प्राप्ति-स्थान :

१. **हरयाणा साहित्य-संस्थान**
महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर, हरयाणा-१२४१०३

२. **आर्यसमाज मन्दिर काकरिया**
रायपुर दरवाजे के बाहर, अहमदाबाद (गुजरात)

३. **कन्या गुरुकुल महाविद्यालय चोटीपुरा**
जिला ज्योतिषनगर (मुरादाबाद), उत्तरप्रदेश

४. **आर्यसमाज मन्दिर सहजपुर बोघा**
अहमदाबाद (गुजरात)

५. **दयानन्दमठ दीनानगर**
जिला गुरदासपुर (पंजाब) फोन-०९४१७३३६६७६

द्वितीय संस्करण : सन् २०११ ई०

मूल्य : १५०.०० रुपये

मुद्रक : **सुवीरा मुद्रणालय**
सुखपुरा बाईपास, रोहतक
फोन : 01262-276674
मो० : 09254052111, 09729090111

प्रकाशकीय

इस पुस्तक के कुछ सकारात्मक उद्देश्य

मनु और मनुस्मृति-विशेषज्ञ डॉ० सुरेन्द्रकुमार मनुस्मृति-भाष्यकार,, समीक्षक और प्रक्षेपानुसन्धानकर्ता के रूप में सुविख्यात हैं और आज इस विषय के विद्वानों में सर्वोपरि स्थान रखते हैं। उनका मनुस्मृतिभाष्य और प्रक्षेपानुसन्धान देश-विदेश में ख्याति प्राप्त कर चुका है। साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर की गयी प्रक्षेपों की तर्कपूर्ण पहचान प्रत्येक पाठक को उनके निष्कर्ष स्वीकार करने के लिए विवश कर देती है। मनु, मनुस्मृति और वैदिक सभ्यता की धूलि-धूसरित होती छवि को इन्होंने अपनी शोध-गंगा से निर्मल, ग्राह्य और सुरक्षित बना दिया है।

'महर्षि मनु बनाम डॉ० अम्बेडकर' इनकी महत्त्वपूर्ण शोधकृति है। इसमें बिल्कुल नये दृष्टिकोण से महर्षि मनु और डॉ० अम्बेडकर का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। यह पुस्तक इन महान् उद्देश्यों को सामने रखकर लिखी गयी है—

१. पाश्चात्य और उनके अनुगामी लेखकों ने गलत निष्कर्षों के आधार पर, जाने-अनजाने, वैदिककालीन भारतीय संस्कृति, सभ्यता और इतिहास का विकृत रूप उपस्थित कर पाठकों को भ्रमित कर दिया है। उसका यथार्थ रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना इस पुस्तक का प्रथम उद्देश्य है।

२. भारत के आदिकालीन राजर्षि और महर्षि मनु तथा उनकी स्मृति को लेकर न केवल आज का पाठकवर्ग भ्रान्तियों में भटक रहा है, आज के कथित बुद्धिजीवी और राजनेता भी भ्रान्तियों के शिकार हैं। उन भ्रान्तियों का तर्क, प्रमाण और अन्त:साक्ष्यों से निराकरण करना इसका दूसरा उद्देश्य है।

३. राष्ट्रीय एकता और सद्भाव में अभिवृद्धि करना इसका तीसरा महान् उद्देश्य है। पाश्चात्य लेखकों के अनुवादों और मतों के अनुकरण पर डॉ० अम्बेडकर ने मनु, मनुस्मृति, वैदिक संस्कृति-सभ्यता, साहित्य और परम्पराओं का जो प्रतिशोधात्मक विरोध किया है, उससे भारतीय समाज में कटुता एवं वर्गवैमनस्य का वातावरण निर्मित हुआ है। इस पुस्तक में मनु से तालमेल रखने वाले और प्राचीन मनुओं के समर्थक डॉ० अम्बेडकर के कथनों को उपस्थित कर वैमनस्य की खाई को पाटने का यत्न किया गया है। यह नया दृष्टिकोण पाठकों को जहां एक सुखद आश्चर्य की अनुभूति करायेगा वहां डॉ० अम्बेकर के समीक्षक पहलू को भी पाठकों के सामने रखेगा, अभी तक उनका निन्दात्मक पक्ष ही रखा गया है। यह दृष्टिकोण पाठकों को एक नयी दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करेगा।

आशा है कि पाठक इस परिश्रम से लाभ उठायेंगे।

आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक, एम.ए.
प्रकाशक

विषय-सूची

महर्षि मनु बनाम डॉ० अम्बेडकर

——०——

प्रथम अध्याय

मनुवाद का यथार्थ और मनुस्मृति की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा

(१.१) मनुस्मृति और मनुवाद : भ्रान्तियों का जन्म

विगत सहस्राब्दी के लगभग आठ सौ वर्षों तक भारत विदेशी शासकों के अधीन रहा। इस अवधि में उन विदेशी शासकों के साहित्य, संस्कृति, आचार-व्यवहार और सम्प्रदायों का भारतीय जनमानस पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। उनके प्रभाव से भारतीय संस्कृति, साहित्य, धर्म, परम्परा आदि का ह्रास हुआ। उनके कारण हमारे चिन्तन-मनन, आचार-विचार, आहार-विहार आदि में परिवर्तन आया, और आज भी आ रहा है।

विदेशी शासनों में भी सर्वाधिक गम्भीर और दूरगामी प्रभाव पड़ा अंग्रेजी शासन और अंगेजियत का। उन्होंने भारतवासियों को राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं अपितु बौद्धिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी गुलाम बनाने का षड्यन्त्र किया। इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने पादरीपुत्र लॉर्ड बेबिंगटन मैकाले द्वारा प्रस्तावित शिक्षा पद्धति को लागू किया। इस शिक्षा पद्धति का लक्ष्य जहां अंग्रेजी शासन के लिए क्लर्क तैयार करना था वहीं भारतीयों को भारतीयता से काटकर ईसाइयत के लिए आधारभूमि तैयार करना था। इसी लक्ष्य को आगे बढ़ाने के अनेक अंग्रेज लेखकों ने भारतीय धर्म, धर्मशास्त्र, साहित्य, इतिहास आदि का अंग्रेजियत के अनुकूल लक्ष्य को सामने रखकर मूल्यांकन किया और प्रत्येक विषय में भ्रान्ति, शंका तथा हीनता का भाव उत्पन्न किया। उन्होंने सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय इतिहास और परम्परा को अमान्य करते हुए नये सिरे से उसका पक्षपातपूर्ण विश्लेषण करके उसके अधिकांश भाग को मिथक तथा प्राचीन को नवीन घोषित किया।

अंग्रेजी शासन काल में उच्च शिक्षा के नाम पर अनेक लोगों को भारत से इंग्लैंड भेजा गया और वहां वही पढ़ाया गया जो अंग्रेज कूटनीतिक दृष्टि से चाहते थे। वहां से लौटने पर उन्हीं लोगों को सता में भागीदारी दी। उन्होंने जो पढ़ा था, भारत में आकर मैकाले द्वारा प्रतिपादित शिक्षापद्धति के अन्तर्गत वही बताया, पढ़ाया, लिखाया। इस तरह अंग्रेजी मान्यताओं से प्रभावित उनके मानसपुत्रों का एक पूरा वर्ग तैयार हो गया जिसकी विचार-वंश-परम्परा आज तक चली आ रही है।

१५ अगस्त १९४७ को भारत के राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र होने पर अंग्रेज तो चले गये किन्तु अंग्रेजियत यहीं रह गयी। मैकाले की शिक्षापद्धति से भारत आज तक भी मुक्त नहीं हो पाया है। अंग्रेजों द्वारा स्थापित मान्यताएं आज भी गौरव के साथ पढ़ाई और मानी जा रही हैं। उनके बोये विष के बीज कहीं भाषावाद, कहीं नस्लवाद, कहीं क्षेत्रवाद, कहीं घृणावाद के रूप में आज भी फलित हो रहे हैं और विडम्बना तो यह है कि हम भारतीय ही आज उन मान्यताओं के ध्वजवाहक बने हुए हैं।

मनुस्मृति के स्वरूप को विकृत करने वाला तो वह पूर्वज भारतीय ब्राह्मण-वर्ग था जिसने अपने विकृत आचरण, स्वार्थपूर्ण मानसिकता और पक्षपातपूर्ण लक्ष्यों को शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के लिए मनुस्मृति में समय-समय पर मनचाहे प्रक्षेप किये, किन्तु मनुस्मृति और मनुवाद के विषय में प्रायोजित रूप में भ्रान्ति-जाल फैलाने वाले पहले लेखक अंग्रेज ही थे। उसके पश्चात् भारतीयों की वह पीढ़ी है जिन्होंने अंग्रेज लेखकों के निष्कर्षों को स्पंज की तरह सोखा और फिर ज्यों की त्यों उगल दिया। उसी परम्परा में डॉ० भीमराव रामजी अम्बेडकर भी थे जो अंग्रेजी परम्परा के निष्कर्षों के बौद्धिक अनुसरणकर्त्ता के साथ-साथ मनु और मनुस्मृति के तीव्र विरोधी भी बने। क्योंकि वे दलित वर्ग से सम्बद्ध नेता थे, अतः दलितों के बहुत बड़े वर्ग ने उन्हीं की मान्यताओं का अन्धानुकरण किया। इस प्रकार एक बहुत बड़ा वर्ग मनु और मनुस्मृति विषयक भ्रान्तियों का शिकार हो गया, और आज भी है।

अंग्रेजों के बाद उनकी विचार-परम्परा को वामपन्थी लेखकों ने हाथों-हाथ अपना लिया। उसका कारण यह था कि अंग्रेज लेखकों के निष्कर्ष वामपन्थियों के राजनीतिक लक्ष्य के अनुकूल और उसके साधक थे। आज स्थिति यह है कि भारत से शासन उठने के उपरान्त अंग्रेज लेखक अपनी पूर्वाग्रही मान्यताओं को छोड़कर तटस्थ निष्कर्ष प्रस्तुत करने लगे हैं जबकि वामपन्थी लेखक उन्हीं विकृत निष्कर्षो पर अडिग हैं; क्योंकि वामपन्थियों का राजनीतिक स्वार्थ तो उन्हीं निष्कर्षों से पूरा हो सकता है।

इन सब कारणों से आज भारत में ऐसा वातावरण बना हुआ है कि कोई भी राजनीतिक दल किसी भी मुद्दे को पकड़कर, चाहे वह संस्कृति, भाषा एवं धर्म-विरोधी है अथवा राष्ट्रीय एकता-विरोधी है, उसके माध्यम से वोट पाने की अपवित्र कोशिश करता रहता है। मनु और मनुवाद आज कुछ राजनीतिक दलों के लिए राजनीतिक शस्त्रास्त्र हैं, तो कुछ वर्गों के लिए सांस्कृतिक शस्त्रास्त्र हैं। जिस देश का वामपंथ प्रभावित केन्द्रीय शिक्षामन्त्री (या मानव संसाधन मन्त्री) प्राचीन भारत के वास्तविक इतिहास को कल्पित कहे और अवास्तविक एवं कल्पित इतिहास को वास्तविक कहे, कहे ही नहीं अपितु उस पर दुराग्रह करे; उस देश का रखवाला केवल ईश्वर ही हो सकता है! इससे सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है कि अंग्रेज और वामपन्थी लेखकों द्वारा फैलायी गयी भ्रान्तियां कितने व्यापक और गम्भीर स्तर तक पैठ बना चुकी हैं। यही स्थिति मनु, मनुस्मृति और मनुवाद की है। निहित स्वार्थी राजनीतिक दलों और दुराग्रही इतिहासकारों द्वारा आज जान-बूझकर 'मनुवाद' का गलत अर्थ लोगों के मन-मस्तिष्क में डाला जा रहा है। वे वर्ग और लेखक इस शब्द का अर्थ 'जन्मना जाति-पांति, छूत-अछूत, नीच-ऊंच, छुआछूतयुक्त समाजव्यवस्था और रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी विचारधारा' के अर्थ में करते हैं। इस भ्रान्ति से आज के समीक्षक, बुद्धिजीवी और राजनेता भी भ्रमित हैं। यों समझिए कि 'मनु, मनुस्मृति और मनुवाद' का भ्रान्त अर्थ और विरोध एक सुनियोजित अफवाह के समान फैला हुआ है। इस अफवाह को फैलाने में कितने ही ऐसे लोग हैं जिनके द्वारा मनुस्मृति के गम्भीर-अगम्भीर अध्ययन की बात

तो छोड़ दीजिए, उन्होंने मनुस्मृति को देखा तक नहीं होता। उसका दुष्परिणाम यह है कि आज हम मनु के वंशज भारतीयों को ही भारतीय इतिहास के आदिपुरुष, आदिविधिप्रणेता, आदिसमाज-व्यवस्थापक, आदि-धर्मशास्त्रकार और आदिराजा को अभिमान के साथ अपशब्द कहते हुए पाते हैं; प्रशंसा के स्थान पर निन्दा करते हुए देखते हैं। भारतीय अतीत को पिछड़ा और भारतीय प्राचीन इतिहास तथा महापुरुषों को कल्पित कहने के लिए आज किसी पूर्वाग्रही अंग्रेज लेखक को भारत में आकर अगुवाई करने की आवश्यकता नहीं है। आज उनके मानसपुत्र भारतीय स्वयं झंडा उठाकर अपने अतीत को पिछड़ा कहने और अपने प्राचीन इतिहास तथा महापुरुषों को कल्पित कहने की रट अफीमचियों के समान लगाते मिलेंगे। देखिए, कूटनीति की कैसी विडम्बना को हम भोग रहे हैं!!

(१.२) मनुवाद का सही अर्थ

'मनुवाद' का शाब्दिक अर्थ है-'महर्षि मनु की विचारधारा।' मनुस्मृति में वर्णित मौलिक सिद्धान्तों के अनुसार मनु की विचारधारा है— **'गुण, कर्म, योग्यता के श्रेष्ठ मूल्यों पर आधारित वर्णाश्रम-व्यवस्था।** मनु की वर्णव्यवस्था ऐसी समाजव्यवस्था थी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि, गुण, कर्म एवं योग्यता के आधार पर किसी भी वर्ण का चयन करने की स्वतन्त्रता थी और वह स्वतन्त्रता जीवनभर रहती थी। उस वर्णव्यवस्था में जन्म का महत्त्व उपेक्षित था, ऊंच-नीच, छूत-अछूत का कोई भेदभाव नहीं था, व्यक्ति-व्यक्ति में असमानता नहीं थी, पक्षपातपूर्ण और अमानवीय व्यवहार सर्वथा निन्दनीय था। एक ही शब्द में कहें तो **'मनुवाद'** मानववाद का ही दूसरा नाम था।

इसके विपरीत, गुण, कर्म, योग्यता के मानदण्डों की उपेक्षा करके जन्म, असमानता, पक्षपात और अमानवीयता पर आधारित विचारधारा **'गैर मनुवाद'** कहलायेगी।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'मनुवाद' शब्द का प्रयोग आज जान-बूझ कर गलत अर्थ में किया जा रहा है और इसे सोची-समझी रणनीति के अन्तर्गत किया जा रहा है, ताकि एक बहुत बड़े जनसमुदाय को भारत के अतीत और अन्य समुदायों से काटकर

अलग-अलग किया जा सके। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि स्वयं को कोई कितना ही विद्वान्, लेखक, समीक्षक, विचारक या इतिहासवेत्ता कहे, 'मनुवाद' को जातिव्यवस्था के संदर्भ में प्रयुक्त करने वाला व्यक्ति मनुस्मृति का मौलिक, गम्भीर, विश्लेषणात्मक और यथार्थ अध्येता नहीं माना जा सकता। उसने जो कुछ पढ़ा है वह छिछले तौर पर, और दूसरों के दृष्टिकोण से पढ़ा है; क्योंकि, मौलिक रूप से 'मनुस्मृति' उस ब्रह्मापुत्र स्वायंभुव मनु की रचना है जो भारतीय इतिहास का क्षत्रियवर्णधारी आदिराजा था। ऐतिहासिक दृष्टि से उस समय जाति-व्यवस्था का उद्भव ही नहीं हुआ था। जब जाति—व्यवस्था का उद्भव ही नहीं हुआ था, तो 'मनुवाद' का जाति-व्यवस्थापरक अर्थ करना ऐतिहासिक अज्ञानता, मनुस्मृति-ज्ञान की शून्यता और दुराग्रह मात्र ही है? मेरी इस आपत्ति का उत्तर वे लेखक दें जो 'मनुवाद' का जातिव्यवस्थापरक अर्थ करते हैं। मैं उन लेखकों के समक्ष यह चुनौती उपस्थित करता हूं। क्या वे इसका प्रामाणिक ऐतिहासिक उत्तर देना स्वीकार करेंगे?

(१.३) भारत में मनुस्मृति एवं मनु की प्रतिष्ठा और प्रामाणिकता

(अ) भारतीय साहित्य में मनु की प्रतिष्ठा एवं प्रामाणिकता

पाश्चात्य तथा आधुनिक लेखकों के मतानुसार वेदों के बाद संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों का रचनाकाल आता है। ये वैदिक साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इन वैदिक ग्रन्थों से लेकर अंग्रेजी शासनकाल तक भारत में मनु और मनुस्मृति की सर्वोच्च प्रतिष्ठा, प्रामाणिकता तथा वैधानिक महत्ता रही है। देश-विदेश के लेखकों के अनुसार, महर्षि मनु ही पहले वह व्यक्ति हैं, जिन्होंने संसार को एक व्यवस्थित, नियमबद्ध, नैतिक एवं आदर्श मानवीय जीवन जीने की पद्धति सिखायी है। वे मानवों के आदिपुरुष हैं, वे आदि धर्मशास्त्रकार, आदि विधिप्रणेता, आदि विधिदाता (लॉ गिवर), आदि समाज व्यवस्थापक और राजनीति-निर्धारक, आदि राजर्षि हैं। मनु ही वह प्रथम धर्मगुरु हैं, जिन्होंने यज्ञपरम्परा का जनता में प्रवर्तन किया। उनके द्वारा रचित धर्मशास्त्र, जिसको कि आज **'मनुस्मृति'** के नाम से जाना जाता है, सबसे प्राचीन स्मृतिग्रन्थ है। अपने साहित्य और इतिहास को उठाकर देख लीजिए, वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक काल तक एक

सुदीर्घ परम्परा उन शास्त्रकारों, साहित्यकारों, लेखकों, कवियों और राजाओं की मिलती है, जिन्होंने मुक्तकण्ठ से मनु की प्रशंसा की है।

(क) प्राचीनतम वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणग्रन्थों में मनु के वचनों को **"औषध के समान हितकारी और गुणकारी"** कहा है—

"मनुर्वै यत्किञ्चावदत् तद् भैषजम्"

(तैत्तिरीय संहिता २.२.१०.२; ताण्डय ब्राह्मण २३.१६.७)

अर्थात्-मनु ने जो कुछ कहा है, वह मानवों के लिए भेषज=औषध के समान कल्याणकारी एवं गुणकारी है।

संहिता-ग्रन्थों का यह वचन यह सिद्ध करता है कि उस समय मनु के धर्मशास्त्र को सर्वोच्च प्रामाणिक माना जाता था। धर्मनिश्चय में उसका सर्वाधिक महत्त्व था। एक ही रूप में कई ग्रन्थों में पाया जानेवाला यह वाक्य इस बात की ओर भी इंगित करता है कि मनु का धर्मशास्त्र उस समय इतना लोकप्रिय हो चुका था कि वह औषध के तुल्य हितकारी और कल्याणकारी-गुणकारी के रूप में स्वीकृत था। इसी कारण उसके विषय में उपर्युक्त उक्ति भी प्रसिद्ध हो चुकी थी।

(ख) निरुक्त में, महर्षि यास्क ने दायभाग में पुत्र-पुत्री के समान-अधिकार के विषय में किसी प्राचीन ग्रन्थ का श्लोक उद्धृत करके मनु के मत का प्रमाण रूप में उल्लेख किया है। वह श्लोक है—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ (३.४)

अर्थ—'कानून के अनुसार, दायभाग के विभाजन में, पुत्र-पुत्री में कोई भेद नहीं होता अर्थात् उन्हें समान दायभाग मिलता है।' यह विधान, मानवसृष्टि के आरम्भिक काल में मनु स्वायम्भुव ने किया था।

मनु का यह समानाधिकार सम्बन्धी मत प्रचलित मनुस्मृति के ९।१३०, १९२, २१२ श्लोकों में वर्णित है। यथा—

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्॥ (९। १३०)

जैसी अपनी आत्मा है, वैसा ही पुत्र होता है और पुत्र के समान ही पुत्री होती है, उस आत्मारूप पुत्री के रहते हुए कोई दूसरा धन

को कैसे ले सकता है, अर्थात् पुत्र के साथ पुत्री भी धन की समान अधिकारिणी होती है।

(ग) वाल्मीकि-रामायण में, बालि और सुग्रीव के परस्पर युद्ध के अवसर पर, राम द्वारा बालि पर प्रहार किये जाने पर घायल बालि राम के उस कृत्य को अनुचित एवं अधर्मानुकूल ठहराता है। तब राम अपने उस कृत्य का औचित्य सिद्ध करने के लिए मनुस्मृति के वचनों को प्रमाणरूप में प्रस्तुत करते हैं और दो श्लोक उद्धृत करके अपने कार्य को धर्मानुकूल सिद्ध करते हैं। वे दोनों श्लोक प्रचलित मनुस्मृति में किञ्चित् पाठान्तर से ८। ३१६, ३१८ में पाये जाते हैं। उन वचनों से भी ज्ञात होता है कि राम के समय मनुस्मृति को धर्मनिश्चय में अत्यधिक प्रामाणिकता, प्रसिद्धि, मान्यता और महत्ता प्राप्त की थी। (श्लोक आगे पृ० ५८ पर उद्धृत)

(घ) महाभारत में अनेक स्थलों पर मनु को विशिष्ट प्रामाणिक स्मृतिकार के रूप में वर्णित किया है। महाभारत के निम्न श्लोक से ज्ञात होता है कि उस समय मनु के वचनों को कुतर्क आदि के द्वारा अखण्डनीय माना जाता था-

पुराणं मानवो धर्मः वेदाः सांगाश्चिकित्सकम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि, न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

(महा० अनु० अ० ९२)

अर्थ—'पुराण अर्थात् ब्राह्मणग्रन्थ, मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म, सांगोपांग वेद और आयुर्वेद, इनका आदेश सिद्ध है। इन चारों का हेतुशास्त्र का आश्रय लेकर कुतर्क आदि के द्वारा खण्डन नहीं करना चाहिए।'

(ङ) आचार्य बृहस्पति ने तो अपनी स्मृति में स्पष्ट शब्दों में मनुस्मृति को सर्वोच्च मान्य स्मृति घोषित किया है। उसकी प्रामाणिकता और महत्ता की उद्घोषणा करते हुए और उसकी प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं—

वेदार्थोपनिबद्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।
मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते॥
तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च।
धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्यावत्र दृश्यते॥

(बृह० स्मृति संस्कारखण्ड १३-१४)

अर्थात्-वेदार्थों के अनुसार रचित होने के कारण सब स्मृतियों में मनुस्मृति ही सबसे प्रधान एवं प्रशंसनीय है। जो स्मृति मनु के मत से विपरीत है, वह प्रशंसा के योग्य अथवा ग्राह्य नहीं है। तर्कशास्त्र, व्याकरण आदि शास्त्रों की शोभा तभी तक है, जब तक धर्म, अर्थ, मोक्ष का उपदेश देने वाला मनु-धर्मशास्त्र उपस्थित नहीं होता अर्थात् मनु के उपदेशों के समक्ष सभी शास्त्र महत्त्वहीन और प्रभावहीन प्रतीत होते हैं।

(च) महात्मा बुद्ध अपने उपदेशों में मनुस्मृति के श्लोकार्थ उद्धृत कर मनु को सम्मान देते थे। धम्मपद बौद्धों का धर्मग्रन्थ है। उसमें महात्मा बुद्ध के उपदेश संकलित हैं। महात्मा बुद्ध का काल लगभग २५०० वर्ष पूर्व है। मनु के श्लोकों का पालि भाषा में रूपान्तरण धम्मपद में मिलता है। इसका भाव यह है कि मनुस्मृति बौद्धों में भी मान्य रही है। दो उदाहरण देखिए-

मनु- अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्या यशो बलम्॥ (२.१२१)

धम्मपद में-
"अभिवादनसीलस्स निच्चं बुद्ढापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु विद्दो यसो बलम्॥" (८.१०)

मनु- न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। (२.१५६)

धम्मपद में- "न तेन थेरोसि होति येनस्स पलितं सिरो।" (१९.५)

(छ) बौद्ध महाकवि अश्वघोष ने, जो राजा कनिष्क का समकालीन था, जिसका कि समय प्रथम शताब्दी माना जाता है, अपनी 'वज्रकोपनिषद्' कृति में अपने पक्ष के समर्थन में मनु के श्लोकों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है।[१]

(ज) विश्वरूप ने अपने यजुर्वेदभाष्य और याज्ञवल्क्य स्मृति भाष्य में मनु के अनेक श्लोकों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया हैं।

(झ) शंकराचार्य ने वेदान्तसूत्रभाष्य में मनुस्मृति के पर्याप्त प्रमाण दिये हैं।

(ञ) ५०० ई० में जैमिनि-सूत्रों के भाष्यकार शबरस्वामी ने अपने भाष्य में मनु के अनेक वचनों का उल्लेख किया है।

---

१. छ से ध तक के संदर्भ एवं संदर्भस्थल अग्रिम पृष्ठों में द्रष्टव्य हैं।

(ट)याज्ञवल्क्य स्मृति के एक अन्य भाष्यकार विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य-स्मृति के श्लोकों की पुष्टि के लिए मनु के श्लोकों को पर्याप्त संख्या में उद्धृत किया है।

(ठ) गौतम, वशिष्ठ, आपस्तम्ब, आश्वलायन, जैमिनि, बौधायन आदि सूत्रग्रन्थों में भी मनु का आदर के साथ उल्लेख है।

(ड) आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में बहुत से स्थलों पर मनुस्मृति को आधार बनाया है और कई स्थलों पर मनु के मतों का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त भी बहुत सारे ऐसे ग्रन्थ हैं, जिन्होंने अपनी प्रामाणिकता और गौरव बढ़ाने के लिए अथवा मनु के मत को मान्य मानकर उद्धृत किया है।

(ढ) वलभी के राजा धारसेन के ५७१ ईस्वी के शिलालेख में मनुधर्म को प्रामाणिक घोषित किया है।

(ण) बादशाह शाहजहां के लेखकपुत्र दाराशिकोह ने मनु को वह प्रथम मानव कहा है, जिसे यहूदी, ईसाई, मुसलमान 'आदम' कहकर पुकारते हैं।

(त) गुरु गोविन्दसिंह ने 'दशम ग्रन्थ' में मनु का मुक्तकण्ठ से गुणगान किया है। उन्होंने 'दशम ग्रन्थ' में एक पूरा काव्य संदर्भ मनु के विषय में वर्णित किया है।

(थ) आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने वेदों के बाद मनुस्मृति को ही धर्म में सर्वाधिक प्रमाण माना है।

(द) श्री अरविन्द ने मनु को अर्धदेव के रूप में सम्मान दिया है।

(ध) श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर, भारत के राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन्, भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू आदि राष्ट्रनेताओं ने मनु को 'आदि लॉ गिवर' के रूप में उल्लिखित किया है।

(न) अनेक कानूनविदों— जस्टिस डी.एन.मुल्ला, एन.राघवाचार्य आदि ने स्वरचित हिन्दू लॉ-सम्बन्धी ग्रन्थों में मनु के विधानों को 'अथॉरिटी' घोषित किया है।

(प) मनु की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर, लोकसभा में भारत का संविधान प्रस्तुत करते समय जनता और पं० नेहरू ने, तथा जयपुर में डॉ० अम्बेडकर की प्रतिमा का अनावरण करते समय तत्कालीन राष्ट्रपति आर.वेंकटरमन ने डॉ. अम्बेडकर को 'आधुनिक

मनु' की संज्ञा से गौरवान्वित किया था।

(फ) सभी स्मृति-ग्रन्थों एवं धर्मशास्त्रों में, प्राचीनकाल से लेकर अब तक सर्वाधिक टीकाएं एवं भाष्य, मनुस्मृति पर ही लिखे गये हैं और अब भी लिखे जा रहे हैं। यह भी मनुस्मृति की सर्वोच्चता एवं सर्वाधिक प्रभावशीलता का द्योतक है।

आजकल भी पठन-पाठन, अध्ययन-मनन में मनुस्मृति का ही सर्वाधिक प्रचलन है। हिन्दू कोड बिल एवं हिन्दू विधान का प्रमुख आधार मनुस्मृति को माना जाता है। अनेक संदर्भों में, आजकल भी न्यायालयों में न्याय दिलाने में मनुस्मृति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं के प्रसंग में मनुस्मृति का उल्लेख अनिवार्य रूप से होता है और इससे मार्गदर्शन भी प्राप्त किया जाता है।

(आ) डॉ० अम्बेडकर के मतानुसार मनुस्मृति और मनु की प्रतिष्ठा एवं प्रामाणिकता

१. मनुस्मृति धर्मग्रन्थ एवं विधिग्रन्थ है

भारतीय साहित्य और डॉ. अम्बेडकर इस बात पर एकमत हैं कि 'मनु मानव-समाज के आदरणीय आदि-पुरुष हैं।' अब यह विचारणीय रहता है कि उस मनु ने कैसी समाज-व्यवस्था प्रदान की है। मनुस्मृति का अध्ययन करने के उपरान्त डॉ० अम्बेडकर ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है—

(क) "स्मृतियां अनेक हैं, तो भी वे मूलतः एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं।.........इनका स्रोत एक ही है। यह स्रोत है 'मनुस्मृति' जो 'मानव धर्मशास्त्र' के नाम से भी प्रसिद्ध है। अन्य स्मृतियां मनुस्मृति की सटीक पुनरावृत्ति हैं। इसलिए हिन्दुओं के आचार-विचार और धार्मिक संकल्पनाओं के विषय में पर्याप्त अवधारणा के लिए मनुस्मृति का अध्ययन ही यथेष्ट है।" (डॉ० अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० २२३)

(ख) "अब हम साहित्य की उस श्रेणी पर आते हैं जो स्मृति कहलाता है। जिसमें से सबसे महत्त्वपूर्ण मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति हैं।" (वही, खंड ८, पृ० ६५)

(ग) "मैं निश्चित हूं कि कोई भी रूढिवादी हिन्दू ऐसा कहने

का साहस नहीं कर सकता कि मनुस्मृति हिन्दू धर्म का धर्मग्रन्थ नहीं है।" (वही, खंड ६, पृ० १०३)

(घ) "मनुस्मृति को धर्मग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।" (वही, खंड ७, पृ० २२८)

(ङ) "मनुस्मृति कानून का ग्रन्थ है, जिसमें धर्म और सदाचार को एक में मिला दिया गया है। चूंकि इसमें मनुष्य के कर्त्तव्य की विवेचना है, इसलिए यह आचार शास्त्र का ग्रन्थ है। चूंकि इसमें जाति (वर्ण) का विवेचन है, जो हिन्दू धर्म की आत्मा है, इसलिए यह धर्मग्रन्थ है। चूंकि इसमें कर्त्तव्य न करने पर दंड की व्यवस्था दी गयी है, इसलिए यह कानून है।" (वही खंड ७, पृ. २२६)

इस प्रकार मनुस्मृति एक संविधान है, धर्मशास्त्र है, आचार शास्त्र है। यही प्राचीन भारतीय साहित्य मानता है। सम्पूर्ण साहित्य में मनुस्मृति को सबसे प्राचीन और सर्वोच्च स्मृति घोषित किया है। डॉ० अम्बेडकर की उपर्युक्त यही मान्यता स्थापित होती है।

२. मनुस्मृति का रचयिता मनु आदरणीय है

डॉ० अम्बेडकर उक्त मनुस्मृति के रचयिता को आदर के साथ स्मरण करते हैं—

(क) "प्राचीन भारतीय इतिहास में मनु आदरसूचक संज्ञा थी।" (वही, खंड ७, पृ० १५१)

(ख) "याज्ञवल्क्य नामक विद्वान् जो मनु जितना महान् है।" (वही, खंड ७, पृ० १७९)

जहां डॉ० अम्बेडकर का साहित्य-समीक्षक का रूप होता है वहां वे मनु और मनुस्मृति को सम्मान के साथ स्मरण करते हैं। इस स्थिति में प्रश्न उठता है कि मान्यताओं की एकरूपता होने पर भी मनु का विरोध क्यों?

(१.४) मनु और मनुस्मृति की विश्व में प्रतिष्ठा तथा विदेशी विद्वानों द्वारा उनकी प्रशंसा

मनु और मनुस्मृति का विषय केवल भारत का ही नहीं है, यह अधिकांश विश्व से सम्बन्ध रखता है। इनका प्रभाव केवल भारत ही

नहीं अपितु विश्व के अधिकांश सभ्य देशों में रहा है। प्राचीनकाल में ही मनुस्मृति का प्रसार दूर-दूर तक हो चुका था। अनेक देशों की संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, इतिहास आदि को मनुस्मृति ने प्रभावित किया है। इस प्रकार मनु और मनुस्मृति का अन्तर-राष्ट्रीय या विश्वस्तरीय महत्त्व है। मनु और मनुस्मृति सम्बन्धी मान्यताएं विश्व के विद्वानों में मान्यताप्राप्त (Recognised) और स्थापित (Established) हैं। अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी आदि से प्रकाशित **'इन्सा-इक्लोपीडिया'** में, **'द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया'** और श्री केबल मोटवानी द्वारा लिखित **'मनु धर्मशास्त्र : ए सोशियोलोजिकल एण्ड हिस्टोरिकल स्टडी'** नामक पुस्तक में विस्तार से उक्त तथ्यों का वर्णन है। इन लेखकों ने दिखाया है कि मनु और मनुस्मृति का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में इन देशों में पाया जाता है— चीन, जापान, बर्मा, फिलीपीन, मलाया, स्याम (थाईलैंड), वियतनाम, कम्बोडिया, जावा, चम्पा (दक्षिणी वियतनाम), इंडोनेशिया, मलेशिया, बाली, श्रीलंका, ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, रूस, साइबेरिया, तुर्कीस्तान, स्केडीनेविया, स्लेवनिक, गौलिक, टयूटानिक, रोम, यूनान, बेबिलोनिया, असीरिया, तुर्की, ईरान, मिश्र, क्रीट, सुमेरिया, अमेरिका तथा अमरीकी द्वीप के देश।

दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों के संविधान तो मनुस्मृति पर आधारित थे और उनके लेखकों को 'मनु' की उपाधि प्रदान कर गौरवान्वित किया जाता था। यहां मनु और मनुस्मृति की प्रशंसा और प्रभाव विषयक कुछ विदेशी उल्लेख प्रस्तुत किये जाते हैं—

(क) चीन में प्राप्त पुरातात्विक प्रमाण—विदेशी प्रमाणों में मनुस्मृति की काल-सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध कराने वाला एक महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक प्रमाण हमें चीनी भाषा के हस्तलेखों में मिलता है। सन् १९३२ में जापान ने बम विस्फोट द्वारा जब चीन की 'ऐतिहासिक दीवार' को तोड़ा तो उसमें लोहे का एक ट्रंक मिला, जिसमें चीनी पुस्तकों की प्राचीन पांडुलिपियां भरी थीं। वे हस्तलेख सर ऑगुत्स फ्रित्स (Auguts fritz Geogre) को मिल गये। वह उन्हें लंदन ले आया और उनको ब्रिटिश म्यूजियम में रख दिया। उन हस्तलेखों को प्रो० एन्थनी ग्रेमे (Prop.Anthony Graeme) ने चीनी

भाषा के विद्वानों से पढ़वाया। उनमें यह जानकारी मिली कि चीन के राजा चिन-इज-वांग (Chin-ize-wang) ने अपने शासनकाल में यह आज्ञा दे दी थी कि सभी प्राचीन पुस्तकों को नष्ट कर दिया जाये जिससे चीनी सभ्यता के सभी प्राचीन प्रमाण नष्ट हो जायें। तब उनको किसी विद्याप्रेमी ने ट्रंक में छिपा लिया और दीवार बनते समय उस ट्रंक को दीवार में चिनवा दिया। संयोग से वह ट्रंक बम विस्फोट में निकल आया। उन हस्तलेखों में से एक में यह लिखा है—'**मनु का धर्मशास्त्र भारत में सर्वाधिक मान्य है जो वैदिक संस्कृत में लिखा है और दस हजार वर्ष से अधिक पुराना है।**' यह विवरण केवल मोटवानी की पुस्तक 'मनु धर्मशास्त्र : ए सोशियोलोजिकल एण्ड हिस्टोरिकल स्टडी' (पृ० २३२, २३३) में दिया है।

यह चीनी प्रमाण मनुस्मृति के वास्तविक काल विवरण को तो प्रस्तुत नहीं करता किन्तु यह संकेत देता है कि मनु का धर्मशास्त्र बहुत प्राचीन है। फिर भी, पाश्चात्य लेखकों द्वारा कल्पित काल निर्णय को यह प्रमाण झुठला है।

(ख) 'द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया' में अंग्रेज इतिहासकारों ने लिखा है कि अंग्रेज जब भारत में आये तो भारत और समस्त दक्षिणी तथा दक्षिणपूर्वी एशिया के बर्मा, कम्बोडिया, थाइलैंड, जावा, बालिद्वीप, श्रीलंका, वियतनाम, फिलीपन, मलेशिया, इंडोनेशिया, चीन और रूस के कुछ क्षेत्रों में संविधान के रूप में मनुस्मृति को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त थी। इन देशों के संविधान मनुस्मृति पर आधारित थे। वहां के राजा और संविधान-प्रणेता गौरव के साथ 'मनु' उपाधि धारण किया करते थे। वहां के प्राचीन शिलालेखों में मनुस्मृति के श्लोक उद्धृत मिलते हैं। बर्मा के संविधान का नाम ही 'धम्मथट्' और 'मानवसार' तथा कम्बोडिया के संविधान का 'मानवनीतिसार' या 'मनुसार' नाम था। कम्बोडिया के प्राचीन इतिहास में आता है कि कम्बोडियावासी मनु के वंशज हैं। इसी प्रकार ईरान, इराक के प्राचीन इतिहास स्वयं को आर्य और आर्यवंशी घोषित करते रहे हैं। मिस्र के वासी स्वयं को सूर्यवंशी मानते हैं। उनके पिरामिडों में सूर्य का चित्र अंकित मिलता है। जो सूर्यवंशी होने का प्रतीक है।

(ग) संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार पाश्चात्य लेखक

ए.बी. कीथ ने स्वरचित 'ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर' में मनुस्मृति के प्रभाव और प्रशंसा का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"The influence of the text is attested by its acceptance in Burma, siam (Thailand) and Java as authoritative and production of works based on it." (P. 445)

अर्थात्—बर्मा, थाईलैंड, जावा आदि देशों में मनुस्मृति का प्रभाव और स्वीकार्यता एक प्रामाणिक, अधिकारिक और वहां के संविधान के स्त्रोतग्रन्थ के रूप में है। वहां के संविधान मनुस्मृति कों आधार बनाकर लिखे गये हैं।

The smriti of manu not to guide the life of any single community, but to be a general guide for all the classes of the state." (P. 404)

अर्थात्—मनुरचित स्मृति (मनुस्मृति) किसी एक समुदाय के लिए ही जीवनपथ प्रदर्शक नहीं है, अपितु वह विश्व के सभी समुदायों के लिए समान रूप से जीवन का पथ प्रदर्शन करने वाली है।

(घ) जर्मन के विख्यात दार्शनिक फ्रीडरिच नीत्से ने 'वियोंड निहिलिज्म नीत्शे, विदाउट मार्क्स' में मनुस्मृति और बाइबल की तुलना करके मनुस्मृति को बाइबल से उतम शास्त्र माना तथा बाइबल को छोड़कर मनुस्मृति को पढ़ने का नारा दिया। नीत्से ने कहा—

"How wretched is the new testamant compared to manu. How faul it smalls!" (P.41) "Close the bible and open the cod of manu." (The will to power', Vol. I, Book II, P.126)

अर्थात्—मनुस्मृति बाइबल से बहुत उत्तम ग्रन्थ है। बाइबल से तो अश्लीलता और बुराइयों की बदबू आती है। बाइबल को बंद करके रख दो और मनुस्मृति को पढो।

(ङ) भारतरत्न श्री पी.वी. काणे, जो धर्मशास्त्रों के प्रामाणिक इतिहासकार व शोधकर्त्ता हैं, ने भी अपने 'धर्मशास्त्र का इतिहास' नामक बृहद्ग्रन्थ में ऐसी ही जानकारी दी है। वे लिखते हैं—

'मनुस्मृति का प्रभाव भारत के बाहर भी गया। चम्पा (दक्षिणी वियतनाम) के एक अभिलेख में बहुत-से श्लोक मनु से मिलते हैं। बर्मा में जो 'धम्मथट्' है, वह मनु पर आधारित है। बालिद्वीप का

कानून मनुस्मृति पर आधारित था।' (भाग १, पृ० ४७.)

(च) एशिया के इतिहास पर पेरिस यूनिवर्सिटी से डी.लिट् उपाधिप्राप्त और अनेक पुरस्कारों से सम्मानित इतिहासज्ञ डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने 'दक्षिण-पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति' पुस्तक में प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित अनेक जानकारियां दी हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. "फिलीप्पीन के निवासी यह मानते हैं कि उनकी आचार-संहिता मनु और लाओत्से की स्मृतियों पर आधारित है। इसलिये वहां की विधानसभा के द्वार पर इन दोनों की मूर्तियां भी स्थापित की गई हैं।" (पृ० ४७)

२. "चम्पा (दक्षिणी वियतनाम) के अभिलेखों, राजकीय शिलालेखों से सूचित होता है कि वहां के कानून प्रधानतया मनु, नारद तथा भार्गव की स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों पर आधारित थे। एक अभिलेख के अनुसार राजा जयइन्द्रवर्मदेव मनुमार्ग (मनु द्वारा प्रतिपादित मार्ग) का अनुसरण करने वाला था।" (पृ० २५४)

३. "चम्पा (दक्षिणी वियतनाम) का जीवन वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था।.......राजा वर्णाश्रम-व्यवस्था की स्थापना के आदर्श को सदा अपने सम्मुख रखते थे। १७९९ ईस्वी के राजा इन्द्रवर्मा प्रथम के अभिलेख में उसकी राजधानी के सम्बन्ध में यह लिखा गया है.......वहां वर्ण तथा आश्रम भली-भांति सुव्यवस्थित थे।" (=निरुपद्रववर्णाश्रम-व्यवस्थिति)" (पृ० २५७)

४. "धम्मथट् या धम्मसथ नाम के ग्रन्थ वर्मा देश की आचार-संहिताएं और संविधान हैं। ये मनु आदि की स्मृति पर आधारित हैं। 'सोलहवीं' सदी में बुद्धघोष ने उसे 'मनुसार' नाम से पालि भाषा में अनूदित किया। इस धम्मथट् का 'मनुसार' नाम होना ही यह सूचित करता है कि 'मनुस्मृति' या 'मानव संहिता' के आधार पर इसकी रचना की गई थी। धम्मसथ वर्ग के जो अनेक ग्रन्थ सतरहवीं और अठाहरवीं सदियों में बरमा में लिखे गये, उनके साथ भी मनु का नाम जुड़ा है।" (पृ० २९७)

५. "कम्बोडिया के लोग मनुस्मृति से भली-भांति परिचित थे। राजा उदयवीर वर्मा के 'सदोक काकथेम' से प्राप्त अभिलेख में 'मानव

नीतिसार' का उल्लेख है, जो मानव सम्प्रदाय का नीतिविषयक ग्रन्थ था। यशोवर्मा के 'प्रसत कोमनप' से प्राप्त अभिलेख में मनुसंहिता का एक श्लोक भी दिया गया है। जो आज मनुस्मृति अ.२, श्लोक १३६ पर प्राप्त है।'' इसमें सम्मान-व्यवस्था का विधान है। (पृ० १९८)

६. ''६६८ ईस्वी में जयवर्मा पंचम कम्बुज (कम्बोडिया) का राजा बना........एक अभिलेख में इस राजा के विषय में लिखा है कि उसने 'वर्णों और आश्रमों को दृढ़ आधार पर स्थापित कर भगवान् को प्रसन्न किया।'' (पृ० १४९)

७. ''राजा जयवर्मा प्रथम के अभिलेख में दो मन्त्रियों का उल्लेख है, जो धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे। 'मनुसंहिता' सदृश ग्रन्थों को धर्मशास्त्र कहा जाता था...। जो धर्मशास्त्र कम्बुज (कम्बोडिया) देश में विशेष रूप से प्रचलित थे, उनमें मनुसंहिता का विशिष्ट स्थान था।'' (पृ० १९८)

८. बालि द्वीप (इंडोनेशिया) के समाज में आज भी वर्णव्यवस्था का प्रचलन है। वहां अब भी वैदिक वर्णव्यवस्था के प्रभाव से उच्चजातियों को 'द्विजाति' तथा शूद्र का नाम 'एकजाति' प्रचलित है जो कि मनु ने १०.४ श्लोक में दिया है। वहां शूद्रों के साथ कोई भेदभाव तथा ऊंच-नीच, छुआछूत आदि का व्यवहार नहीं है। यही मनु की वर्णव्यवस्था का वास्तविक रूप था। (दक्षिणपूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति : डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ० १९, ११४)

(छ) यूरोप के प्रसिद्ध लेखक पी. थामस अपनी पुस्तक 'Hindu religion, customs and mannors' में मनुस्मृति का महत्त्व वेदों के उपरान्त सबसे अधिक बतलाते हैं—

"The code of manu is of great autiquity, only less ancient then the three vedas." (P.102)

अर्थात्—मनु का संविधान (मनुस्मृति) सर्वोच्च स्थान रखती है। वेदों के बाद उसी का सर्वोच्च महत्त्व है।

(ज) अमेरिका से प्रकाशित 'दि मैकमिलन फैमिली इन्साइक्लो-पीडिया' में भी मनु को मानवजाति का आदिपुरुष और आदि-समाज-व्यवस्थापक बताया है—

"Manu is the progenitor of the human race. He is thus the lord and guardian of the living." (P. 131)

अर्थात्—'मनु मानवजाति का आदिपुरुष है। वह आदिसमाज का व्यवस्थापक या आदि सभ्यता का पथप्रदर्शक राजा है।'

(झ) रूस के विचारक पी.डी. औसमेंस्की ने कहा है कि मनुस्मृति की सर्वश्रेष्ठ समाजव्यवस्था के अनुसार मनुष्य समाज की पुनः संरचना होनी चाहिये (ए न्यू मॉडल आफ यूनिवर्स)।

(ञ) इंगलैंड के प्रसिद्ध लेखक डॉ. जी.एच.मीज ने वर्णव्यवस्था के पहले तीन वर्णों में समाज को बांटते हुए कहा है कि इस व्यवस्था के होने पर धरती स्वर्ग में बदल जायेगी (वर्क, वैल्थ एण्ड हैप्पिनैस आफ मैनकाइंड)।

(ट) विश्व में इस व्यवस्था के प्रसार के सम्बन्ध में डॉ० अम्बेडकर का कथन है—

"चातुर्वर्ण्य पद्धति.........यह संपूर्ण विश्व में व्याप्त थी। वह मिस्र के निवासियों में थी और प्राचीन फारस के लोगों में भी थी। प्लेटो इसकी उत्कृष्टता से इतना अभिभूत था कि उसने इसे सामाजिक संगठन का आदर्श रूप कहा था।" (डॉ. अम्बेडकर वाङ्मय खंड, ७, पृ० २१०)

(ठ) मैडम एनी बीसेन्ट (जर्मनी) ने मनुस्मृति की प्रशंसा करते हुए कहा है कि "यह ग्रन्थ भारतीय और अंग्रेज सभी के लिए समान रूप से उपयोगी है, क्योंकि आज के समस्यापूर्ण दैनिक प्रश्नों के समाधानात्मक उत्तरों से यह परिपूर्ण है। "(द साइंस एण्ड सोशल आर्गनाइजेशन, भूमिका, पृ० xxvii, भगवानदास)

(ड) बैलजियम के विद्वान् लेखक मनुस्मृति को अध्यात्म ज्ञान एवं वैधानिक प्रमाण में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ मानते हैं। उनका कहना है कि यह जीवन के सत्यों को प्रतिपादित करता है। (द ग्रेट सीक्रेट, पृ० ९५)

(ढ) मैडम एच० पी० ब्लेवैट्स्की ने अपनी कृति 'Isis UnVeiled' में मनुस्मृति को आदितम ज्ञानस्रोत प्रतिपादित किया है। पुरातत्ववेत्ता वी० गार्डन चाईल्ड ने इस मत का समर्थन किया है। (केवल मोटवानी रचित, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० १९७-२०१)

(अ) मनुस्मृति पर विदेशी विद्वानों का शोधकार्य और भाष्य—

विश्वभर में मनुस्मृति के प्रभाव और भारत एवं आसपास के देशों में उसकी महत्ता को देखकर अनेक विदेशी विद्वान् मनुस्मृति की ओर आकृष्ट हुए। उनके द्वारा मनुस्मृति-विषयक अनेक ग्रन्थ रचे गये। उनमें से प्रमुख का विवरण इस प्रकार है, जिनमें मनुस्मृति की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया है—

सन् १७८६ में मनु-आधारित हिन्दू कानूनों के फारसी अनुवाद का अंग्रेजी रूपान्तरण प्रकाशित हुआ। १७९४ में मनुस्मृति का सर विलियम जोन्स कृत अंग्रेजी अनुवाद छपा। विलियम जोन्स न्यायाधीश के रूप में भारत आये थे। यहां के समाज में मनुस्मृति के महत्त्व को देखकर उन्होंने उसको विद्यार्थी बनकर पढ़ा। १८२५ में जी०सी० हॉगटन रचित अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ। फ्रैंच भाषा में १८३३ में पार०ए० लॉअसलयूर डैसलांगचैम्पस का ग्रन्थ 'LOIS DE MANOU' ग्रन्थ छपा, जो मनुस्मृति का भाष्य तथा विवेचन था। १८८४ में हापकिन्ज का 'The Ordinances of Manu' छपा। १८८६ में ऑक्सफोर्ड से The sacred books of the east series' के अन्तर्गत २५ वें खण्ड में मैक्समूलर और ब्यूहलर के भाष्य एवं समीक्षायुक्त मनुस्मृति का अनुवाद प्रकाशित हुआ। १८८७ में जे.जौली द्वारा कृत जर्मन भाषा का अनुवाद छपा। इन प्रकाशनों से विदेशों में मनु और मनुस्मृति खूब प्रचार-प्रसार हुआ।

उपर्युक्त विवरणों से हमें जानकारी मिलती है कि मनुस्मृति का विश्व में प्रसार था। उस पर विदेशी विद्वानों को भी गर्व है। भारत के लिए तो यह महान् गौरव का विषय है ही। स्पष्ट है कि मनुस्मृति आज अन्तरराष्ट्रीय स्तर के अध्ययन का विषय बन चुका है। भारत की धरोहर विश्व की धरोहर बन चुकी है। मनु और मनुस्मृति पर कोई भी टिप्पणी करने से पूर्व हमें यह विचारना पड़ेगा कि उसका विश्वस्तर पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

(आ) आदिकालीन विश्व में मनु, मनुस्मृति की वर्णव्यवस्था के प्रमाण—

आगे हम सप्रमाण यह पढ़ेंगे कि आदि मानवसृष्टि-कालीन ऋषि ब्रह्मा का पुत्र मनु स्वायंभुव इस सृष्टि का आदिराजा बना। वह

चक्रवर्ती सम्राट् था। ब्रह्मर्षि ब्रह्मा ने वेदों से ज्ञान प्राप्त करके जो वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रतिपादन किया था, उसको मनु ने अपने शासन में क्रियात्मक रूप दिया और आवश्यकतानुसार उसमें नयी व्यवस्थाओं का समन्वय किया। इस कारण वर्णाश्रमव्यवस्थाधारित समाज-व्यवस्था के सर्वप्रथम संस्थापक मनु स्वायंभुव कहलाये। आदि सृष्टि का प्रमुख पुरुष होने के कारण और 'मानव' वंश का प्रतिष्ठापक होने के कारण उसे 'आदि—पुरुष' भी माना गया है। धर्मविशेषज्ञ और धर्मप्रवक्ता होने के कारण उसे धर्मप्रदाता और आदिविधिप्रदाता का सम्मान प्राप्त है। मनु को यह श्रेय भारत ही नहीं अपितु अपने समय के सम्पूर्ण आवासित विश्व में प्राप्त था, इस तथ्य का ज्ञान हमें संस्कृत के प्राचीन इतिहासों और विश्व के इतिहासों से मिलता है।

मनु 'आदि-राजा' अथवा 'आदि-राजर्षि' थे। प्राचीन इतिहास में प्राप्त विवरण के अनुसार, मनु के दो पुत्र हुए - प्रियव्रत और उत्तानपाद; दो पुत्रियां हुईं-आकृति और प्रसूति। मनु सप्तद्वीपा पृथ्वी के शासक थे। अपने बाद उन्होंने राज्य को दोनों पुत्रों में बांट दिया। प्रियव्रत को राज्य का मुख्य क्षेत्र मिला। प्रियव्रत के कुल दस पुत्र हुए। उनमें से तीन ब्राह्मण बन गये। सातपुत्रों को निम्न प्रकार सात देशों/द्वीपों का राज्य प्रदान किया। प्रियव्रत के इतिहास में पहली बार सात देशों का भौगोलिक विवरण मिलता है। इतिहासकारों द्वारा अनुमानित उन देशों की आधुनिक पहचान के साथ उनका विवरण इस प्रकार है -

देश/द्वीप (आदिकालीन)	**आधुनिक क्षेत्र से साम्य**	**प्रियव्रत के पुत्र जो उस देश के राजा बने**
१. **जम्बू द्वीप** (जम्बू नदी व जम्बू वन के कारण नामकरण)	एशिया महाद्वीप (दक्षिण पूर्वी)	अग्नीध्र (ज्येष्ठ पुत्र)
२. **प्लक्ष द्वीप** (प्लक्ष वृक्षों के वन के कारण)	यूरोपीय भूभाग	इध्मजिह्व.
३. **शाल्मलि द्वीप** (शाल्मलि वृक्ष के वन के कारण)	वर्तमान अटलांटिक क्षेत्र जहां अब समुद्र ही है	यज्ञबाहु
४. **कुशद्वीप** (कुश घास के वन के कारण)	अफ्रीकी भूभाग	हिरण्यरेतस्

५. **क्रौंच द्वीप** (क्रौंच नामक पर्वत के कारण)	उत्तरी अमेरिका	घृतपृष्ठ
६. **शाक द्वीप** (शाक=सागौन वन के कारण)	दक्षिण अमेरिका	मेधातिथि
७. **पुष्कर द्वीप** (जल-बहुल प्रदेश होने के कारण नाम पड़ा)	दक्षिणी ध्रुव खण्ड (तब वहां बर्फ नहीं थी)	वीतिहोत्र

ये आदिकालीन ज्ञात आवासित देश थे। इनमें से जम्बूद्वीप, शाकद्वीप और कुशद्वीप की भौगोलिक, ऐतिहासिक और प्रामाणिक खोज आधुनिक इतिहासकारों ने कर ली है। शेष द्वीपों की खोज अभी अपेक्षित है। इन द्वीपदेशों की खोज से यह प्रमाण मिल गया है कि अन्य द्वीपदेश भी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक अस्तित्व रखते थे। खोजे गये तीन—द्वीप देशों का संक्षिप्त ऐतिहासिक एवं भौगोलिक विवरण प्रामाणिकता की दृष्टि से दिया जा रहा है, जिससे पाठक उनकी सत्यता को जान सकें और वहां की अन्य सांस्कृतिक वस्तुस्थितियों को स्वीकार करें।

(क) जम्बू द्वीप की पहचान

प्रियव्रत का ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र था जिसे जम्बूद्वीप (एशिया खण्ड) का राज्य मिला था। पृथ्वी का व्यापक क्षेत्र होने के कारण तत्कालीन भारतीय इतिहासकारों के लिए अन्य द्वीपों का विवरण जुटाना संभव नहीं हो सका, अतः भारत में इसी द्वीप से सम्बन्धित इतिहास प्रमुखता से प्राप्त होता है। अग्नीध्र के नौ पुत्र हुए। सभी राज्य के इच्छुक थे, अतः सबमें जम्बुद्वीप का राज्य निम्न प्रकार बांट दिया गया। उन्हीं पुत्रों के नाम पर उन देशों का नामकरण भी हुआ—

१. नाभि (ज्येष्ठ पुत्र)	को	हिमालयपर्वत सहित नाभिवर्ष या आर्यावर्त मिला जिसका बाद में भारतवर्ष नाम पड़ा।
२. किम्पुरुष	को	किम्पुरुषवर्ष, हेमकूट (कैलास पर्वत) युक्त।
३. हरिवर्ष	को	हरिवर्ष, निषधपर्वतयुक्त।

४. इलावृत को इलावृतवर्ष, मेरुपर्वतयुक्त।
५. रम्यक को रम्यवर्ष, नीलपर्वतयुक्त।
६. हिरण्य को हिरण्यकवर्ष, श्वेपर्वतयुक्त।
७. कुरु को उत्तरकुरुवर्ष, शृंगवान्पर्वतयुक्त।
८. भद्राश्व को भद्राश्ववर्ष, मेरु के पूर्वी भाग में माल्यवान् पर्वत से आगे।
९. केतुमाल को केतुमालवर्ष, गन्धमादन पर्वतयुक्त। मेरु से पश्चिम का प्रदेश

(उ) प्राचीन द्वीपों और वर्षों (देशों) की पहचान

इनमें से जम्बूद्वीप का वर्णन भारतीय इतिहास में विस्तार से मिलता है क्योंकि भारतवर्ष इसी भूभाग से सम्बद्ध है। जम्बूद्वीप के आगे आठ वर्ष (देश) वर्णित हैं। उनकी पहचान इस प्रकार की गयी है –

१. भारतवर्ष (दक्षिण समुद्र से हिमालय तक, ईरान से बर्मा तक विस्तृत प्राचीन बृहत् भारत)।
२. किम्पुरुष (हिमालय से हेमकूट अर्थात् कैलास पर्वत तक विस्तृत किन्नौर, कश्मीर आदि का भाग)।
३. हरिवर्ष (कैलास से मेरुपर्वत=पामीर तक का प्रदेश तिब्बत आदि। मतान्तर से सुग्द=बोखारा प्रदेश)
४. इलावृत वर्ष (मेरु=पामीर पर्वत के चारों ओर आसपास का क्षेत्र, रूस की बालखश झील जहां इलि नदी झील में गिरती है)।
५. भद्राश्व वर्ष (मेरु पर्वत से पूर्व में स्थित चीन देश। वहां का जातीय चिह्न आज तक भद्राश्व = सफेद ड्रैगन अर्थात् कल्याणकारी अश्वमुख—मकर या सर्प है)।
६. केतुमाल वर्ष (मेरु के पश्चिम का वह प्रदेश जहां चक्षु= वक्षु=आक्सस नदी बहकर अराल सागर में गिरती है। रूस, ईरान, अफगानिस्तान के सीमाक्षेत्र का प्रदेश)।
७. रम्यक वर्ष (अनुमानतः रमि या रम्नि टापुओं का पूर्ववर्ती प्रदेश, मेरुदेश से नीलपर्वत तक का क्षेत्र)।
८. हिरण्मय (नील पर्वत से शृंगवान् पर्वत तक का प्रदेश (पहचान अनिश्चित)।

९. उत्तरकुरु (तोलोमी द्वारा वर्णित ओत्तोरी कोराई, चीनी, तुर्किस्तान की तारिम घाटी। मतान्तर से रूस का साइबेरिया प्रदेश)।

इस प्रकार जम्बूद्वीप अर्थात् एशिया खण्ड का भूगोल प्रायः ज्ञात है। जम्बू नदी और उसके आसपास फैले विशाल जम्बू वन के कारण इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा था, जैसे पश्चिमी देशों में सिन्धु नदी के आधार पर अरबी-फारसी में स का ह होकर भारत का हिन्दुस्तान और यूनान में 'ह' का 'इ' होकर सिन्ध का इण्डस् और देश का नाम इंडिया पड़ा।

(ख) शाक द्वीप की पहचान—जम्बू द्वीप के साथ शाकद्वीप का वर्णन है और इसे क्षीरसागर से आवृत बताया है। कभी यह क्षीर सागर पश्चिम के वर्तमान कृष्णसागर से आरम्भ होकर साइबेरिया के उत्तरी भाग में फैले हुए आर्कटिक समुद्र तक एक महासागर के रूप में फैला था। इसने शाकद्वीप को घेर रखा था। अब उसके कृष्णसागर, कैस्पियन सागर, बाल्कश झील अवशेष बचे हैं। बाल्कश झील अब भी मीठे पानी की झील है। इस कारण कैस्पियन को तथा इसे 'क्षीर सागर' कहते थे। संस्कृत का क्षीर = (दूध) विकृत होकर फारसी में शीर हुआ है। ईरानी इसे शीरवान् कहते हैं। यूनानी यात्री मार्कोपोलो ने भी इसे शीर सागर लिखा है। इसमें प्रवाहित होने वाली नदियों का भी अर्थ इसके नाम से सम्बन्धित है। ईरान की एक नदी का नाम शीरी है और रूस की नदी का नाम मालोकोन्या (मा-लो-को) है जो अंग्रेजी शब्द मिल्क=दूध से अर्थ व ध्वनिसाम्य रखती है। पुराने समय में ईरानी में शकस्थान को 'शकान्बेइजा'=शकानां बीजः=शकों का मूलस्थान कहा गया है। यह स्थान यूरेशिया में दुनाई (डेन्यूब) नदी से त्यान्शान् अल्ताईपर्वत श्रेणी तक था। बाद में कभी ये लोग ईरान के पूर्वी भाग में आकर बस गये तो उस स्थान को शकस्थान=सीस्तान या सीथिया कहा जाने लगा। धीरे-धीरे बढ़ते हुए ये भारत में आ गये और कुषाण साम्राज्य के रूप में इनका शासन प्रसिद्ध हुआ।

श्री नन्दलाल दे ने अपनी पुस्तक 'रसातल ओर दि अंडर वर्ल्ड' में शोधपूर्वक बताया है कि वहां भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों में वर्णित

जातियों के नाम भी यथावत् मिलते हैं। वहां मग ब्राह्मण, मगग और मशक क्षत्रिय, गानग वैश्य और मन्दग नाम के शूद्र हैं। शक भाषा में शक का सग, मग का मगुस् या मगि, मगग का मगोग या गोग, गानक का गनक, मन्दग का माद अपभ्रंश प्रचलित है। ग्रीक इतिहासकार हैरोडोटस् ने भी वहां की इन चार जातियों का उल्लेख किया है। भविष्यपुराण में मगों को "**आर्यदेश समुद्भवाः**" (ब्राह्म० १३६.५९) कहा है। बहुत से इतिहासकार शकों को वैवस्वत मनुपुत्र इक्ष्वाकु के पुत्र नरिष्यन्त के वंशज मानते हैं। शकों की भाषा पूर्वकाल में संस्कृत रही है, अतः उनकी भाषा में संस्कृत के अपभ्रंश शब्द मिलते हैं। शकस्थान के पर्वतों व जनपदों का संस्कृत भाषा के नामों से साम्य इस प्रकार है -

शकद्वीप = सीदिया = सीथिया — कुमुद =कोमेदेई (पर्वत)
कुमार = कोमारोई (पर्वत) — जलधार = सलतेरोई (पर्वत)
इक्षु=आक्सस (नदी) — सीता = सीर दरिया
मूग = मरगियाना (वर्तमान मर्व प्रदेश) — मशक = मस्सगेताइ (प्रदेश)
श्यामगिरि=मुस्तामूग अर्थात् कालापर्वत

(ग) कुशद्वीप की पहचान

इसी प्रकार कुश द्वीप का भी शिलालेखों में उल्लेख मिला है। डॉ. डी. सी. सरकार ने अपनी पुस्तक 'जियाग्राफी आफ एन्सिएंट एण्ड मैडिवल इंडिया' पृ० १६४ पर दारयबहु (अंग्रेजी में डैरियस, ५२२ से ४८६ ईस्वी पूर्व) नामक फारस राजा के हमदान से प्राप्त शिलालेख का विवरण देते हुए बताया है कि उसकी राज्य-सीमा कुश देश तक है। उसने विवरण देते हुए लिखा है कि उसके राज्य की सीमा सोग्दियाना (शीर दरिया और आमू दरिया के पार स्थित) शक स्थान से कुरु देश तक, सिन्धु देश से स्वर्दा (एशिया माइनर में सारडिस नामक स्थान) तक है। इस प्रकार कुश द्वीप की स्थिति इथोपिया, अफ्रीका के पूर्वोत्तर भाग के आसपास अनुमानित होती है। शेष द्वीपों की खोज अपेक्षित है।

(ङ) सात द्वीपों में वर्णव्यवस्था के प्रमाण

संस्कृत के प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में यह उल्लेख आता है कि पूर्वोक्त उन देशों में मनु की चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था प्रचलित थी और उन

देशों के समाजों में चार वर्णों से समाजिक व्यवहार सम्पन्न किये जाते थे-

(क) पुष्करद्वीप की चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था—विष्णुपुराण के अनुसार सात द्वीपों में से एक पुष्कर द्वीप ऐसा था जहां वर्णाश्रम-व्यवस्था के अन्तर्गत निम्न वर्णस्थों की जनसंख्या नहीं थी। उसका कारण यह था कि वहां अधिकतः देवस्वरूप ब्राह्मण-आचरणधारी जन ही रहते थे—

''सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ण्ययुतानिच।'' (२.४.१२)

अर्थ—ये सभी सात देश चातुर्वर्ण्यव्यवस्था से युक्त हैं।

भागवत्पुराण कहता है —**''तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणाऽराधयन्ति''** (५.२०.३२)=पुष्कर देशवासी ब्रह्मस्वरूप परमात्मा को अपने श्रेष्ठ आचरण से प्रसन्न रखते हैं।

(ख) कुश द्वीप की चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का विवरण—

वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः।
दमिनः शुष्मिणः स्नेहाः मन्देहाश्च महामुने।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्रश्चानुक्रमोदिताः॥

(विष्णुपुराण २.४.३८, ३९, ४.३८, ३९)

अर्थात्-कुशद्वीप में भी चार वर्ण हैं जो अपने-अपने वर्णकर्त्तव्यों के पालन में प्रयत्नशील रहते हैं। वहां ब्राह्मणों को दमिन् (=दमनशील इन्द्रियों वाले), क्षत्रियों को शुष्मिन् (=बलशाली), वैश्यों को स्नेह (=विनम्रशील) और शूद्रों को मन्देह (=निम्न बौद्धिक स्तर या व्यवसाय वाले) कहा जाता है।

भागवतपुराण में चार वर्णों का पर्यायनाम क्रमशः कुशल=बुद्धिमान्, कोविद=धनुर्धारी, अभियुक्त=परिश्रमी या चतुर और कुलक= श्रमिक या शिल्पी दिया है। (५.२०.१६)

(ग) शाक द्वीप की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का विवरण—

तत्र पुण्याः जनपदाः, चातुर्वर्ण्यसमन्विताः।
मगाः ब्राह्मणभूयिष्ठाः, मागधाः क्षत्रियास्तु ते।
वैश्यास्तु मानसाः ज्ञेयाः शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः॥

(विष्णुपुराण २-४-२३-२५, ६४, ७० के श्लोकांश)

अर्थात्-शाकद्वीप में अनेक पुण्यशाली जनपद हैं जहां चातुर्वर्ण्य

व्यवस्था प्रचलित है। वहां ब्राह्मणों का मग (=विद्याध्ययन में रत), क्षत्रियों को मगध या मगग (=गतिशील योद्धा), वैश्यों को मानस या गानक (=बहुत बुद्धिवाला, चतुर), और शूद्र को मन्दग (=मन्द बुद्धि या निम्न व्यवसाय वाला) कहा जाता है।

भागवत पुराण में चार वर्णों का पर्याय नाम क्रमशः ऋतव्रत =वेदाक्त आचरण वाले, सत्यव्रत = सत्य प्रतिज्ञा वाले, दानव्रत = दान देने की प्रतिज्ञा करने वाले, और अनुव्रत= आज्ञाकारी या आदेशपालक दिया है (५.२०.२७)।

(घ) प्लक्षद्वीप की चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का विवरण—

धर्माः पञ्चस्वथैतेषु वर्णाश्रमविभागजाः।
वर्णास्तत्रापि चत्वारस्तान् निबोध गदामि ते।।
आर्यकाः कुरवश्चैव विवाशाः भाविनश्च ते।
विप्र-क्षत्रिय-वैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तमः।।

(विष्णुपुराण २.४.८, १५, १९)

अर्थात्-प्लक्ष द्वीप में वर्णाश्रम धर्मों का पालन करने वाले चार वर्ण हैं। उन्हें वहां क्रमशः आर्यक=उत्तम आचरण वाले, **कुरु**=युद्ध में गर्जना करने वाले, **विवाश**=धनादि की कामना वाले और शूद्रों को **भाविन्**= निर्देशपालक व्यक्ति, कहा जाता है।

भागवतपुराण में चार वर्णों का पर्यायवाची नाम क्रमशः हंस = विवेकी, पतङ्ग=आक्रामक, ऊर्ध्वायन=उन्नतिशील, सत्याङ्ग = निष्ठावान् दिया है। कहा है कि ये चारों वर्ण तीन वेदों के मन्त्रों द्वारा परमात्मा का यजन करते हैं (५.२०.४)।

(ङ) क्रौंच द्वीप की वर्णव्यवस्था का विवरण -

पुष्कराः पुष्कलाः धन्याः तिष्याख्याश्च महामुने।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः।।

(विष्णुपुराण २.४.५३, ५६)

अर्थ—क्रौंच द्वीप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को क्रमशः पुष्कर=बौद्धिक पुष्टि करने वाले, पुष्कल=प्रजा का पालन-पोषण करने वाले, धन्य=धनी और तिष्य=सेवा से प्रसन्न करने वाले नाम से पुकारा जाता है।

भागवतपुराण में चार वर्णों का नाम पर्यायवाची रूप में क्रमशः

पुरुष=आत्म-परमात्मचिन्तक उत्तम पुरुष, ऋषभ=बल में श्रेष्ठ, द्रविण=धनवान् और देवक=सेवक, दिया है (५.२०.२२)।

(च) जम्बू द्वीप की वर्णव्यवस्था का विवरण-

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इज्यायुधवाणिज्याद्यैः वर्तयन्तो व्यवस्थिताः॥

(विष्णुपुराण २.३.९, २९)

अर्थ—जम्बू द्वीप (भारत सहित एशिया द्वीप में) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य निवास करते हैं। उनके साथ स्थान-स्थान पर शूद्र बसे हैं। वे वर्ण क्रमशः यज्ञ, शस्त्र, वाणिज्य आदि से अपनी आजीविका करते हुए चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में व्यवस्थित हैं।

(छ) शाल्मलि द्वीप की वर्णव्यवस्था का वर्णन -

सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्वर्ण्ययुतानि च।
शाल्मले ये तु वर्णाश्च वसन्ति ते महामुने।
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक्।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति ते॥

(विष्णुपुराण २.४.१२-१३)

अर्थ—'ऊपर वर्णित सभी सात देश चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से युक्त हैं। शाल्मलि द्वीप में जो वर्ण हैं वे इन नामों से प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणों को कपिल, क्षत्रियों को अरुण, वैश्यों को पीत और शूद्रों को कृष्ण कहा जाता है।' ये वर्णों के रंगवाची प्रतीक नाम हैं। (इनका प्रतीकार्थ विवरण अ० ३.१ में 'ऊ' शीर्षक में द्रष्टव्य है।)

भागवतपुराण में चार वर्णों का पर्याय नाम क्रमशः श्रुतधर=वेदों को धारण करने वाले, वीर्यधर=बलधारक, वसुन्धर=धनधारक और इषुन्धर=बाण आदि बनाने वाले, दिया है। (५.२०.११)।

यह स्वायम्भुव मनु के पौत्रों के समय का इतिहास सौभाग्य से प्राप्त है जो हमें यह जानकारी दे रहा है कि आदि मानवसृष्टि काल में केवल वर्णाश्रम व्यवस्था ही समाज की व्यवस्था थी, जो विश्वव्यापी थी। इस प्रकार यह विश्व की सर्वप्रथम समाज-व्यवस्था थी और इसके सर्वप्रथम व्यवस्थापक स्वायम्भुव मनु थे।

* * *

द्वितीय अध्याय

विश्व की धरोहर मनु और मनुस्मृति : महत्त्व एवं योगदान

(२.१) मनुस्मृति : प्रवक्ता और प्रवचनकाल

मनुस्मृति के प्रवक्ता और उसके काल-निर्धारण सम्बन्धी प्रश्न का यह समाधान आज के लेखकों को सर्वाधिक चौंकाने वाला है। कारण यह है कि वे पाश्चात्य लेखकों द्वारा कपोलकल्पित कालनिर्धारण के रंग में इतने रंग चुके हैं कि उन्हें परम्परागत सत्य, असत्य प्रतीत होता है; और कपोलकल्पित असत्य, सत्य प्रतीत होता है। आंकड़ों के अनुसार, परम्परागत और पाश्चात्यों द्वारा निर्धारित मनुस्मृति के काल-निश्चय में दिन-रात या पूर्व-पश्चिम का मतान्तर है। यह तथ्य है कि भारतीय मत की पुष्टि एक सम्पूर्ण परम्परा करती है। परम्परागत सम्पूर्ण वैदिक एवं लौकिक भारतीय साहित्य 'मनुस्मृति' या 'मानवधर्मशास्त्र' को मूलतः मनु स्वायम्भुव द्वारा रचित मानता है और मनु का काल वर्तमान मानवसृष्टि का आदिकाल मानता है। इस प्रकार आदिकालीन स्वायम्भुव मनु की रचना होने से मनुस्मृति का काल भी वेदों के बाद वर्तमान मानवसृष्टि का आदिकाल है।

कुछ पाश्चात्य लेखक और उनकी शिक्षा-दीक्षा से अनुप्राणित उनके अनुयायी आधुनिक भारतीय लेखक मनुस्मृति का रचनाकाल १८५-१०० ई० पूर्व ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुङ्ग के जीवनकाल में मानते हैं। यह मत प्रो० ब्यूलर द्वारा निर्धारित है और तत्कालीन पाश्चात्य लेखकों द्वारा मान्य है। इस मतान्तर पर अपना निर्णय देने से पूर्व मैं यहा पाश्चात्यों द्वारा स्थापित मान्यताओं एवं कालनिर्धारण के मूल में उनकी मानसिकता, लक्ष्य एवं उसकी अप्रामाणिकता पर कुछ चर्चा विस्तार से करना अत्यावश्यक समझता हूं।

यह स्पष्ट है कि अंग्रेजों ने अपने राजनीतिक और धार्मिक निहित लक्ष्य की पूर्ति हेतु, हजारों वर्ष पुराने भारतीय इतिहास और साहित्य की घोर उपेक्षा करके, केवल १५० वर्ष पूर्व, कपोलकल्पना द्वारा कुछ नयी मान्यताएं गढ़ीं और नये सिर से एक काल्पनिक कालनिर्धारण

प्रस्तुत किया। भारतीय इतिहास को अपने स्वार्थ के अनुरूप परिवर्तित, विकृत और अस्त-व्यस्त किया। भारतीय इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, ऐतिहासिक व्यक्ति आदि प्राचीन सिद्ध न हों, इस कारण उन्हें 'माइथोलॉजी' 'मिथक' कहकर अप्रामाणिक बनाने का प्रयास किया। मैक्समूलर ने स्वयं स्वीकार किया है कि वैदिक साहित्य और वेद आदि का काल आनुमानिक है। आगे चलकर तो उन्होंने इनके कालनिर्धारण में असमर्थता भी प्रकट कर दी थी। फिर भी आज हम उनके कालनिर्धारण को प्रमाणिक मान रहे हैं और परम्परागत भारतीय कालनिर्धारण को अप्रामाणिक कह रहे हैं, जबकि तटस्थ अंग्रेज और यूरोपियन लेखकों ने उनको प्रमाणिक नहीं माना है। वर्तमान में प्रचलित मनु और मनुस्मृति का कालनिर्धारण (१८५-१०० वर्ष ई० पू०) उपनिवेशवादी अंग्रेजों की ही कपोल-कल्पित देन है।

वास्तविकता यह है कि ज्यों-ज्यों पुरातत्व-विज्ञान, भाषाविज्ञान, भूगोल, ज्योतिष-संबंधी नवीन खोजें हुई हैं, त्यों-त्यों उन अंग्रेज लेखकों द्वारा स्थापित मान्यताएं एक-एक करके ढही हैं और भारतीय स्थापनाओं में बहुत की समग्रतः या अधिकांशतः पुष्टि हुई है। अंग्रेजों और उनके अनुयायियों ने बाइबल तथा डार्विन के विकासवाद के आधार पर मनुष्य की उत्पत्ति कभी दस हजार वर्ष पूर्व बताई थी और भारतीय साहित्य में वर्णित लाखों वर्ष पूर्व मानव के अस्तित्व विषयक संदर्भों को गप्प कहा था। आज के वैज्ञानिक दस हजार से हटकर दो लाख वर्ष पूर्व तक की मान्यता पर पहुंच गये हैं। पचास से पैंतीस हजार वर्ष पूर्व की तो अस्थियां भी पायी गई हैं। उन्होंने एक अरब छियानवे करोड़ के भारतीय सृष्टिसंवत् को सुनकर उसे महागप्प कहकर मखौल उड़ाया था। मैडम क्यूरी की रेडियम की खोज ने उसकी पुष्टि कर दी। अमेरिका की उपग्रह-संस्था 'नासा' ने पिछले दिनों उपग्रह के द्वारा भारत-श्रीलंका के बीच समुद्र में डूबे पुल को खोजा और उसका काल लाखों वर्ष पूर्व निर्धारित किया। एक गणना के अनुसार, यह रामायण के काल से मिलता है। महाभारत को काल्पनिक मानने वाले लोगों को, पाश्चात्य ज्योतिषी बेली ने ग्रहयुति के ज्योतिषीय आधार पर बताया कि महाभारत युद्ध ३१०२ ईसा पूर्व हुआ था।

महाभारत में वर्णित श्रीकृष्ण की 'द्वारका' नगरी को पुरातत्वविद् डॉ० एस.आर. राव ने खोज निकाला। अमेरिका के मैक्सिको में मिले 'मय-सभ्यता' के अद्भुत अवशेषों ने वैदिक काल के मय वंश को प्रमाणित कर दिया। 'इंडिया इन ग्रीस' में मिस्र के प्राचीन इतिहास के आधार पर बताया गया है कि वहां के निवासी हेमेटिक लोग 'मनु वोवस्वत्' (वैवस्वत) के वंशज हैं और उनके पिरामिडों में मिलने वाला सूर्यचिन्ह उस आदि पुरुष के सूर्यवंश का प्रतीक है। तुर्की और भारत में खुदाई में मिले वैदिक सभ्यता के सूचक विभिन्न पुरावशेषों का काल पन्द्रह हजार वर्ष ईस्वी पूर्व तक आंका गया है।

कहने का अभिप्राय यह है कि नवीन खोजों के सन्दर्भ में, कुछ अंग्रेजों द्वारा प्रस्तुत कालनिर्धारण अर्थहीन और मूल्यहीन हो चुका है। आज वे कल्पित स्थापनाएं धराशायी हो चुकी हैं। ऐसे में उनको स्वीकार करने का औचित्य ही नहीं बनता। हां, यह कटु सत्य है कि कुछ लोग और वर्ग अपने नकारात्मक पूर्वाग्रहों, निहित स्वार्थों और निहित सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उपनिवेशवादी अंग्रेजों द्वारा कल्पित मान्यताओं एवं काल-सीमाओं को बनाए रखना चाहते हैं।

अधिकांश विचारक इस मत से सहमत हैं कि मनुस्मृति का मूल प्रवक्ता मनु है और वह भी आदिकालीन ब्रह्मा का पुत्र स्वायम्भुव मनु ही है। इस मत को वर्णित करने वाली एक सम्पूर्ण साहित्यिक परम्परा मिलती है। मैं भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं। इस सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री के आधार पर दो प्रकार से विचार किया जा सकता है—

(अ) अन्तःसाक्ष्य के आधार पर-

१. मनुस्मृति की शैली—मनुस्मृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनुस्मृति की रचनाशैली 'प्रवचनशैली' है, अर्थात् मनुस्मृति मूलतः प्रवचन है। बाद में मनु के शिष्यों ने उनका संकलन करके उसे एक शास्त्र या ग्रन्थ का रूप दिया है। मनुस्मृति के 'भूमिकारूप' प्रथम अध्याय के पहले चार श्लोकों के "**मनुम्.....अभिगम्य महर्षयः ....वचनमब्रुवन्** (१ । १)," **भगवन् सर्ववर्णानां......धर्मान्नो वक्तुमर्हसि**" (१ । २) "**त्वमेको अस्य सर्वस्य.....कार्यतत्त्वार्थवित् प्रभो**" (१ । ३) "**प्रत्युवाच....महर्षीन् श्रूयताम् इति**" (१ । ४) आदि वचनों से ज्ञात होता है कि अपने मूलरूप में मनुस्मृति महर्षियों

की जिज्ञासा का महर्षि मनु दिया गया उत्तर है, जो प्रवचनरूप में है। ये सभी श्लोक और विशेषरूप से **"सः तैः पृष्टः" (१। ४)** पदप्रयोग यह सिद्ध करता है कि इसे बाद में अन्य व्यक्ति ने संकलित किया है। मनुस्मृति की प्रवचन शैली और १। १-४ श्लोकों में वर्णित घटना, जिसमें कि महर्षि लोग केवल मनु के पास धर्मजिज्ञासा लेकर आते हैं और फिर मनु ही उसका उत्तर देते हैं, तथा सम्पूर्ण मनुस्मृति में प्रारम्भ से अन्त तक मनु द्वारा १। ४ से प्रारम्भ की गई कहने-सुनाने की क्रियाओं का उत्तम पुरुष के एकवचन में प्रयोग, ये बातें यह सिद्ध करती हैं कि मनुस्मृति का प्रवक्ता मनु नामक राजर्षि और महर्षि है।

२. प्राचीन काल से अद्यावधि पर्यन्त इस ग्रन्थ का मनुस्मृति 'या' 'मानवधर्मशास्त्र' नाम प्रचलित होना भी इसे मनुप्रोक्त सिद्ध करता है।

३. यह मनु स्वायम्भुव ही है। इस बात को मनुस्मृति में स्पष्ट भी किया है और विभिन्न स्थलों पर मनु के साथ स्वायम्भुव विशेषण का प्रयोग भी किया है। प्रचलित मनुस्मृति में बीच-बीच में लगभग तीस स्थलों पर मनु का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन है। उनमें छह स्थलों पर स्पष्टतः 'स्वायम्भुव' विशेषण का प्रयोग किया है।[१] ये उल्लेख भी मनुस्मृति का प्रवक्ता स्वायभुव मनु को ही सिद्ध करते हैं।

४. निम्न श्लोकों में मनुस्मृति का रचयिता स्वायंभुव मनु को बतलाया गया है—

(क) इदं शास्त्रं तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः।
विधिवद् ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन्॥
स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षडवंश्या मनवोऽपरे॥

(१॥ ५८,६१॥

(ख) स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत्॥ १। १०२॥

---

१. (क) स्वायभुव मनु के नामोल्लेख वाले स्थल - १। ३२-३६, ५८-६१; ६। ५४; ८। १२४; ९। १५८॥

(ख) केवल मनु नामोल्लेख वाले स्थल - १। १-४, ११८, ११९, १२६; ३। ३६, १५०; ४। १०३; ५। ४१; ८। १३९, १६८, २०४, २४२, २७९, २९२, ३३९; ९। १७, १८२, १८३, २३९; १०। ६३, ७८; १२। १०७, १२६॥

यतोहि भृगु स्वायम्भुव मनु का शिष्य था। (१। ३४-३५,३। १९४, १२। २) अत: उसके शिष्य भृगु के वचनों में उल्लिखित मनु भी स्वायम्भुव मनु ही है, जिसको शास्त्र का कर्त्ता कहा है—

(ग) यथेदमुक्तवान् शास्त्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया॥ १। ११९॥

(घ) एवं स भगवान् देवो लोकानां हिकाम्यया।
धर्मस्य परमं गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान्॥१२। ११७॥

(ङ) ''मानवस्यास्य शास्त्रस्य'' १२। १०७॥

(च) ''एतन्मानवं शास्त्रम् भृगुप्रोक्तम्'' १२। १२६।

यद्यपि मेरे अनुसन्धानकार्य के आधार पर ये सभी श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध हुए हैं, अत: मौलिकवत् प्रामाणिक नहीं है; किन्तु फिर भी इन्हें ऐतिहासिक सन्दर्भ में पारम्परिक जनश्रुति के समान पोषक आधार के रूप में ग्रहण किया है। इन सबमें मनु स्वायम्भुव को मनुस्मृति का रचयिता कहा गया है।

५. ऐतिहासिक ग्रन्थ, ब्रह्मावर्त प्रदेश में स्थित बर्हिष्मती नगरी को स्वायम्भुव मनु की राजधानी मानते हैं। मनुस्मृति में ब्रह्मावर्त प्रदेश को धर्मशिक्षा, सदाचार का केन्द्र घोषित करके सर्वोच्च महत्त्व दिया गया है। [१। १३६-१३९ (२।१७-२०)]। इसी क्षेत्र में मनुस्मृति का प्रवचन-प्रणयन हुआ था। इससे भी मनुस्मृति का रचयिता स्वायम्भुव मनु होने का संकेत मिलता है।

६. मनु के काल का अनुमान लगाने में मनुस्मृति तथा मनुस्मृति से भिन्न भारतीय साहित्य में प्राप्त वंशावलियां भी सहायक हैं। मनुस्मृति में तीन स्थानों पर मनु के वंश की चर्चा है—(क) ब्रह्मा से विराज, विराज से मनु, मनु से मरीचि आदि दश ऋषि उत्पन्न हुए (१। ३२-३५)। (ख) ब्रह्मा से मनु ने धर्मशास्त्र पढ़ा, मनु से मरीचि, भृगु आदि ने। यह विद्यावंश के रूप में वर्णन है। (१। ५८-६०) (ग) हिरण्यगर्भ=ब्रह्मा के पुत्र मनु हैं और मनु के मरीचि आदि। (३। १९४)। यद्यपि मनुस्मृति के प्रसंगों में ये तीनों ही स्थल प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं, किन्तु पारम्परिक जनश्रुति के रूप में यदि इन्हें स्वीकार करें तो स्वायम्भुव मनु, पुत्र के रूप में ब्रह्मा से दूसरी पीढ़ी में वर्णित है। यही तथ्य इसके स्वायंभुव (स्वयंभू=ब्रह्मा, उसका पुत्र) विशेषण से स्पष्ट होता है।

महाभारत तथा पुराणों में भी वंशावलियां प्राप्त हैं। उनमें भी मनु को ब्रह्मा का पुत्र बताया गया है अथवा शिष्य के रूप में उसका सीधा सम्बन्ध ब्रह्मा से वर्णित है (आदि० १.३२; शान्ति० ३३५.४४)।

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक मान्यताओं के अनुसार ब्रह्मा को आदि सृष्टि में माना जाता है और भारत का प्रत्येक ज्ञात जन्म-वंश तथा विद्या-वंश ब्रह्मा से ही प्रारम्भ होता है। इस प्रकार मनु और मनुस्मृति का काल भी आदिसृष्टि में स्थिर होता है।

७. मनुस्मृति और उसकी भाषा - यह कहा जाता है कि मनुस्मृति की भाषा बड़ी सुबोध, सरल लौकिक भाषा है। वह पाणिनि के व्याकरण का अनुगमन करती है। अतः वर्तमान मनुस्मृति पर्याप्त अर्वाचीन है।

यह ठीक है कि मनुस्मृति की भाषा सुबोध और सरल लौकिक भाषा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस कारण इसको अर्वाचीन भाषा कहा जाये। मनुस्मृति एक धर्मशास्त्र है, जिसका सम्बन्ध सर्वमान्य रूप से सभी जनों से है। इसमें लोगों के आचार-विचार से सम्बन्धित निर्देश हैं। अतः ऐसे ग्रन्थ की भाषा का सुबोध, सरल होना स्वाभाविक भी है, और आवश्यक भी। प्राचीन काल में साहित्यिक भाषा के रूप में वैदिक भाषा का प्रयोग था तो व्यवहार में लौकिक संस्कृत का प्रयोग था।

मनुस्मृति में कुछ पूर्वपाणिनीय प्रयोग भी मिलते हैं। इसमें पाये जाने वाले वैदिक प्रयोग और वैदिक प्रयोगशैली, इसे मूलतः पाणिनि पूर्व एवं वैदिकालीन संकलन सिद्ध करते हैं। यथा -

(क) ''मेत्युक्त्वा'' [८। ५७] **मे + इत्युक्त्वा'** सन्धि पाणिनीय नहीं है। इसमें इकार का पूर्वरूप छान्दस (वैदिक) है।

(ख) ''हापयति'' [३.७१] का 'छोड़ता है' अर्थ है। यहां प्रेरणार्थक न होकर प्रकृत्यर्थ (मूल अर्थ) में 'णिच्' छान्दस है।

(ग) २.१६९-१७१ श्लोकों में **'मौञ्जीबन्धन'** और **''मौञ्जिबन्धन''** पदों के प्रयोग में विकल्प से ह्रस्व छान्दस प्रयोग है।

(घ) 'उपनयनम्' के अर्थ में **''उपनायनम्''** प्रयोग [२.३६] पूर्व पाणिनीय है। यहां दीर्घ को, पाणिनि ने व्याकरणसम्मत न होते

हुए भी शिष्टप्रयोग मानकर **"अन्येषामापि दृश्यते"** [अष्टा० ६.३.१३७] सूत्र में स्वीकार कर लिया है।

(ङ) १.२० में **"आद्याद्यस्य"** प्रयोग है। यह **"आद्यस्य-आद्यस्य"** होना चाहिये था, किन्तु पहले **'आद्यस्य'** का सुप् लुक् छान्दस प्रयोग के कारण माना गया है ('सुपां सुलुक्.....' अष्टा० ७.१, ३९)।

(च) वैदिक भाषा की प्रयोग शैली—"आ हैव स नखाग्रेभ्य :" [२.१६७], **"पुत्रका इति होवाच"** [२.१५१] **"पितृणामात्मनश्च ह"** [९.२८] आदि प्रयोग वैदिक शैली के हैं।

इसकी भाषा के विषय में एक संभावना यह भी दिखायी पड़ती है कि पहले इसमें वैदिक प्रयोगों की अधिकता थी, जो धीरे-धीरे बदली जाती रही। क्योंकि यह सर्वसामान्य जनों से सम्बन्ध रखने वाला ग्रन्थ था, अत : इसकी भाषा में भी समयानुसार परिवर्तन होता रहा। ऐसे उदाहरण हमारे सामने विद्यमान हैं, जिनसे यह संभावना पुष्ट होती है। वाल्मीकि-रामायण के दाक्षिणात्य, वंगीय और पश्चिमोत्तरीय, ये तीन संस्करण प्रसिद्ध हैं एवं प्रचलित हैं। इनमें दाक्षिणात्य पाठ में अभी भी वैदिक प्रयोगों का बाहुल्य है, जबकि अन्य संस्करणों में अधिकांश को बदलकर लौकिक कर दिया गया है। यही स्थिति मनुस्मृति के साथ भी संभव है। ऐसा इसलिए भी संभव प्रतीत होता है कि कालक्रम की दृष्टि से मनु सब ऋषियों से प्राचीन हैं और उनकी स्मृति सर्वाधिक प्रसिद्ध रही है।

८. मनुस्मृति में केवल वेदों [१। २१, २३; ३। २; ११। २६२-२६४; १२। १११-११२ आदि] और वेदांगों [२। १४०, २४१] का ही उल्लेख मिलता है। यह उल्लेख भी एक विद्या के रूप में है न कि किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा रचित ग्रन्थ के रूप में। इसकी पुष्टि के लिए दो तर्क दिये जा सकते हैं—(क) इन विद्याओं के साथ न तो कहीं रचयिता का संकेत है और न ग्रन्थरूप का। (ख) १२। १११ में इन विद्याओं के ज्ञाताओं का **'हेतुक : 'तर्की' 'नैरुक्तः धर्मपाठकः'** आदि विद्याविशेषणों से परिगणन किया है, न कि किसी ग्रन्थविशेष के ज्ञाता के रूप में। एक-एक विद्या पर विभिन्न आचार्यों के ग्रन्थ प्राप्त हो रहे हैं। किसी भी ग्रन्थ का उल्लेख न होना और अन्य ब्राह्मण, उपनिषद् आदि विधाओं का उल्लेख न मिलना यह

सिद्ध करता है कि यह स्मृति उन सबसे पूर्व की रचना है।

मनुस्मृति का आधार केवल वेद ही हैं। मनु सीधे वेद से विज्ञात बातों को ही धर्मरूप में वर्णित करते हैं और उसी को आधार मानने का परामर्श देते हैं [१.४, २१, २३; २.१२८, १२९, १३०, १३२; १२.९२-९३, ९४, ९७, ९९, १००, १०६, ११०-११२, ११३ आदि]। वेद और मनुस्मृति के बीच अन्य किसी ग्रन्थ का उल्लेख न मिलना यह इंगित करता है कि यह मूलतः उस समय की रचना है जब धर्म में केवल वेदों को ही आधारभूत महत्त्व प्राप्त था, अन्य ग्रन्थों को इस योग्य प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। यह समय अत्यन्त प्राचीन ही था।

(आ) बाह्य साक्ष्य के आधार पर

(१) आधुनिक समीक्षकों द्वारा वेदों के बाद सबसे प्राचीन माने गये तैत्तिरीय संहिता और ताण्ड्य ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में मनु के वचनों को औषध के समान कल्याणकारी माना है। यह कथन इस बात का संकेत है कि उस काल तक मनु की धर्मशास्त्रकार के रूप में ख्याति और प्रामाणिकता सुस्थापित हो चुकी थी—

(क) **''मनुर्वै यत्किञ्चावदत् तद् भेषजं भेषजतायै।''**

(तैत्ति० सं० २.२.१०.२, ३.१.९.४; तां० ब्रा० २३.१६.७)

(ख) ऐतरेय ब्राह्मण में मनुवंशी राजा शर्यात मानव के राज्याभिषेक का वर्णन है (८.११)। यह सातवें मनु वैवस्वत के पुत्र इक्ष्वाकु का वंशज है। उसी ब्राह्मण में एक श्लोक आता है जो प्रायः मनु के श्लोक का रूपान्तर है या भावानुवाद है—

मनु- कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद् द्वापरं युगम्।
कर्मस्वभ्युद्यतःत्रेता विचरंस्तु कृतं युगम्॥ (९.३०२)

तैत्तिरीय ब्राह्मण में—

कलिः शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठन् त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥ (७.१५)

(ग) इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में मनु के श्लोक का यथावत् भाव वर्णित है—

मनु- आ हैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः।
यः स्त्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायः शक्तितोऽन्वहम्॥

(२.१६७)

शतपथ में-''अलंकृतः सुहितः सुहितः सुखे शयने शयानः

स्वाध्यायमधीते आ हैव स नखाग्रेभ्यस्तप्यते। य एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते।'' (११.५.७.४) इससे सिद्ध होता है कि मनुस्मृति ब्राह्मण आदि ग्रन्थों से प्राचीन है और वह मानव सृष्टि के आदिकाल की है।

(२) इसी मान्यता को निरुक्त ने मनु का मत उद्धृत करते हुए एक श्लोक से पुष्ट किया है—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्॥ ३। ४॥

अर्थात्—'दायभाग में पुत्र और पुत्री, दोनों का समान अधिकार होता है', यह विसर्गादौ=मानव सृष्टि के आदि काल में स्वायम्भुव मनु ने कहा है। यह मत वर्तमान मनुस्मृति के ९.१३०, १९२ श्लोकों में निर्दिष्ट है। यहां ''**विसर्गादौ**=मानव सृष्टि के आदिकाल'' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

(३) विभिन्न स्मृतियों में तो मनु का उल्लेख भी है और प्रशंसा भी। अनेक सूत्रग्रन्थों में भी मनु के नाम का तथा उसके मत का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें आश्वलायन श्रौतसूत्र [९.७.२; १०.७.१], आपस्तम्ब श्रौतसूत्र [३.१.७; ३.१०.३५], वासिष्ठ धर्मसूत्र [१.१७] आपस्तम्ब धर्मसूत्र [२.१४.११] बौधायन धर्मसूत्र [४.१.१४, ४.२.१६] गौतम धर्मसूत्र [२१.७] आदि उल्लेखनीय हैं।

(४) वाल्मीकि-रामायण किष्किन्धा काण्ड १८.३०, ३२ में मनु के नामोल्लेख पूर्वक दो श्लोक उद्धृत पाये जाते हैं—'**श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चरित्रवत्सलौ**' [वा०रामा०किष्कि० १८.३०] यहां स्पष्टतः **गीतौ='मनु द्वारा गाये'** पद पठित हैं।

(क) वे दोनों श्लोक अग्रिम प्रसंग में है। बालि-सुग्रीव द्वन्द्व—युद्ध में राम दूर खड़े होकर छुपकर बालि की हत्या कर देते हैं। मरणासन्न बालि राम के इस कृत्य को अधर्मानुकूल बताता है। राम उसका उत्तर देते हुए मनु के निम्न दो श्लोक प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हुए अपने कृत्य को धर्मानुकूल सिद्ध करते हैं। ये दोनों श्लोक वर्तमान मनुस्मृति में किंचित् पाठभेदपूर्वक ८.३१६, ३१८ में पाये जाते हैं-

राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥

शासनाद्वापि मोक्षाद् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।
राजात्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्विषम्॥

(ख) इनके अतिरिक्त वाल्मीकीय रामायण अयो० १०७.१२ में एक और श्लोक मिलता है, जो मनु० ९.१३८ में प्राप्त है। चतुर्थ पाद में पाठभेद के अतिरिक्त यह ज्यों का त्यों है। वहां यह श्लोक मनु के नाम के बिना उद्धृत है—

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः॥

भारतीय प्राचीन मान्यता के अनुसार वाल्मीकि-रामायण राम के समकालीन है और राम का काल लाखों वर्ष पूर्व माना जाता है। पाश्चात्य एवं आधुनिक भारतीय विद्वान् रामायण का रचनाकाल ई. पू. तीसरी शताब्दी से छठी ईस्वी पूर्व तक मानते हैं, जो कल्पित है।

इनके अतिरिक्त, रामायण में वर्णित राज्यव्यवस्था और चातुर्वर्ण्यव्यवस्था मनुस्मृति के अनुसार मिलती है। मनुस्मृति के समान रामायण में आठ अमात्यों की नियुक्ति का उल्लेख है। (बाल० ७.२)। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की रक्षा का दायित्व राजा का विहित है (सुन्दर० ३५. ११)।

५. महाभारत में, कई स्थलों पर स्वायंभुव मनु को एक धर्मशास्त्रकार के रूप में उद्धृत किया है और कुछ स्थलों पर उनके नामोल्लेख के साथ उनके मत और श्लोकों को भी उद्धृत किया है। वे सभी मत और श्लोक प्रचलित मनुस्मृति में पाये जाते है—

(क) दुष्यन्त-शकुन्तला प्रेम-प्रसंग में आठ-विवाहों का विधानकर्त्ता स्वायंभुव मनु को बताया है। जो मनु० ३.२०-३४ में वर्णित हैं—

"अष्टावेव समासेन विवाहा........मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्"

(आदि० ७३.८-९)

(ख) शान्ति. ३६ अध्याय में, मनु० १। १-४ श्लोकों की घटना का यथावत् वर्णन करते हुए बताया है कि ऋषि लोग धर्मजिज्ञासा के लिए स्वायंभुव मनु के पास पहुंचे। वहां मनु द्वारा दिये गये उत्तर में कुछ श्लोक ऐसे प्राप्त होते हैं जो वर्तमान मनुस्मृति में भी हैं, उनमें

कोई-कोई तो यथावत् है, कोई किंचित् पाठान्तर से है, तो कोई यथावत् भाव वाला है।[१]

(ग) शान्ति० ६७। १५-३० में, आदिकाल में लूटपाट, अराजकता आदि से तंग हुई प्रजा द्वारा मनु को राजा के रूप में वरण करने की घटना दी हुई है। वह मनु ब्रहमा का पुत्र है, अतः वह भी स्वायंभुव मनु की घटना है।[२] मनु को राजा बनाने के बाद प्रजा द्वारा जो करनिर्धारण किया गया है, यथा—'पशु और सुवर्ण का पचासवां भाग कर देंगे' यह करव्यवस्था वर्तमान मनुस्मृति ७। १३० में मिलती है—

''पञ्चाशद् भाग आदेयो राजा पशुहिरण्ययोः।''

(घ) शान्ति० ३३५। ४४, ४६ में एक धर्मशास्त्रकार के रूप में स्वायम्भुव मनु का ही वर्णन है—**''तस्मात् प्रवक्ष्यते धर्मान् मनुः स्वायम्भुवः स्वयम्''** (४४) **''स्वायम्भुवेषु धर्मेषु''** (४६) आदि।[३]

इसके अतिरिक्त महाभारत में अनेक स्थलों पर केवल मनु का नाम देकर उसके श्लोक या भाव उद्धृत किये हैं। उनमें से बहुत-से श्लोक वर्तमान मनुस्मृति में यथावत् मिलते हैं और भाव तथा उनका गठन भी यथावत् है। यथा - शान्तिपर्व ५६.२४ (मनु० ९.३२१), आदिपर्व ७३.९-१० (मनु० ३.२१ में) आदि। वहां मनु का नाम इस प्रकार स्मृत है— **''मनुना चैव राजेन्द्र गीतौ श्लोकौ महात्मना।''**

(शान्ति० ५६.३३)

६. महात्मा बुद्ध के प्रवचनों में मनुस्मृति के श्लोकों का यथावत् अनुवाद मिलता है, जो यह सिद्ध करता है कि बुद्ध के लिए मनुस्मृति सम्मान्य थी। बुद्ध लगभग २५५० वर्ष पूर्व जीवित थे।

---

१. (क) तैरेवमुक्तो भगवान् मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्। महा० शान्ति० ३६।५॥

(ख) यथावत् श्लोक-महा० शान्ति० में ३६। ३५, ४६, ४७; मनुस्मृति में क्रमशः ३। ११७; २। १३२; २। १३३॥ यथावत् भाव—महा० शान्ति० में ३६। २०; में १२। १०८-१०९॥ पाठान्तरपूर्वक—महा० शान्ति० में ३६। २७, २८; मनु में ४। २१८, २१७, २२०॥ भावग्रहण अन्य श्लोकों में भी है।

२. महा० आदि० १। ३२ भी द्रष्टव्य।

३. (क) ''मनु : स्वायंभुवोऽब्रवीत्'' आदि० ७३। ८-९॥ (ख) तैरेवमुक्तो भगवान् मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्। शुश्रूषध्वं यथावृत्तं धर्मं व्याससमासतः॥ शान्ति० १२ अ.॥ (घ) स्वायंभुव मनु द्वारा शास्त्ररचना, शान्ति० ३३५। ४४, ४६॥ आदि।

(द्रष्टव्य है प्रमाण गत अ० १.३ में 'भारत में मनुस्मृति की प्रतिष्ठा और प्रामाणिकता' शीर्षक में प्रमाण 'च')

७. बौद्ध महाकवि अश्वघोष ने अपनी 'वज्रकोपनिषद्' रचना में अपने विचारों की पुष्टि के लिए मनु के श्लोकों को उद्धृत किया है। यह राजा कनिष्क [७८ ई.] का समकालीन था।[१]

८. ईस्वी पूर्व के ग्रन्थों पर दृष्टिपात करते हैं तो, यद्यपि, याज्ञवल्क्य स्मृति में विषयों का वर्गीकण नये ढंग से किया है और बहुत सारे नये विषय भी अपनाये हैं, किन्तु मनु से मिलते हुए जो भी विषय हैं उनमें ऐसा लगता है जैसे मनुस्मृति को सामने रखकर ही उनका अपने शब्दों में संक्षेपीकरण किया हो।[२] इसका काल १०२ ई. पू. माना जाता है। इस विषय में सभी विद्वान् एकमत हैं कि मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति से पर्याप्त प्राचीन रचना है।

९. इसी प्रकार आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र को [१००-३०० ई.पू.] पढ़ने पर प्रतीत होता है कि अपने बहुत-से नये विषयों के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ प्राचीन बातों के वर्णन में मनुस्मृति को आधार बनाकर वर्णन किया है।[३] बहुत-से स्थलों पर मनु के मत का नामपूर्वक उल्लेख है।[४] वर्तमान मनुस्मृति में ७.१०५ पर पाया जाने वाला निम्न श्लोक कौटिल्य अर्थशास्त्र प्र १०.अ. १४ में लगभग उसी रूप में पाया जाता है—

नास्य छिद्रं परो विद्यात् विद्याच्छिद्रं परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवांगानि रक्षेद्विवरमात्मनः॥

१०. भासकृत 'प्रतिमानाटक' [२००-३०० ई.पू., कुछ के मत में ४००-५०० ई.पू.] में रावण के मुख से उच्चारित वाक्य से यह संकेत मिलता है कि मास से पूर्व 'मानवधर्म शास्त्र' एक प्रसिद्धिप्राप्त शास्त्र था। वह वाक्य है—

---

१. धर्मशास्त्र का इतिहास-पी. वी काणे
२. द्रष्टव्य यथा—याज्ञ० स्मृति के २।७, १।१५, १।३५; २।३६, आदि श्लोकों में मनु० २।१२, २।६९, १।१४१, १४३, १४४; ८।४० श्लोकों का संक्षिप्त भाव।
३. द्रष्टव्य अर्थशास्त्र प्र. ३।अ. ६, २।४, ३।५, १४।२८; दिनचर्या प्र. ९७ में मनु० ७।३७, ७।३९ तथा ४३. ७।३७-२२५ दिनचर्या, ७।१५५ श्लोकों का यथावत् भाव।
४. द्रष्टव्य प्र० ८, अ० १२; १.१; १०.१४ आदि।

''रावणः- काश्यपगोत्रोऽस्मि सांगोपांगवेदमधीये मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रम्.........च'' (पृ. ७९)

११. शूद्रकरचित 'मृच्छकटिकम्' नाटक को इतिहासकार ई. पू. तीसरी शताब्दी की रचना मानते हैं। इसमें मनु के किसी ग्रन्थ का श्लोक उद्धृत करते हुए 'ब्राहमण अवध्य है' मनु का यह मत मनु के नामोल्लेखपूर्वक दिया है —

अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह॥ मृच्छ. ९। ३९॥

१२. विश्वरूप [७९०-८५० ई.] ने अपने याज्ञवल्क्य स्मृति-भाष्य और यजुर्वेदभाष्य में मनुस्मृति के लगभग दो सौ श्लोक उद्धृत किये है।[१]

१३. इससे परवर्ती मिताक्षरा के लेखक विज्ञानेश्वर [१०४०-११०० ई.] ने भी अपने भाष्य में मनुस्मृति के सैंकड़ों श्लोक उदृत किये हैं।[२]

१४. शंकराचार्य ने अपने वेदान्तसूत्र भाष्य में मनुस्मृति के कई श्लोक अपने विचारों की पुष्टि के लिए ग्रहण किये और कुछ श्लोकों के साथ तो मनु के नाम का स्पष्ट उल्लेख है।[३]

१५. ५०० ई. में [कुछ के मतानुसार २००-४०० ई.] जैमिनिसूत्र भाष्य में शबरस्वामी द्वारा मनु के मतों का उल्लेख किया मिलता है।

(२.२) मानवों के आदिपुरुष राजर्षि मनु और उनका काल

विश्व के उपलब्ध साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन भारत का वैदिक साहित्य है। वैदिक साहित्य में प्राप्त इतिहास के अनुसार मनु

---

१. विश्वरूप ने याज्ञ० स्मृति १।४५ तथा २।७३, ७४, ८३, ८५ श्लोकों के भाष्य पर मनु० के ८।६८, ७०, ७१, १०५, १०६, ३४० श्लोक उदृत किये हैं।

२. याज्ञ० स्मृति १।७, ५३, ६२, ६९, ७२, ७८, ८०; २।१, २, ५, २१, २६ आदि श्लोकों के भाष्य पर मनु० के २।१०, ३।५, ३।४४, ९।६९, ३।४९; ८।१२८, ८।१३, ८।४-७, ८।३५०-३५१, ८।१२९ श्लोक उदृत किये हैं।

३. शंकराचार्य ने १।३।२८; १।३।३६; २।१।१; २।१।११ ; ३।४।३८; ४।२।६ सूत्रों पर मनु० के १।२१ ; १०।४ तथा १२।६; १२।९१; १२।१०५-१०६; २।८७; १।२७ श्लोक उदृत किये हैं। ३।१।१४ पर मनु का नामोल्लेख है और २।१।१ में 'मनुर्वै यत्किञ्चावदत्.......' यह ब्राह्मण ग्रन्थों का वाक्य उदृत करके मनु की प्रशंसा है।

स्वायंभुव मानवों के आदिपुरुष हैं और उनका स्थितिकाल आदि मानवसृष्टि में है।

(अ) भारतीय इतिहास-परम्परा में मनु का काल एवं आदिपुरुष

आदिसृष्टि कहते ही बहुत-से लोग चौंकते हैं, किन्तु चौंकने की कोई बात नहीं है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सृष्टि उत्पन्न होते ही मनु उत्पन्न हो गये। इसका अभिप्राय यह है कि सृष्टि के या मानव सभ्यता के ज्ञात इतिहास में जो आरम्भिक काल है, वह मनु का स्थिति काल है। मनु स्वायंभुव या मनुवंश से पूर्व का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। जो भी इतिहास मिलता है वह मनु या मनुवंश से प्रारम्भ होता है, अतः मनु ऐतिहासिक दृष्टि से आरम्भिक ऐतिहासिक महापुरुष हैं। वैदिक परम्परा में यह सारा इतिहास क्रमबद्ध रूप से उपलब्ध होता है। कुछ बिन्दुओं पर संक्षिप्त चर्चा की जाती है—

(क) उपलब्ध वैदिक साहित्य में वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। विश्व के सभी लेखक इस शोध पर एक मत हैं कि "ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है।" वेदों के पश्चात् क्रमशः संहिता ग्रन्थों, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, सूत्रग्रन्थों का रचनाकाल माना जाता है। लौकिक संस्कृत में मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण आदि उपलब्ध हैं। इन सब ग्रन्थों में मनु का इतिवृत्त, वंशविवरण, उद्धरण, उल्लेख, श्लोक आदि मिलते हैं। यह इस तथ्य को पुष्ट करता है कि वेदों के बाद के इस समस्त साहित्य से पूर्व मनु स्वायम्भुव हुए हैं, अतः वे उपलब्ध साहित्य और इतिहास से पूर्व के महापुरुष हैं। इस साहित्यिक विवरण को कोई नहीं झुठला सकता। कालनिर्धारण के आंकड़ों में भले मतान्तर हो किन्तु इस मन्तव्य में कोई मतान्तर नहीं है कि मनु उक्त साहित्य-रचना काल से पूर्व हो चुके हैं। भारतीय मतानुसार उपलब्ध संहिता ग्रन्थों का संकलन-काल कम से कम १०-१२ हजार वर्ष पूर्व का है। उससे पूर्व भी वैदिक साहित्य बनता-बिगड़ता रहा है। वैदिक साहित्य के प्रमाण इसी अध्याय में विषयानुसार प्रदर्शित हैं।

(ख) वैदिक साहित्य में, और चमत्कारिक रूप से विश्व के सभी धार्मिक ग्रन्थों में, सृष्टि का आदितम पुरुष ब्रह्मा अथवा आदम को माना गया है। ब्रह्मा का वंश मनु का पूर्वजवंश है। संस्कृत भाषा

में ब्रह्मा को 'आदिम' 'आत्मभूः' 'स्वयम्भूः' कहा है। बाइबल और कुरान में वर्णित 'आदम' संस्कृत के 'आदिम' का अपभ्रंश है और नूह, मनु (मनुस् के स को ह होकर और फिर म का लोप होकर) का अपभ्रंश है। इस प्रकार विश्व का सारा साहित्य ब्रह्मा को आदितम पुरुष मानता है।

वैदिक इतिहास के गवेषक पं० भगवद्दत्त जी के अनुसार मानव सृष्टि के आदि में ब्रह्मा का वंश चला अर्थात् इस वंश में अनेक प्रसिद्ध ब्रह्मा हुए। वैदिक साहित्य में इनको 'प्रजापति' कहा गया है अर्थात् ये 'प्रजाओं के संरक्षक' या 'प्रजाप्रमुख' मानने जाते थे जिनके निर्देश पर प्रजाएं व्यवहार-निर्वाह करती थीं। ब्रह्मा (अन्तिम) का पुत्र (कहीं-कहीं पौत्र) मनु हुआ। क्योंकि ब्रह्मा का एक नाम 'स्वयम्भू' भी प्रचलित था, अतः वंश के आधार पर पहले मनु का 'मनु स्वायंभुव' नाम प्रसिद्ध हुआ। मनु के साथ ही ब्रह्मा नामक वंश का लोप हो गया और अतिप्रसिद्धि तथा प्रमुखता के कारण मनु का वंश प्रचलित हुआ। इस प्रकार आदितम पुरुष का वंशज-पुत्र होने के कारण मनु आदिपुरुष सिद्ध होता है (वंशावली अग्रिम पृष्ठों में प्रदर्शित है)। आगे चलकर मनु स्वायम्भुव के वंश में अनेक वंशधर हुए जिनमें मनु उपाधिधारी अन्य तेरह व्यक्ति प्रजापति महापुरुष के रूप में मान्य हुए। प्रजाप्रमुख राजर्षि होने के कारण उन्हें मनु की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रकार चौदह मनु इतिहास-प्रसिद्ध हैं।

स्वायंभुव मनु 'प्रजापति' अर्थात् 'प्रजाप्रमुख' भी थे और आदिराजा भी थे। पिता ब्रह्मा के कहने पर वे विधिवत् प्रथम राजा बने। इस प्रकार वे ब्राह्मण से क्षत्रिय बन गये। प्राचीन इतिहास के अनुसार वे सप्तद्वीपा पृथ्वी के चक्रवर्ती शासक थे तथा ब्रह्मावर्त प्रदेश (वर्तमान हरियाणा, पंजाब, हिमाचल, उत्तरप्रदेश, राजस्थान का जुड़ा भाग) में 'बर्हिष्मती' नामक राजधानी से राज्य संचालन करते थे।

(ग) जैसा कि कहा गया है कि स्वायम्भुव मनु के वंश में इस मनु सहित चौदह मनु राजर्षि हुए जिनका वंशक्रम आगे दिया गया है। इनमें सातवां वैवस्वत मनु अतिविख्यात और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। मनु वैवस्वत के पुत्र और एक पुत्री थी। इनके बड़े पुत्र इक्ष्वाकु से क्षत्रियों का सूर्यवंश चला और पुत्री इला से चन्द्रवंश

चला। इनकी प्रसिद्धि के कारण बाद में सभी क्षत्रिय वंश इन दो वंशों में समाहित हो गये। आज तक भारत और निकटवर्ती देशों के क्षत्रियों में यही दो वंश मिलते हैं। बाइबल और कुरान में वर्णित नूह (मनु) के दो वंश भी यही हैं—१. हेम (=सूर्य) वंश, २. सेम (=सोम अर्थात् चन्द्र) वंश। इस प्रकार क्षत्रियों का पूर्वज वैवस्वत मनु था और उसका भी पूर्वज मनु स्वायंभुव था।

(घ) स्वायंभुव मनु राजा के साथ वेदशास्त्रों के ज्ञाता और धर्म (वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक) के विशेषज्ञ तथा राजनीतिवेत्ता थे। उनसे अनेक ऋषियों ने धर्मों की शिक्षा ग्रहण की, ऐसे उल्लेख महाभारत, पुराण आदि में आते हैं। आरम्भिक गोत्रप्रवर्तक ब्राह्मण ऋषि उनके शिष्य रूप पुत्र थे, अतः मनुस्मृति में उन ऋषियों को मनु के पुत्र कहा है। प्राचीन काल में वंश दो प्रकार से चलते थे—एक, जन्म से; दूसरा, विद्या से। प्रतीत होता है कि मनुस्मृति के श्लोकों में वर्णित ऋषिगण मनु के विद्यावंशीय पुत्र थे। वे हैं—

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥ (१.३५)

मनु ने इन प्रजापतियों का निर्माण किया—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद।

आरम्भ में मनु के इन्हीं विद्यापुत्रों से ब्राह्मण वंश चले। कालान्तर में इन्हीं ब्राह्मण और क्षत्रिय वंशों में वर्णपरिवर्तन, वर्णविकास अथवा वर्ण-विकार होने से अन्य वर्ण बने। प्राचीन काल में समय-समय पर वर्णों में परस्पर परिवर्तन होता रहता था। (द्रष्टव्य अ० ३ में वर्णपरिवर्तन के उदाहरण)। इस ऐतिहासिक वंशक्रम के आधार पर मनु मानवों के या चारों वर्णों के आदिपुरुष सिद्ध होते हैं।

(ङ) मनु स्वायम्भुव के वंश का संक्षिप्त विवरण—

इक्ष्वाकु

(इससे सूर्यवंश चला। विशेषत: अयोध्या और मिथिला का राजवंश उसी परम्परा का है, जिसमें श्री रामचन्द्र जैसे मर्यादापुरुषोत्तम हुए। आज के सूर्यवंशी जन इसी वंश के हैं।)

पुत्री इला+ पति बुध

पुरूरवा ऐल (प्रयाग तथा हिमालय पार का राजा)

(इला से क्षत्रियों का चंद्रवंश चला जिसमें महाभारत तक कौरव, पांडव तथा श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष हुए। आज के चन्द्रवंशी लोग इसी परम्परा के वंशज हैं।)
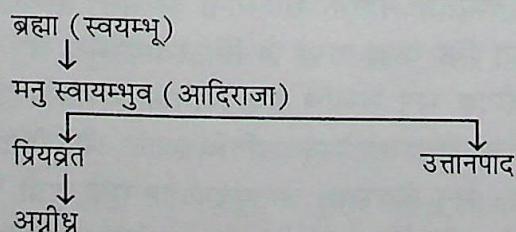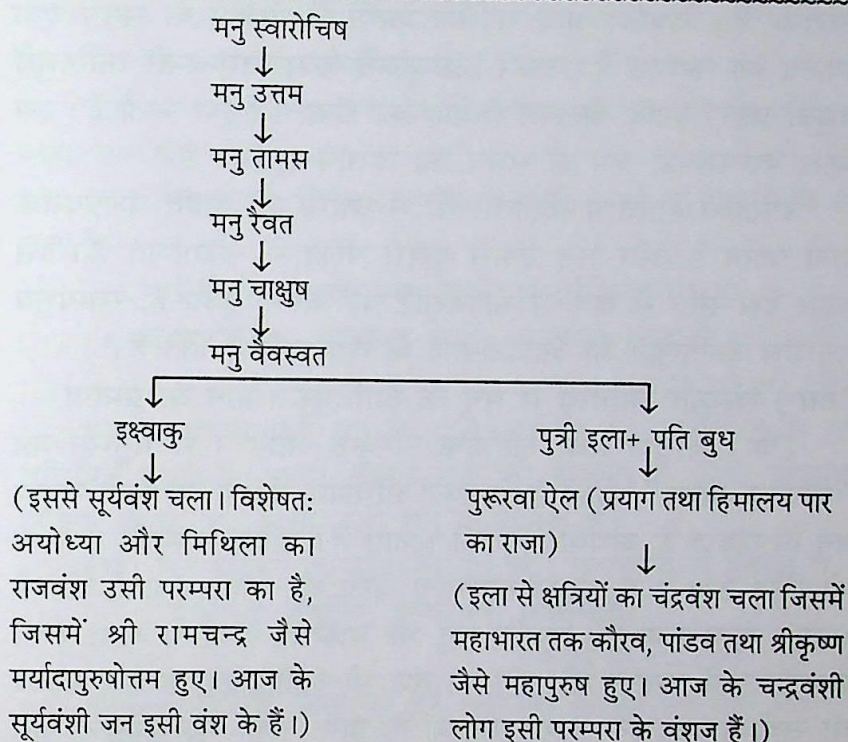
अन्य सात मनु सूर्यसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, रौच्य और भौत्य भी इसी वंश—परम्परा में हो चुके हैं। ये चौदह मनु इतने विख्यात हुए हैं कि सृष्टि-स्थिति की सम्पूर्ण काल-अवधि (४,३२,००,००,०००) को भारतीय ज्योतिष में चौदह मन्वन्तरों में विभाजित किया है और प्रत्येक मन्वन्तर की कालावधि का नाम क्रमशः इन्हीं मनुओं के नाम पर रखा गया है। इस समय सप्तम 'वैवस्वत मन्वन्तर' चल रहा है। पहला स्वायंभुव मन्वन्तर था। इस वंशक्रम के आधार पर भी स्वायंभुव मनु मानवसृष्टि के आदि पुरुष सिद्ध होते हैं।

सृष्टि-उत्पत्ति के इस समय को सुनकर पाश्चात्य और आधुनिक लोग अत्यधिक आश्चर्य करते हैं और विश्वास भी नहीं करते। उन्हें यह जिज्ञासा होती है कि कालगणना का इतना हिसाब कैसे रखा गया? इसके उत्तर में उन्हें एक व्यवहार में प्रचलित प्रमाण सम्पूर्ण देश में उपलब्ध हो जायेगा। भारतीयों ने वर्षों की बात तो छोड़िये पल और प्रहर तक का हिसाब रखा है। ज्योतिषीय पंचांगों में यह आज भी

उपलब्ध है। विवाह आदि धार्मिक कृत्यों में संस्कार के समय एक संकल्प की परम्परा है। उसमें **'आर्यावर्ते वैवस्वतमन्वन्तरे कलियुगे अमुक प्रहरे'** आदि बोलकर विवाह का संकल्प किया जाता है। इस प्रकार परम्पराबद्ध रूप से समय का हिसाब सुरक्षित है।[१]

उपलब्ध भारतीय वंशावलियों में ब्रहमा को आदि वंशप्रवर्तक माना जाता है और मनु उससे दूसरी पीढ़ी में परिगणित है। इस प्रकार इस सृष्टि में जब से मानवसृष्टि का प्रारम्भ हुआ है; स्वायंभुव मनु उस आदिसृष्टि या आदिसमाज के व्यक्ति सिद्ध होते हैं।[२]

(आ) संस्कृत साहित्य में मनु के आदिपुरुष होने के प्रमाण

(क) वैदिक तथा लौकिक संस्कृत साहित्य में मनुष्यों को **''मानव्यः प्रजाः''** कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि सभी मनुष्य मनु के वंशज हैं अथवा मनु की प्रजाएं हैं। वैदिक संस्कृति में राजा को पिता तथा प्रजा को पुत्रवत् माना जाता था, अतः प्रजाओं को भी सन्तान कहा गया है। राजर्षि मनु भी चक्रवर्ती राजा थे अतः सभी प्रजाएं उनकी सन्तान थीं। मनु का वंश भी अतिविशेष था और महत्त्व भी सर्वोच्च था। इस कारण मनुष्यों के प्रायः सभी मूल संस्कृत नाम 'मनु' शब्द से बने हैं। इसी मान्यता को स्थापित करते हुए वैदिक ग्रन्थ काठक ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय संहिता में कहा है—

''ताःइमाः मानव्यः प्रजाः''

(काठक० २.३०.२ तथा तैत्ति० सं० ५.१.५.६)

अर्थ—ये सभी प्रजाएं (मनुष्य) मनु के वंशज हैं।

---

१. मनु० १।६४-७३, ७६, ८० श्लोकों में चतुर्युगी और मन्वन्तर कालगणना का पूर्ण विवरण है। विस्तृत जानकारी के लिए पाठकगण मेरे भाष्य में उन श्लोकों पर समीक्षाएं देखें।

२. पाश्चात्य और आधुनिक लोग सृष्टि उत्पत्ति के इस समय पर अविश्वास करते हैं। वे प्रत्येक आधुनिक वैज्ञानिक बात को ही प्रामाणिक समझते हैं। उनके लिए इस सृष्टि के संवत् की पुष्टि हेतु एक वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत है। यह एक सुखद आश्चर्य की बात है कि सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यता बदल गयी है, और उन्होंने जो नयी मान्यता प्रस्तुत की है, वह भारतीय प्राचीन मान्यता से मिलती-जुलती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक मैडम क्यूरी ने रेडियम धातु की खोज की है। मिट्टी में मिलने वाले रेडियम के कणों का परीक्षण और अध्ययन करके, उनमें नियत समय में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर, वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि 'इस पृथ्वी को बने हुए लगभग दो अरब वर्ष हो चुके है।' (रेडियम—भगवती प्रसाद श्रीवास्तव; साहित्य रसायन, पृ. ५७ प्रकाशक-कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय)।

(ख) आचार्य यास्क निरुक्त में इसी मान्यता को स्थापित करते हैं— **"मनोरपत्यं मनुष्यः (मानवः)"**(३.४)

अर्थ—'मनु की सन्तान होने के कारण सबको मनुष्य या मानव कहा जाता है।'

(ग) महाभारत में मानव वंश का प्रवर्तक मनु स्वायंभुव को माना है—

मनोर्वंशो मानवानाम्, ततोऽयं प्रथितोऽभवत्।
ब्रह्मक्षत्रादयः तस्मात्, मनोः जातास्तु मानवाः॥

(आदिपर्व ७५.१४)

अर्थ—मानव वंश मनु के द्वारा प्रवर्तित है। उसी मनु से यह प्रतिष्ठित हुआ है। सभी मानव मनु की सन्तान हैं अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी उसी मनु के वंशज हैं।

(घ) मनु स्वायम्भुव ब्रह्मा का पुत्र था। महाभारत में लिखा है—

"पैतामहः मनुर्देवः तस्य पुत्रः प्रजापतिः।"

(आदिपर्व ६६.१७)

अर्थ—'पितामह ब्रह्मा का पुत्र मनु था। उसको देव और प्रजापति भी कहते हैं।'

(ङ) **"स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते।"**

(ब्रह्माण्ड पुराण १.२.९)

अर्थ—'वह स्वायम्भुव मनु 'आदिपुरुष' या 'पूर्वपुरुष' माना जाता है।'

इस प्रकार भारतीय प्राचीन साहित्य और इतिहास के अनुसार मनु मानवों के प्रमुख आदिपुरुष हैं। आदिपुरुष होने के कारण वे मानव जाति द्वारा समादरणीय हैं। मनु के इतिहास के रूप में मानव जाति का आदि इतिहास सुरक्षित है, यह प्रसन्नता का विषय है।

(इ) आधुनिक मतों के अनुसार स्वायंभुव मनु का काल—

आधुनिक इतिहासकारों ने प्राचीन मतों को अमान्य करके नये सिरे से समग्र इतिहास पर विवेचन प्रारम्भ किया हुआ है। ये इतिहासकार अधिकतर पाश्चात्य विद्वानों की कल्पनाओं एवं कार्यपद्धति से प्रभावित हैं। यद्यपि इनके मतों में अनुसन्धान के आधार पर परिवर्तन आता रहता है, तथापि अब तक स्थिर हुए कुछ आधुनिक मतों का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

श्री के. एल. दफ्तरी स्वायंभुव मनु का काल २६७० ई. पू. मानते हैं।[१] श्री त्र्यं. गु. काले ने पुराणों के आधार पर मनु का काल ३१०२ ई. पूर्व निर्धारित किया है।[२] लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने ज्योतिर्विज्ञानीय तत्त्वों के आधार पर प्राचीन वैदिक साहित्य का कालनिर्णय करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार कृत्तिका नक्षत्र में वसन्तारम्भ के समय ब्राहमण ग्रन्थों की रचना हुई और मृगशिरा नक्षत्र के काल में वैदिक मन्त्रसंहिताओं की रचना हुई। खगोल और ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कृत्तिका और मृगशिरा नक्षत्रों में वसन्तारम्भ क्रमशः आज से ४५०० ई.एवं ६५०० वर्षों पूर्व हुआ था। इस प्रकार इन ग्रन्थों का काल क्रमशः २५०० ई. पू. तथा ४५०० ई०पू० के लगभग निर्धारित होता है।[३] इस आधार पर मनु का काल भी ब्राहमणग्रन्थों से पूर्व इसी कालावधि के निकट निर्धारित होगा।

स्वरचित 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में धर्मशास्त्र और स्मृतिग्रन्थों के प्रसिद्ध विवेचक डा.पी. वी. काणे ने शतपथ ब्राहमण और तैत्तिरीय संहिता आदि का काल ई. पू. ४०००-१००० वर्ष माना है। मनु की जीवनस्थिति इनसे पूर्व की होने के कारण मनु का काल भी इनसे प्राचीन सिद्ध होगा।

(ई) वेदों में मनु का उल्लेख

पाश्चात्य विद्वान् एवं पाश्चात्य विचारधारा के अनुगामी आधुनिक विद्वान् मनु पर विचार करते समय उसका उल्लेख एवं जीवन-परिचय वेदों में खोजते हैं। उनका कथन है कि ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर व्यक्तिवाचक मनु शब्द आया है। कहीं उसे पिता कहा है, कहीं प्रारम्भिक यज्ञकर्त्ता, तो कहीं अग्निस्थापक के रूप में उसका वर्णन है।[४]

इस चर्चा का उत्तर मनु के मन्तव्य के अनुसार दिया जाये तो अधिक प्रामाणिक होगा। मनु वेदों को ईश्वरप्रदत्त अर्थात् अपौरुषेय मानते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य के माध्यम से वेदों का ज्ञान दिया। अपौरुषेय होने के कारण वेदज्ञान पूर्णतः ज्ञेय

---

१. रामचन्द्रकालनिर्णय, पृ. ५५।

२.. पुराण निरीक्षण, पृ. ३१५।

३. गीता रहस्य में।

४. ऋग्०—१।८०।१६; १।४।२; २.३३.१३; ८.३०.१; ८।६३।१; १०।६३।७॥

नहीं है, वह अपरिमित है।[१] प्रारम्भ में वेदों से ही शब्द ग्रहण करके व्यक्तियों और वस्तुओं का नामकरण किया गया।[२] मनु द्वारा वेदों को अपौरुषेय घोषित करने के उपरान्त उसी मनु का वेद में इतिहास ढूंढना मनु के विपरीत विचार है, और मनु से पूर्व वेदों का रचनाकाल होने से कालविरुद्ध भी है।

वेदों में मनु शब्द विभिन्न अर्थों में आया है। कहीं वह ईश्वर का पर्यायवाची है,[३] कहीं मनुष्य के लिये है,[४] कहीं मननशील विद्वान् के लिये है।[५] विचारकों को जहां इसके व्यक्तिवाचक होने का आभास होता है, वह वस्तुतः ईश्वरवाचक प्रयोग है। अधिक विस्तार में न जाते हुए, इस विषय में मनुस्मृति का ही एक प्रमाण देकर इस बात को प्रमाणित किया जाता है। ईश्वर का वर्णन करते हुए मनु स्वयं कहते हैं कि उस परमेश्वर को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जिनमें एक नाम 'मनु' भी है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥ १२। १२३॥

इस प्रकार मनु के मन्तव्य के अनुसार वेदों में 'प्रजापति' 'पिता' आदि विशेषणों से संबोधित मनु ईश्वर ही है। इस आधार पर वेद में मनु का परिचय खोजना मनु के दृष्टिकोण के विरुद्ध है।

(उ) मनुस्मृति की प्राचीनता विषयक चीनी साहित्य का प्रमाण

गत पृष्ठों (विश्व में मनुस्मृति की प्रामाणिकता) में चीनी भाषा के ग्रन्थ में मनुस्मृति-काल सम्बन्धी उल्लेख का विवरण प्रस्तुत किया गया है। उस पुरातात्विक प्रमाण के अनुसार मनुस्मृति १०-१२ हजार वर्ष पुराना शास्त्र है। इससे एक तथ्य की पुष्टि तो होती ही है कि मनुस्मृति समाज-व्यवस्था का सबसे पुराना ग्रन्थ है। अन्य किसी देश या समाज

---

१. मनु० १। २३; १। ४
२. मनु० १। २२॥
३. ऋग्० १। ८०। १६; (स्वामी दयानन्द भाष्य)
४. ऋग्० ४। २६। ४; ५। २। १२; ६। २१। ११; ८। ४७। ४॥
५. ऋग १। ८०। १६; १। ३३९। ९; २। ३३। १३; (स्वामी दयानन्द भाष्य)॥ निरुक्त एवं ब्राह्मणों ने इन अर्थों की पुष्टि की है—'मनुः मननात्' निरु. १२। ३४, "ये विद्वांसस्ते मनवः' शत. ८। ६। ३। १८॥

का इतना पुराना ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। यह पुरातात्त्विक प्रमाण भी मनु और मनुस्मृति के काल को सबसे प्राचीन सिद्ध करता है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि मनु एवं मनुस्मृति के काल के सम्बन्ध में पाश्चात्य लेखकों ने जो १८५ ई० पूर्व के काल की कल्पना की है, वह निराधार और अप्रामाणिक है; क्योंकि मनु स्वायंभुव रचित मनुस्मृति के उल्लेख उससे कई हजार वर्ष पूर्व के साहित्य में मिल रहे हैं। उन उल्लेखों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

मनु के काल के सम्बन्ध में जो वर्तमान लेखकों को अर्वाचीनता की भ्रान्ति हो रही है, उसका कारण मनुस्मृति में हुए प्रक्षेप हैं। बदलते समय के अनुसार लोग इसमें मिलावट करते चले गये जिससे इसका प्राचीन और मौलिक स्वरूप धूमिल हो गया। प्रक्षेपों के विषय पर अन्तिम अध्याय में विचार किया जायेगा।

(२.३) मनु आदिपुरुष : भाषाविज्ञान तथा विदेशी प्रमाणों के संदर्भ में

(अ) मनु के आदिपुरुष होने में भाषाविज्ञान के तथा विदेशी प्रमाण

वर्तमान में 'भाषा विज्ञान' (Linguastics) के नाम से प्रसिद्ध शास्त्र यूरोपीय विद्वानों की देन है। इस विद्या में भाषाओं के मूल, विकास और पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। इस शास्त्र के अध्ययन से मनु के प्रमुख आदिपुरुष होने के अनेक आश्चर्यजनक पोषक प्रमाण प्राप्त हुए हैं। उनका भारतीय साहित्य के निष्कर्षों से अद्भुत तालमेल है।

(क) संस्कृत, हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में आदमी के वाचक जितने नाम हैं, जैसे- मानव, मनुष्य, मनुज, मानुष ये सब मनु मूल शब्द से बने हैं, जिनका अर्थ है—'मनु के वंशज या मनु की सन्तान।' जैसे सभी बनिया स्वयं को महाराजा अग्रसेन का वंशज मानकर 'अग्रवाल' कहते हैं, उसी प्रकार मनु के वंशज 'मनुष्य' हैं। भाषाविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अधिकांश एशिया और यूरोपीय देशों की भाषाएं आर्यभाषाएं हैं और अधिकांश जातियां आर्यों की वंशज हैं। यही कारण है कि उनकी भाषाओं में प्रयुक्त मनुष्य वाचक शब्द 'मनु' से बने हुए हैं। बीस भागों वाली '**दि ऑक्सफोर्ड इंग्लिश**

डिक्शनरी' में 'मैन' (Man) शब्द पर इनका विवरण दिया है—

अंग्रेजी में-MAN (मैन), जर्मनी में-MANN (मन्न), MANESH (मनेश), लैटिन व ग्रीक में-MYNOS (माइनोस), स्पेनिश में - MANNA (मन्ना)

यूरोप की अन्य भाषाओं में भी मनु मूल शब्द पर आधारित प्रयोग प्रचलित हैं, जैसे - मेनिस्, मनुस्, मनीस्, मनेस, मैन्स् आदि। (भाग १, पृ० २८४)

सिन्धी, फारसी और ईरानी में 'मनुस्' के स को ह होकर (जैसे सप्ताह का हप्ता) 'मनुह' बना, फिर वह 'नूह' रह गया। इसी प्रकार आदिम (ब्रह्मा) का आदम रूप प्रचलित हो गया। बाइबल और कुरान में आदम और नूह की कथा आती है। ये वैदिक साहित्य के देव आदिम = ब्रह्मा और मनु ही हैं। वर्तमान भाषा-विज्ञान ने इस मूल वंश परम्परा को प्रकाश में ला दिया है।

(ख) यही स्थिति भारतीय भाषाओं की है, चाहे वे दक्षिण की हों अथवा अन्य दिशाओं की। सभी में 'मनु' मूल शब्द से बने शब्द ही मनुष्य के वाचक हैं। निम्नलिखित तालिका से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है—

कन्नड़	-	मनुष्य,	असमिया	-	मानुह (ष को ह)
तमिल	-	मनिदन्,	उड़िया	-	मनिष, मणिष
तेलगु	-	मनिषि,	बंगला	-	मानुष
मलयालम	-	मनुष्यम्,	गुजराती	-	माणस
सिन्धी	-	मानहू ,	राजस्थानी	-	माणस
		(ष को ह)	हरयाणवी	-	माणस
पंजाबी	-	मनुख ,	मराठी	-	माणूस, मनुष्य
		(ष को ख)			

(ग) इसका समर्थन पाश्चात्य इतिहासकार मेनिंग स्वरचित इतिहास 'एन्सिएन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया' में इस प्रकार करता है—

"It has been remarked by various authors (as Kuhn and Zeitschrift IV 94 ff) that in analogy with Manu as the father of mankind or of the Aryas, German mythology recognises Manus as the ancestor of

Teutons. The english Man and the German Manu appear also to be akin to the word Manu as the German Menesh presents a close resemblance to Manush of Sanskrit." (Vol.I,P.118)

अर्थात्—'जैसा कि कुहन और जाइत्सक्रिफ्ट आदि विभिन्न लेखकों ने भी यह उल्लेख किया है कि मानवजाति और आर्यों के मूलपुरुष मनु हैं, इस मान्यता से जर्मन पुराकथाओं की भी मान्यता मेल खाती है कि जर्मन मनु ट्यूटोन्ज् का भी पूर्वज रहा है। अंग्रेजी का 'मैन' तथा जर्मन का मनु संस्कृत के 'मनु' के समान है, ऐसे ही जर्मन का 'मनेश' और संस्कृत के 'मनुष्य' में घनिष्ठ समानता विद्यमान है।' अर्थात् मनु इन सब का आदिपुरुष है, यह भाषाविज्ञान और परम्परा दोनों से सिद्ध होता है।

(घ) इसके साथ अपने पूर्वज मनु की एक और स्मृति विश्व की जातियां लेकर गई हैं। वह है वैवस्वत मनु के समय हुई 'जलप्रलय' की कथा। विश्व के प्रमुख धर्मग्रन्थों बाइबल और कुरान में यह नूह के नाम से वर्णित है जो 'मनुस्' (मनुह→नूह) का अपभ्रंश है। इनके अतिरिक्त संसार के आधे से अधिक देशों के साहित्य में यह कथा थोड़े परिवर्तन के साथ सुरक्षित है।

(ङ) कम्बोडिया, मिस्र, ईरान आदि देशों के साहित्य में अभी तक उनके आर्य और मनु की सन्तान होने के उल्लेख मिलते हैं। एक प्रमाण लीजिए। बाइबल और कुरान में वर्णित नूह के दो पुत्र थे—१. हेम(=सूर्य), २. सेम (=सोम=चन्द्र) इनमें हेम के वंशज मिस्र में रहते हैं जो स्वयं को सातवें वैवस्वत मनु की सूर्यवंशी सन्तान मानते हैं—

"The reader will not readily forget the city of the sun 'Helispolis' or 'Menes'. The first Egyptian king of the sun, the 'Menu Voivasowat' or patriarch of the solar race, nor his statue, that of the great 'Menoo', whose voice was said to statue the rising sun." (India is Greece, P. 174)

अर्थात्—'पाठक सूर्य के नगर (स्थान) 'हेलिस्पोलिस्' अथवा 'मेनस्' को सुगमता से नहीं भुला पायेगा और न ही मिस्र के प्रथम सूर्य राजा 'मनु वैवस्वत' को, जो कि सूर्यवंशियों का आदिपुरुष है,

और जिस महान् मनु की प्रतिमा उगते हुए सूर्य के रूप में उसके नाम को प्रतिबिम्बित कर रही है, उसको भी नहीं भुला पायेगा।'

भाषाविज्ञान द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि 'मनु स्वायंभुव' मानवों के आदिपुरुष हैं, अतः उन द्वारा रचित संविधान 'मनुस्मृति' भी विश्व का आदिकालीन प्रथम संविधान है।

(च) ''थाई देश में राम खएंग के अतिरिक्त भी कई ऐसे शासक हुए हैं जिनका नामोल्लेख शासकीय व्यवहार में 'राजा' 'महाराजा' शब्दों के साथ 'राम' उपाधि से किया जाता था, जैसे— महाराजा राम प्रथम, राम द्वितीय, राम तृतीय आदि। यह संख्या नौ तक चल गयी है। वास्तव में थाई शासकों के समान कुछ अन्य देशों के शासक भी अपने आपको रामायण के नायक राम के वंशज मानते रहेहैं।'' ('दैनिक ट्रिब्यून' चंडीगढ़ संस्करण दिनांक १४-१०-१९९०, 'रामकथा की सृजन भूमि रहा है थाई देश' : डॉ. वेदज्ञ आर्य)

श्री राम सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। वे वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के सूर्यवंश में हुए। वैवस्वत मनु सातवां मनु था जो प्रथम मनु स्वायंभुव का वंशज था। इस प्रकार मनु स्वायंभुव आदिपुरुष था।

(छ) ''कम्बुज (कंबोडिया) में संस्कृत में लिखे अनके लेख मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि वहां के लोगों का भी विश्वास था कि वे मनु की सन्तान है।'' (भारतीय संस्कृति के विस्तार की कहानी : भगवतशरण उपाध्याय, पृ० ४२)

इस प्रकार विश्व के अधिकांश प्राचीन देशों में उनका प्राचीन इतिहास वहां के निवासियों को मनु का वंशज वर्णित करता है।

(आ) मनुष्य वाचक नामों के विषय में भ्रामक स्थापना

अंग्रेजी शासन में कुछ शासनभक्त लेखकों को जब संस्कृत भाषा को विश्व की अधिकांश भाषाओं की जननी मानने और मनु व्यक्तिवाचक शब्द को मानव आदि नामों का मूल मानने में जब यह आभास हुआ कि इससे तो भारतवासी हमसे प्राचीन और सभ्य माने जायेंगे तो उन्होंने इन मान्यताओं में भ्रान्ति पैदा करके इन्हें बदल डाला। कहा गया कि संस्कृत जननी नहीं अन्य भाषाओं की बहन है, जननी तो कोई अन्य भाषा थी, जिसका नाम 'भारोपीय भाषा' कल्पित किया गया। इसी प्रकार कहा गया कि मानव आदि नामों का मूल मनु

चिन्तनार्थक शब्द है, व्यक्तिवाचक नहीं।

इस नयी भ्रामक स्थापना का समाधान संस्कृत की वैज्ञानिक पद्धति से हो जाता है। संस्कृत व्याकरण की सुनिश्चित प्रक्रिया है, जो नियमों में बंधी है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'मनु' शब्द से जो प्रत्यय जुड़कर 'मानव' आदि शब्द बने हैं वे व्यक्तिवाचक शब्द से पुत्र या वंशज अर्थ में जुड़े हैं, अतः उनका व्याकरणिक अर्थ 'मनु के पुत्र या वंशज' ही होगा, अन्य नहीं। जैसे-मनु से 'अण्' प्रत्यय होकर 'मानव' बना है, 'षुग्' आगम और 'यत्' प्रत्यय होकर 'मनुष्य' तथा 'अञ्' प्रत्यय और 'षुग्' आगम होकर 'मानुष', मनु के साथ 'जन्' धातु के योग से 'उ' प्रत्यय होकर 'मनुज बना है। यहां चिन्तन अर्थ प्रासंगिक नहीं बनता।

वंशज होने की पुष्टि प्राचीन भारतीय इतिहास, विदेशी इतिहास वैदिकसाहित्य के उल्लेख भी कर रहे हैं। वंशावली भी इसी तथ्य का समर्थन करती है। अतः कुछ लेखकों द्वारा स्थापित नयी मान्यता सर्वथा गलत है।

(ई) डॉ० अम्बेडकर के मतानुसार मनु शूद्रों के भी आदिपुरुष व आदरणीय पूर्वज

जैसा कि प्राचीन भारतीय परम्परा को उद्धृत कर यह सप्रमाण दिखाया गया है कि प्राचीन वैदिक इतिहास के अनुसार मनु स्वायम्भुव आदितम ऐतिहासिक राजर्षि हैं और वे सबके श्रद्धेय है। डॉ० अम्बेडकर ने प्राचीन मनुओं के विषय में इन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों को स्वीकार करते हुए उन्हें आदरणीय पुरुष माना है। वे लिखते हैं —

(क) "स्वयंभू के पुत्र मनु (स्वायंभुव) के एक पुत्र प्रियंवद थे। उनके पुत्र अग्नीध्र हुए। अग्नीध्र के पुत्र नाभि और नाभि के पुत्र ऋषभ हुए। ऋषभ के एक और वेदविद् पुत्र हुए जिनमें नारायण के परमभक्त भरत ज्येष्ठ थे। उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम 'भारत' पड़ा।.....उपरोक्त से पता चलता है कि सुदास किन प्रतापी राजाओं का वंशज था।" (अंबेडकर वाङ्मय, खंड १३, पृ० १०४)

(ख) आगे वे इस वंश का कुछ और विवरण प्रस्तुत करते हैं। स्वायम्भुव मनु की सुदीर्घ वंश परम्परा में आगे चलकर सातवां मनु वैवस्वत हुआ। उसके पुत्र इक्ष्वाकु से क्षत्रियों का सूर्यवंश चला और

पुत्री इला से चंद्रवंश चला। उसकी वंश परम्परा को दर्शाते हुए वे लिखते हैं—

"पुरूरवा वैवस्वत मनु का पौत्र और इला का पुत्र था। नहुष पुरूरवा का पौत्र था। निमि इक्ष्वाकु का पुत्र था जो स्वयं मनु वैवस्वत का पुत्र था। इक्ष्वाकु की 28वीं पीढ़ी में त्रिशंकु हुआ। इक्ष्वाकु की 50वीं पीढ़ी में सुदास था। वेन, मनु वैवस्वत का पुत्र था। ये सभी मनु के वंशज होने के कारण सभी सुदास से सम्बन्धित होने चाहिएं। ये सुदास के शूद्र होने के प्रमाण हैं।" (वही, खंड १३, पृ० १५२)

यहां डॉ० अम्बेडकर के निष्कर्षों में कुछ संशोधन की आवश्यकता है। एक तो यह कि सुदास के शूद्र घोषित किये जाने का यह मतलब नहीं है कि उसका पूर्वापर सारा वंश शूद्र था। इस तरह तो मनु स्वायंभुव भी शूद्र कहा जायेगा। दूसरा, यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी वंशक्रम नहीं है, केवल प्रसिद्ध पुरुषों की तालिका है। अन्य नवीन इतिहासकारों के अनुसार सुदास वैवस्वत मनु की ६३ वीं प्रमुख पीढ़ी में थे। इसी वंश में राम ७६ वीं प्रमुख पीढ़ी में हुए।

ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुङ्ग, वैवस्वत मनु के वंश के प्रमुख पुरुषों की १७० पीढ़ी पश्चात् हुआ है जिसकी चर्चा डॉ० अम्बेडकर बार-बार ब्राह्मणवाद के संस्थापक राजा के रूप में करते हैं। स्वायम्भुव मनु से तो यह बहुत-बहुत दूर की पीढ़ी में आता है। यह 'शुङ्ग' वंश में उत्पन्न सामवेदी ब्राह्मण था और मौर्य सम्राट् बृहद्रथ का मुख्य सेनापति था। इसने उसका वध करके राज्य पर बलात् कब्जा किया था।

(ग) डॉ० अम्बेडकर के मतानुसार वर्तमान शूद्र मूलतः क्षत्रिय जातियों से सम्बन्धित थे और वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के सूर्यवंश से थे। इस प्रकार वैवस्वत मनु शूद्रों के आदिपुरुष सिद्ध होते हैं और स्वायंभुव मनु, जो मूल मनुस्मृति के रचयिता हैं, वे उनके भी आदितम पुरुष सिद्ध होते हैं। डा. अम्बेडकर लिखते हैं—

"शूद्र सूर्यवंशी आर्यजातियों के एक कुल या वंश थे। भारतीय आर्य समुदाय में शूद्र का स्तर क्षत्रिय वर्ण का था।" (वही, खंड १३, पृ० १६५)

(घ) "प्राचीन भारतीय इतिहास में मनु आदरसूचक संज्ञा थी।" (वही, खंड ७, पृ० १५१)

(ङ) "याज्ञवल्क्य नामक विद्वान् जो मनु जितना ही महान् है, कहता है।" (वही, खंड ७, पृ० १७९)

प्रश्न उपस्थित होता है कि जब प्राचीन राजर्षि स्वायम्भुव मनु शूद्रों के भी आदरणीय आदिपुरुष थे तो उनके द्वारा अपने आदिपुरुष का विरोध करना क्या कृतघ्नतापूर्ण असभ्याचरण नहीं है? नवीन लोगों द्वारा विहित व्यवस्थाओं को प्राचीन मनुओं पर थोपकर उनकी निन्दा और अपमान करना, क्या ऐतिहासिक अज्ञानता नहीं है? कितने दुःख का विषय है कि जिस अतीत पर हम भारतीयों को गर्व करना चाहिए, अपनी अज्ञानता और भ्रान्ति के कारण हम उसकी निन्दा कर रहे हैं! यह बौद्धिक पतन की चरम स्थिति है।

(२.४) राजर्षि मनु आदिराजा

प्राचीन भारतीय इतिहास और साहित्य में जो आदितम वंशावलियां उपलब्ध हैं, उनके अनुसार, सृष्टि का आदिपुरुष ब्रह्मा है, जिसका एक नाम 'स्वयम्भू' भी है। उसका एक पुत्र (कहीं-कहीं पौत्र) मनु था। 'स्वयम्भू' वंश का पुत्र होने के कारण ही इस आदि मनु का नाम 'स्वायम्भुव मनु' कहलाता है। प्रजाओं की प्रार्थना पर और पिता ब्रह्मा के आदेश से यह प्रथम मनु सृष्टि का प्रथम राजा बना। मनु ने क्षत्रियवर्ण को ग्रहण कर राजा बनना स्वीकार किया। इस प्रकार मनु क्षत्रिय था। राजा होते हुए भी वह शास्त्रों के स्वाध्याय में संलग्न रहता था तथा उसका ऋषिवत् आध्यात्मिक एवं निर्लिप्त जीवन था, अतः वह 'राजर्षि' था। धर्म आदि विद्याओं का विशेषज्ञ होने के कारण यह 'महर्षि' था। संस्कृत-साहित्य में मनु के 'आदि राजा' होने का विवरण अनेकत्र मिलता है। कुछ विवरण यहां प्रस्तुत हैं।

(क) पिता ब्रह्मा के आदेश से स्वायम्भुव मनु सृष्टि का पहला राजा नियुक्त हुआ। उससे पहले न कोई राजा था, न राज्य था। सत्वगुणी लोग आत्मानुशासन से ही परस्पर सद्व्यवहार करते थे। धीरे-धीरे मनुष्यों में रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि होने लगी, बलवान् निर्बलों को सताने लगे। तब लोगों ने ब्रह्मा के पास जाकर किसी ऐसे को राजा बनाने की प्रार्थना की जो सबको व्यवस्था में चला सके। तब ब्रह्मा ने मनु को राजा बनने का आदेश दिया। मनु ने सबके कर्त्तव्यों-अकर्त्तव्यों का निर्धारण किया और सारे समाज को

व्यवस्थित किया। मनु ने निर्धारित विधानों के अनुसार अपने शासन को व्यवस्थित किया और चलाया। इस कारण उसे 'आदिराजा' कहा जाता है। महाभारत में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार आता है—

सहितास्तदा जग्मुः- असुखार्ताः पितामहम्।
अनीश्वरा विनश्यामो भगवन्नीश्वरं दिश॥
यं पूजयेम सम्भूय यश्च नः प्रतिपालयेत्।
ततो मनुं व्यादिदेश मनुर्नाभिननन्द ताः॥
बिभेमि कर्मणः पापात् राज्यं हि भृशदुस्तरम्।
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा॥
तमब्रुवन् प्रजा मा भैः कर्तृनेनो गमिष्यति।
ततो महीं परिययौ पर्जन्य इव वृष्टिमान्।
शमयन् सर्वतः पापान् स्वकर्मसु च योजयन्॥

(महाभारत, शान्तिपर्व अ० ६७, २०-२३, ३२)

अर्थ—अराजकता से पीड़ित प्रजाएं एक साथ मिलकर पितामह ब्रह्मा के पास गयीं और बोलीं—हे भगवन्! बिना राजा के हम प्रजाएं विनष्ट हो जायेंगी इसलिए किसी उपयुक्त व्यक्ति को राजा नियुक्त कीजिये, जिसका हम सर्वोच्च सम्मान करें और वह हमारा पालन-पोषण तथा रक्षा किया करे। ब्रह्मा ने मनु (स्वायंभुव) को राजा बन जाने का आदेश दिया किन्तु मनु को प्रजाओं का प्रस्ताव रुचिकर नहीं लगा। उसने कहा- राज्य करना एक कठिन कार्य है, विशेष रूप से मिथ्याचारी और अपराधी प्रवृत्ति के लोगों पर शासन करना। मैं इस बात से डरता हूं कि मुझसे कोई पाप या अन्याय न हो जाये। तब प्रजाओं ने कहा—आप बिल्कुल मत डरिये, पाप तो पापकारियों को ही लगेगा। तब मनु राजा बनने के लिए तैयार हो गये। वे अपने शासन में सबको अपने-अपने कर्त्तव्य में नियुक्त रखते हुए और पापों को शान्त करते हुए सर्वत्र इस प्रकार विचरण करते थे जैसे बरसने वाले मेघ आकाश में घूम-घूम कर तपन को शान्त करते हैं।

(ख) महर्षि वाल्मीकि-रचित रामायण में भी मनु को 'आदिराजा' बताया गया है—

"आदिराजो मनुरिव प्रजानां परिरक्षिता"

(बालकाण्ड ६.४, पश्चिमोत्तर संस्करण)

अर्थात्—'दशरथ, आदिराजा स्वायम्भुव मनु के समान स्नेह से प्रजाओं की रक्षा करते थे।'

(ग) विष्णुपुराण में स्वायम्भुव मनु को ब्रह्मा का पुत्र कहा है और ब्रह्मा द्वारा उसको राजा नियुक्त करने का उल्लेख किया है। वही सबसे पहला राजा था—

ततो ब्रह्मा आत्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं द्विजः॥ (१.७.१६)

"स्वायम्भुवो मनुः पूर्वम्" (३.१.६)

अर्थात्—तब ब्राह्मणवर्णधारी ब्रह्मा ने अपने सगे पुत्र स्वायम्भुव मनु को प्रजापालनार्थ पहले राजा के रूप में नियुक्त किया। पुत्र को राजा बनाने पर यह अनुभव हो रहा था जैसे प्रभु ब्रह्मा ने स्वयं को ही राजा बनाया हो अर्थात् मनु गुणों में ब्रह्मा के सदृश था। यह स्वायम्भुव मनु आदिराजा था।

(घ) भागवत महापुराण के वर्णन से यह ऐतिहासिक तथ्य और अधिक सिद्ध और स्पष्ट हो जाता है। इस संदर्भ में मनु का पर्याप्त परिचय वर्णित किया गया है। जैसे-मनु ब्रह्मा का पुत्र था, आदिराजा था, उसका चक्रवर्ती राज्य था। उसकी राजधानी 'ब्रह्मावर्त' प्रदेश में थी। यह भी स्पष्ट किया है कि उसी स्वायम्भुव मनु ने ऋषियों को वर्णाश्रमों के धर्मों का उपदेश किया था—

प्रजापतिसुतः सम्राट् मनुः विख्यातमंगलः।
ब्रह्मावर्तं योऽधिवसन् शास्ति सप्तार्णवां महीम्॥
यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान् नानाविधान् शुभान्।
नृणां वर्णाश्रमाणां व सर्वभूतहितः सदा।
एतद् आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम्॥

(३.२२.२५, ३८, ३९)

अर्थ—प्रजापति ब्रह्मा का पुत्र सुविख्यात, यशस्वी मनु सम्राट् (= चक्रवर्ती राजा) था, जो ब्रह्मावर्त प्रदेश को राजधानी बनाकर सातद्वीपों वाली पृथ्वी का शासन करता था। उसी स्वायम्भुव मनु ने मुनिजनों द्वारा पूछने पर मनुष्यों के वर्णों और आश्रमों के धर्मों का उपदेश किया था। वह सभी प्राणियों का हितैषी था। यह आदिराजा मनु का अद्भुत चरित्र है।

यही विवरण अन्य पुराणों में भी उपलब्ध है। द्रष्टव्य हैं-ब्रह्माण्ड पुराण २.१३.१०५, मत्स्यपुराण ३.४४.५, ४.३४४.१४५.९०, वायुपुराण ३.२.३५, ३.२३.४७ आदि।

(२.५) विश्व का आदि संविधान 'मनुस्मृति' और आदिविधि प्रणेता राजर्षि मनु

जब हम यह कहते हैं कि 'मनुस्मृति' विश्व का सर्वप्रथम संविधान है और मनु स्वायंभुव आदिराजा, आदि धर्मप्रवक्ता, आदिविधिप्रणेता है तो कुछ लोगों को यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। किन्तु है यह सत्य। प्राचीन बृहत्तर भारतवर्ष में, साथ ही दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में समाजव्यवस्था एवं दण्डव्यवस्था के निर्धारण में प्राचीन समय में मनुस्मृति के विधानों का वर्चस्व रहा है; इसका ज्ञान हमें प्राचीन भारतीय साहित्य, भाषाविज्ञान तथा अंग्रेजी शासनकालीन इतिहासों के उल्लेखों से होता है। सन् १९३२ में, मनु और मनुस्मृति को प्राचीनतम शास्त्र बताने वाला एक चीनी भाषा का दस्तावेज भी प्राप्त हो चुका है जिसके अनुसार मनुस्मृति का अस्तित्व कम से कम १२-१३ हजार वर्ष पूर्व था (देखिए अध्याय १.५ में प्रमाण संख्या 'क' का विवरण)। वैदिक साहित्य में मनुस्मृति के रचयिता मनु स्वायम्भुव को केवल भारतीयों का ही नहीं अपितु मानवों का प्रमुख आदिपुरुष माना गया है। इसी कारण मनु स्वायंभुव को आदिविधि प्रणेता (First Law-giver) और उसके द्वारा रचित 'मनुस्मृति' या 'मानव धर्मशास्त्र' को आदि संविधान (First Constitution) माना जाता है, क्योंकि स्वायंभुव मनु आदि सृष्टि की कालावधि का राजर्षि था।

(अ) प्राचीन भारतीय साहित्य के आधार पर

यदि हम कालनिर्धारण के आंकड़ों के गणित में न पड़कर केवल निष्कर्ष ही प्रस्तुत करें तो उसके अनुसार सभी भारतीय और पाश्चात्य वैदिक विद्वान् इस मान्यता पर एकमत हैं कि 'ऋग्वेद संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ है।' वेदों के बाद मिलने वाले समस्त भारतीय साहित्य में मनु की और उनके उपदेशों की चर्चा है। अतः स्पष्ट है कि वेदों के बाद समस्त भारतीय साहित्य से मनु और मनुस्मृति प्राचीन हैं। मनु ने मनुस्मृति में अपने द्वारा विहित धर्म-विधानों का स्रोत वेदों को ही

घोषित किया है और वर्णव्यवस्था भी वेद से ग्रहण की है। इसका सीधा-सा अभिप्राय यह निकलता है कि मौलिक मनुस्मृति के आधारभूत शास्त्र केवल वेद ही हैं उनके बीच में अन्य कोई साहित्य नहीं है। इस आधार पर वेदों के बाद मनुस्मृति का कालक्रम आता है।

(क) भारतीय इतिहास-परम्परा के अनुसार श्री राम का काल लाखों वर्ष पुराना है। अमेरिका के नासा द्वारा प्रक्षेपित उपग्रह ने लंका के समुद्रतल स्थित पुल के आधार पर इसकी पुष्टि कर दी है। महर्षि वाल्मीकि भी राम के समकालीन थे। उसी समय उन्होंने 'रामायण' की रचना की। आदिकाव्य व सर्वाधिक प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ 'वाल्मीकि-रामायण' में मनु वैवस्वत की वंश-परम्परा का उल्लेख आता है जो प्रथम स्वायम्भुव मनु की वंश-परम्परा में सातवां मनु है। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति के कई श्लोक उसमें उद्धृत मिलते हैं। बालि-वध के प्रसंग में राम अपने वध-कर्म को उचित ठहराते हुए मनु के दो श्लोकों को मान्य कानून के रूप में उद्धृत करते हैं, वे श्लोक मनुस्मृति के अध्याय ८.३१६, ३१८ में उपलब्ध हैं। रामायण में वे श्लोक इस क्रम से उद्धृत हैं—

राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥
शासनाद् वापि मोक्षाद् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्विषम्॥

(किष्किन्धा काण्ड १८.३०, ३२)

अर्थ—मनुष्य पाप या अपराध करने के बाद राजाओं के द्वारा दण्ड दिये जाने पर अच्छे आचरण वाले लोगों के समान माने जाते हैं। फिर वे दोषरहित सुखी जीवन जीते हैं। राजा द्वारा दण्ड देने के बाद अथवा निर्दोष समझकर छोड़ देने के बाद चोर चोरी के अपराध से मुक्त हो जाता है। यदि राजा अपराधी को दण्ड नहीं देता तो उसका दोष राजा का माना जाता है।

(ख) उसके पश्चात् संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों का रचना काल आता है (भारतीय परम्परानुसार १०-१२ हजार वर्ष पूर्व और पाश्चात्य मतानुसार ३-४ हजार वर्ष पूर्व)। उन ग्रन्थों में मनु के विधानों को सम्मान के साथ स्मरण करते हुए प्रशंसित किया है—

"मनुर्वै यत्किञ्च-अवदत् तद् भेषजं भेषजतायै।"

(तैत्तिरीय संहिता २.२.१०.२; ताण्डय ब्राह्मण २३.१६.७)

अर्थात्—मनु ने अपनी स्मृति में (व्यक्ति, परिवार और समाज के लिए) जो कुछ कहा है, वह औषधों का भी औषध है अर्थात् औषध के समान कल्याणकारी है।

(ग) महाभारत से कुछ प्राचीन ग्रन्थ (भारतीय परम्परानुसार ५१५० वर्ष पूर्व, आधुनिक मतानुसार ३५०० वर्ष पूर्व) 'निरुक्त' में एक प्राचीन महत्त्वपूर्ण श्लोक उद्धृत मिलता है, जिसमें दो ऐतिहासिक तथ्यों का एक साथ उल्लेख है। एक—मनु मानवसृष्टि के आदिकालीन राजर्षि हैं, दो-उन्होंने दायभाग में पुत्र-पुत्री का समान अधिकार विहित किया है। स्पष्ट है कि उस समय भी मनु के विधान सर्वप्राचीन और उल्लेखनीय माने जाते थे। वह श्लोक है—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ (३.४)

अर्थात्—'पुत्र और पुत्री में बिना किसी भेदभाव के पैतृक सम्पत्ति का बंटवारा होता है' यह विधान स्वायम्भुव मनु ने मानवसृष्टि के आदि में किया था।'

(घ) वर्तमान मनुस्मृति में उपलब्ध अनेक श्लोकों और श्लोकांशों को महाभारत में स्वायम्भुव मनु के विधान के नाम से उद्धृत किया है। उनसे ज्ञात होता है कि महाभारत से पूर्व मनुस्मृति मान्य थी और उसका रचयिता मनु स्वायम्भुव ही है। यथा —

"प्राङ्नाभिवर्धनात् पुंसः जातकर्मः विधीयते॥"
"तदास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते॥"
"तावच्छूद्रसमो ह्येषः यावद् वेदे न जायते॥"
तस्मिन्नेवं मतिद्वैधे मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥

(वनपर्व १८०.३०-३५)

इनमें से पहली पंक्ति मनुस्मृति २.२९ में, दूसरी २.१७०, में तीसरी २.१७२ श्लोक में उपलब्ध है।

महाभारत में अनेक प्रसंगों में वर्तमान मनुस्मृति में उपलब्ध दो सौ के लगभग श्लोक उद्धृत मिलते हैं (यथा-आदिपर्व ७३.८-९, शान्तिपर्व ३६.५-६, ३३५.४४-४६; आदि)। अनेक स्थलों पर उन श्लोकों को मनुप्रोक्त कहकर उद्धृत किया गया है।

(ङ) उनसे अर्वाचीन ग्रन्थ स्मृतियां और पुराण हैं, जिनका रचनाकाल भारतीय परम्परानुसार महाभारतोत्तर और बौद्ध पूर्व है जबकि पाश्चात्य मतानुसार कुछ शताब्दी ईसा पूर्व है। प्रायः सभी में मनु का इतिवृत्त है और मनुविधानों का उल्लेख सम्मान के साथ मिलता है। कुछ प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

वेदार्थोनिबद्धत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।
मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते॥
तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च।
धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्यावन्न दृश्यते॥

(बृहस्पति स्मृति, संस्कारखण्ड १३-१४)

अर्थ—वेदों के अर्थों के आधार पर रचित होने के कारण मनु की स्मृति ही सब शास्त्रों में प्रधान है। मनु के विधानों के विपरीत जो स्मृति है वह आदरणीय नहीं है। तर्कशास्त्र, व्याकरण शास्त्र आदि शास्त्रों की शोभा तभी तक है जब तक मनु का शास्त्र (मनुस्मृति) वहां नहीं होती। धर्म-अर्थ-मोक्ष-उपदेष्टा मनु के शास्त्र के समक्ष सभी शास्त्र फीके पड़ जाते हैं, अर्थात् गौण हैं।

(आ) आधुनिक कानूनविदों व लेखकों के अनुसार मनु आदि-विधिप्रणेता

(क) आधुनिक भारतीय लेखकों और कानूनविदों ने भी मनु के प्राचीनतम होने और मनुस्मृति के कानून का अदिस्रोत होने का समर्थन किया है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इंडिया' में मनु को प्राचीनतम कानूनदाता स्वीकार करते हैं—

"MANU, the earliest exponent of the Law" (P.118) = 'प्राचीनतम और कानून के आदिदाता मनु।'

"The old law giver Manu, himself says" (P.118) = 'प्राचीन विधिदाता मनु कहते हैं।'

(ख) 'मुल्लाज हिन्दू लॉ' में टी. देसाई कानून के प्रसंग में मनु को मूल विधिदाता और आदिपुरुष के रूप में प्रस्तुत करते हैं—

"the original lawgiver" (P.19) = 'आदि विधिदाता मनु'

"Manu, the first patriarch" (P.19)= 'मनु, प्रथम आदिपुरुष'

(ग) श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर अपनी पुस्तक 'Towards universalman' में मनु को भारत का 'ला गिवर' घोषित करते हैं—

"Our law giver Manu talls us" (P.95)

—हमारे लॉ गिवर (विधिप्रदाता) मनु ने हमें बताया है।

(घ) एन. आर. राघवचारी अपनी पुस्तक 'हिन्दू लॉ' में मनु को कानून में सर्वोच्च प्रमाण मानते हैं —

"Manu is paramount authority on secular law"(P.3)

—मनु धार्मिक कानूनदाता के रूप में सर्वोच्च प्रमाण हैं।

(ङ) प्रसिद्ध आध्यात्मिक चिन्तक श्री अरविंद 'इंडियन लिटरेचर' में लिखते हैं —

"The greatest and the most authoritative is the famous Laws of Manu." (P.282-283)

अर्थात्—मनु का संविधान सबसे महान्, सबसे प्रामाणिक और सबसे प्रसिद्ध है।

(च) भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् 'इंडियन फिलासफी' में लिखते हैं—

"the code of Manu, to which a high position is assigned among the smritis." (P.515)

अर्थात्- स्मृतियों में मनु के संविधान की सर्वोच्च स्थिति है और सर्वोच्च प्रामाणिकता है।

(इ) डॉ० अम्बेडकर का मत :

मनु विधिप्रणेता—यद्यपि डॉ० अम्बेडकर ने उपलब्ध मनुस्मृति को १८५ ई० पू० की रचना माना है और उसका रचयिता सुमति भार्गव नामक 'मनु' को माना है तथापि वे पूर्व मनु और उनके संविधानों के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं। मनुस्मृति-काल और रचयिता के सम्बन्ध में डॉ० अम्बेडकर को कुछ भ्रान्तियां हैं जिनका निराकरण आगे किया जायेगा। यहां केवल यही कहना अभीष्ट है कि वे स्वायंभुव मनु को प्राचीनतम और 'विधि-निर्माता' मानते हैं। किसी के विधान अच्छे या बुरे हों, यह प्रश्न नहीं है; हैं तो वे विधिनिर्माता के पद के अधिकारी। डॉ० अम्बेडकर लिखते हैं—

(क) "इससे प्रकट होता है कि केवल मनु ने **विधान** बनाया।

जो स्वायम्भुव मनु था।'' (अंबेडकर वाड्मय, खंड ८, पृ० २८३)

इस मनु का वंश विवरण देते हुए डॉ० अंबेडकर ने सुदास राजा को इक्ष्वाकु की ५०वीं पीढ़ी में माना है। इक्ष्वाकु सातवें मनु वैवस्वत का पुत्र था और वैवस्वत मनु स्वायंभुव मनु की सुदीर्घ वंशपरम्परा में सातवां मनु था। (वही खंड १३, पृ० १०४, १५२)

(ख) ''मनु सर्वप्रथम वह व्यक्ति था जिसने उन कर्त्तव्यों को **व्यवस्थित** और **संहिताबद्ध** किया, जिन पर आचरण करने के लिए हिन्दू बाध्य थे।'' (वही, खंड ७, पृ० २२६)

(ग) ''मनुस्मृति **कानून का ग्रन्थ** है।.....चूकिं इसमें कर्त्तव्य न करने पर दंड की व्यवस्था दी गयी है, इसलिए यह कानून है।'' (वही, खंड ७, पृ० २२६)

(घ) ''पुराणों में वर्णित प्राचीन परम्परा के अनुसार, जितनी अवधि के लिए किसी भी व्यक्ति का वर्ण मनु और सप्तर्षि द्वारा निश्चित किया जाता था, वह चार वर्ष की ही होती थी और उसे युग कहते थे।'' (वही, खंड ७, पृ० १७०)

यह प्राचीन विधिनिर्माता मनु की विधिव्यवस्था का वर्णन है जिस पर डॉ० अम्बेडकर को कोई आपत्ति नहीं है। वे यहां इस व्यवस्था की प्रशंसा कर रहे हैं।

(ङ) ''ये नियम मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, विष्णु, कात्यायन आदि की स्मृतियों आदि से संकलित किए गए हैं। ये कुछ ऐसे प्रमुख **विधि-निर्माता** हैं जिन्हें हिन्दू विधि के निर्माण के क्षेत्र में प्रमाण-स्वरूप मानते हैं।'' (वही, खंड ९, पृ० १०४)

(च) ''इसे हिन्दुओं के **विधि निर्माता** मनु ने मान्यता प्रदान की है।'' (वही, खंड ९, पृ० २६)

(छ) आज डॉ० अम्बेडकर का सम्मान विधिनिर्माता के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। इससे कहीं अधिक सम्मान प्राचीन काल में मनु का था। इसी कारण जब लोकसभा में भारतीय संविधान प्रस्तुत किया गया था तो राजनेताओं और जनता ने डॉ० अम्बेडकर को 'आधुनिक मनु' कहकर प्रशंसित किया था। तब डॉ० अम्बेडकर को इस उपाधि पर गौरव की अनुभूति हुई थी उन्होंने इस तुलना पर कभी कोई आपत्ति प्रस्तुत नहीं की।

वस्तुस्थिति यह है कि डॉ० अम्बेडकर जब तक विशुद्ध साहित्य समीक्षक रहे तब तक उनको मनु और मनुस्मृति की मौलिक व्यवस्था पर कोई विशेष आपत्ति नहीं हुई। तब उनके प्रायः वही निष्कर्ष थे जो प्राचीन इतिहास के थे। जब वे राजनीतिक क्षेत्र में उतरे और बौद्ध धर्म के व्यामोह से ग्रस्त हो गये, तब वे सुनियोजित रूप से मनु और मनुस्मृति की निन्दा के जाल को फैलाते चले गये। उक्त प्रसंगों में डॉ. अम्बेडकर ने मनु को विधिनिर्माता के रूप में जो महत्त्व और सम्मान दिया है, उनके अनुयायियों को उसे स्मरण रखना चाहिए।

(ई) विदेशी लेखकों के मतानुसार मनु आदि-विधिप्रणेता

महर्षि मनु की ख्याति प्राचीन काल में विश्वभर में थी और आज भी है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उनको जो महत्त्व प्राप्त है वह भारतीयों के लिए गौरव का विषय है। कुछ प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

(क) अमेरिका से प्रकाशित **'इंसाइक्लोपीडिया आफ दि सोशल सांइसिज'** में मनु को आदिसंविधानदाता और मनुस्मृति को सबसे प्रसिद्ध विधिशास्त्र बताया है—

"Throughout the farther east Manu is the name of the founder of law. Maun law book are knoun.....in later times the name 'MANU' became a title which was given to juristic writers of exceptional eminence." (P.260)

अर्थात्—पूर्वी देशों में सुदूर तक मनु का नाम विधि-प्रतिष्ठाता के रूप में जाना जाता है। मनु का संविधान (मनुस्मृति) भी प्रसिद्ध है। परवर्ती समय में मनु का नाम इतना महत्त्वपूर्ण बन गया कि उन देशों में संविधान निर्माताओं को 'मनु' नाम की उपाधि प्राप्त होने लगी। उनको 'मनु' कहकर पुकारा जाता था।

(ख) संस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध समीक्षक और विद्वान् ए.ए. मैकडानल अपने 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर' में मनुस्मृति को सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण संविधान मानते हैं—

"The most important and earliest of the matricol smrities is the Manava Dharm Shastra, or cod of Manu." (P.432)

अर्थात्-स्मृतियों में सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण मानव धर्मशास्त्र है जिसको 'मनु का संविधान' कहा जाता है।

(ग) यूरोपियन लेखक पी. थामस ने अपनी 'Hindu religion Customs and manners' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में मनु को भारोतीयों का प्रथम संविधानदाता और मनुस्मृति को सबसे प्राचीन तथा सबसे महत्त्वपूर्ण संविधान माना है—

"Manu seems to have been the first law-giver of Indo Aryans, and all later law-givers accept his authority as Unquestionable." (P. 102)

अर्थात्—मनु भारतीयों और यूरोपीय आर्यों के प्रथम विधिदाता हैं। सभी परवर्ती विधिदाता उनके संविधान मनुस्मृति को संदेहरहित मानते हैं।

(घ) जर्मन के प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रीडरिच नीत्से "The will to power" में मनुस्मृति को एक उत्तम पठनीय संविधान की संज्ञा देते हैं। मनु उस संविधान के दाता हैं—

"Close the Bible and open the code of Manu."

(Vol.1, Book II., P. 126)

—बाइबल को पढ़ना बंद करो और मनु के संविधान (मनुस्मृति) को पढ़ो।

(ङ) यूरोपियन लेखक लुईस रेनो अपनी पुस्तक 'Religions of ancient India' में मनुस्मृति को एक कानून का शिक्षाप्रद शास्त्र मानते हैं—

"The laws of Manu provide a good illustration of the interlacing of themes in Indian literature, here we have a legislative text, or at any rate a book of legal maxims." (P.49)

अर्थात्—मनु के कानूनी विधान बहुत अच्छी शिक्षा देने वाले हैं। वे शिक्षाएं भारतीय साहित्य से जुड़ी हुई होती हैं। मनु की पुस्तक एक संवैधानिक पुस्तक है और वह हमें कानूनी विधि-विधानों की जानकारी देती है।

(च) न्यू जर्सी (अमेरिका) से प्रकाशित 'दि मैकमिलन फेमिली इंसाइक्लोपीडिया' में हिन्दू कानून में मनुस्मृति को महत्त्वपूर्ण संविधान माना गया है—

"Manu, his name is attached to the most important codification of Hindu law, the Manava-dharm shastra (Law of Manu)" (Vol. 13, P. 131)

अर्थात्—मानव धर्मशास्त्र अर्थात् मनु का संविधान हिन्दू विधि-विधानों की एक बहुत महत्वपूर्ण संहिता है। उसके रचयिता मनु है।

(छ) संस्कृत साहित्य के समीक्षक एवं इतिहासकार ए.बी.कीथ अपने 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर' में मनु को विधिदाता और न्यायमूर्ति स्वीकार करते हैं—

"Manu, he was the renewer of secrificial ordinances and the dispenser of maxims of justice." (P.440)

अर्थात्—मनु धार्मिक विधियों तथा न्याय की विधियों का सर्वप्रथम प्रदाता था।

(ज) 'प्रिंसिपल आफ पोलिटिकल साइंस' में आर.एन गिलब्रिस्ट मनुस्मृति को सबसे प्रभावी हिन्दू कानून मानते हैं —

"The most influential basis of Hindu law is the code of Manu" (P. 163)

अर्थात्—मनु का संविधान (मनुस्मृति) हिन्दू कानून के रूप में सबसे प्रभावशाली संविधान है।

विदेशी साहित्य में मनु का सबसे महत्त्वपूर्ण आदिविधिदाता के रूप में मूल्यांकन पूर्णतः सही है। मनु इस गौरवपूर्ण पद के वस्तुतः अधिकारी हैं। हम भारतीय अपने पूर्वज मनु की निन्दा करके जहां अपनी अज्ञानता का ढिंढोरा पीट रहे हैं वहीं अपने इतिहास, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता और पूर्वजों का अपने हाथों अपमान कर रहे हैं।

(२.६) मनु आदि-धर्मविशेषज्ञ और धर्मशास्त्र-प्रवक्ता

वेदोक्त वैदिक धर्म जिन मानदण्डों, मर्यादाओं और मूल्यों पर आधारित है उनका सर्वप्रथम निर्धारण और विधान मनु ने अपनी 'स्मृति' में सर्वश्रेष्ठ विधि से किया है, इस कारण वे वैदिक धर्म के आदि-प्रवक्ता, आदि-व्यवस्थापक और आदि-शास्त्रप्रवक्ता हैं। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय साहित्य मनु-विहित धर्मों का आदर करता रहा है और उन्हें परीक्षा सिद्ध मानता रहा है। महाभारत में कहा गया है—

(क) **भारतं मानवो धर्मः, वेदाः सांगाश्चिकित्सितम्।**
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः॥

(आश्वेमेधिक पर्व अ० ९२ में श्लोक ५३ के बाद)

अर्थ—महाभारत, मनु का धर्मशास्त्र, सांगोपांग वेद और आयुर्वेद इनके आदेश सिद्ध हैं। कुतर्क का आश्रय लेकर नहीं काटना चाहिए।

(ख) **''तस्मात् प्रवक्ष्यते धर्मान् मनुः स्वायम्भुवः स्वयम्॥''४४॥**
''स्वायम्भुवेषु धर्मेषु शास्त्रे चौशनसे कृते॥''४६॥

(महा० शान्ति० ३३५.४४, ४६)

अर्थ—स्वायम्भुव मनु ने मानवसृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा के धर्मशास्त्र के अनुसार धर्मों का उपदेश दिया है॥ ४४॥ स्वायम्भुव मनु के धर्मशास्त्र और औशनस = शुक्राचार्य के शास्त्र बन जाने पर धर्म-विधानों का प्रचार हुआ है।

(ग) **ऋषयस्तु व्रतपराः समागम्य पुरा विभुम्।**
धर्मं पप्रच्छुरासीनमादिकाले प्रजापतिम्॥

(महा० शान्ति० ३६.३)

अर्थ—'मानव-सृष्टि के आदिकाल में व्रतपालक तपस्वी ऋषि एकत्र होकर प्रजापालक राजर्षि मनु (स्वायम्भुव) के पास आये और उन राजर्षि से धर्मों के विषय में जानकारी प्राप्त की।' मनुस्मृति से भी यही ज्ञात होता है कि मनु धर्मविशेषज्ञ थे। महाभारत का यह श्लोक मनुस्मृति के १.१-४ की घटना का ही वर्णन कर रहा है—

मनुमेकाग्रमासीनमधिगम्य महर्षयः।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन्॥
भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः।
अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि॥ (१.१-२)

अर्थ—तत्कालीन ऋषि इस कारण ही राजर्षि मनु के पास धर्म की जिज्ञासा लेकर पहुंचे थे क्योंकि मनु अपने समय के सर्वोच्च धर्मप्रवक्ता एवं विशेषज्ञ थे।

(घ) महाभारत में अन्यत्र भी ऋषियों द्वारा राजर्षि मनु से धर्म-विषयक जिज्ञासाएं करने की घटनाओं का उल्लेख आता है। ऋषि बृहस्पति भी धर्मजिज्ञासा के लिए अन्य ऋषियों के साथ मिलकर मनु के पास जाते हैं—

प्रजापतिं श्रेष्ठतमं प्रजानां देवर्षिसंघप्रवरो महर्षिः।
बृहस्पतिः प्रश्नमिमं पुराणं पप्रच्छ शिष्योऽयं गुरुं प्रणम्य॥

(शान्तिपर्व अ० २०१.३)

अर्थ- एक समय ऋषियों के संघ के प्रमुख महर्षि बृहस्पति ने प्रजापालकों में सर्वश्रेष्ठ राजर्षि और गुरु मनु को प्रणाम करके उनसे धर्म-विषयक इस पुरातन प्रश्न को पूछा था।

(ङ) महाभारत में एक महत्वपूर्ण श्लोक आता है जिसमें एक ही श्लोक में तीन महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं—१. मनु ने धर्म का प्रवचन किया था, २. वह आदिकाल में किया था, ३. वह प्राचीन धर्मसार वेदाधारित है। श्लोक है—

धर्मसारं महाप्राज्ञ मनुना प्रोक्तमादितः।
प्रवक्ष्यामि मनुप्रोक्तं पौराणं श्रुतिसंहितम्॥

(आश्वेमधिक पर्व, अ० ९२ में श्लोक ५३ से आगे)

अर्थ—मैं मनुप्रोक्त धर्म का सार तुम्हें कहूंगा। वह वेदाधारित है और उसे मनु ने सृष्टि के आदि में कहा था।

(च) भागवतपुराण में भी कहा है कि आदिराजा मनु ने धर्मों का प्रवचन किया था—

यः पृष्टो मुनिमिः प्राह धर्मान् नानाविधान् शुभान्।
नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा।
एतद् आदिराजस्य-॥ (३.२५, ३८, ३९)

अर्थ—उस आदिराजा मनु ने आदिकाल में मुनियों के पूछने पर वर्णों और आश्रमों के अनेक धर्मों का प्रवचन किया था। वह ब्रह्मापुत्र मनु स्वायम्भुव आदिराजा था।

(२.७) मनु यज्ञसंस्था के आदिप्रवर्तक धर्मगुरु

मनु स्वायम्भुव यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठानों के आदि प्रवर्तक हैं। इतिहास से ज्ञात होता है कि मनु, स्वायम्भुव ने ही सर्वप्रथम वेदों से ज्ञान ग्रहण कर स्वयं और अपने राज्य में यज्ञों का अनुष्ठान आरंभ किया था। इस प्रकार मनु स्वायंभुव धार्मिक यज्ञसंस्था के आदिप्रवर्तक एवं धर्मगुरु हैं। इस ऐतिहासिक तथ्य का प्रमाण ब्राह्मण ग्रन्थों और संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है। शतपथ ब्राह्मण में इस ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में मिलता है—

(क) **''मनुराह वै अग्रे यज्ञेन ईजे। तद् अनुकृत्य इमाः प्रजाः यजन्ते। तस्माद् आह-'मनुष्वद्' इति। 'मनोः यज्ञः' इति उ-वै-आहुः। तस्माद् वा इव आहुः 'मनुष्वद्' इति।''** (शत० ब्रा० १.५. १.७)

अर्थात्—'यह सुनिश्चित तथ्य है कि मनु ने सर्वप्रथम यज्ञ का अनुष्ठान किया। उसी मनु का अनुसरण करके सब प्रजाएं (जनता) यज्ञ करती हैं। इसी आधार पर कहा जाता है कि यज्ञ मनु के अनुसरण पर किया जाता है अर्थात् यज्ञ का आदिप्रवर्तक मनु है।' यह आदि मनु ब्रह्मापुत्र स्वायंभुव मनु ही है।

(ख) इसी तथ्य का उल्लेख शतपथ ब्रह्मण में अन्यत्र भी वर्णित मिलता है, जिससे इसकी पुष्टि हो जाती है। ब्राह्मणकार कहता है—

''प्रजापतये मनवे स्वाहा, इति। प्रजापतिर्वै मनुः। स हि इदं सर्वं मनुत। प्रजापतिर्वै एतद् अग्रे कर्म अकरोत्।'' (६.६.१.१९)

अर्थात्- 'प्रजापति मनु के प्रति मैं आदर प्रकट करता हूं। मनु निश्चय ही प्रजापति (प्रजाओं का प्रमुख और स्वामी) है। उस मनु ने सर्वप्रथम संसार की व्यवस्थाओं का निर्माण किया और उनका प्रवर्तन किया। उस प्रजापति मनु ने ही सर्वप्रथम इस यज्ञानुष्ठान को क्रियात्मक रूप में प्रवर्तित किया। अथवा, समाज व्यवस्थापन रूप कर्म सर्वप्रथम मनु ने किया।' मनु स्वायंभुव आदि समाज-व्यवस्थापक था। अपने राज्य में उसने धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि सभी व्यवस्थाओं का प्रवर्तन कर समाज को सुसभ्य, सुसंस्कृत और व्यवस्थित बनाया।

(ग) शतपथ ब्राह्मण से भी प्राचीन तैत्तिरीय संहिता में भी मनु की इस ऐतिहासिक घटना का उल्लेख मिलता है —

''मन्विद्ध' इत्याह, मनुर्हि एतं उत्तरो देवेभ्यः ऐन्ध।''

(२.५.९.१)

अर्थात्—'मनु ने यज्ञ किया' यह कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि भावी देवजनों के लिए मनु ने यज्ञ किया अर्थात् उनके लिए यज्ञपरम्परा का प्रवर्तन किया।'

(घ) मनु स्वायंभुव के अनुकरण पर परवर्ती मनुओं ने भी मनु द्वारा प्रवर्तित धार्मिक और सामाजिक विधानों का पालन और प्रवर्तन किया। यही कारण है कि बहुत से उल्लेख कई मनुओं के साथ घुल-

मिल गये हैं। वही वर्णन कहीं स्वायंभुव के साथ वर्णित मिलते हैं तो कहीं वैवस्वत के साथ। माना जाता है कि मनु-परम्परा में जो सातवां वैवस्वत मनु था उसका मूल नाम 'श्रद्धादेव' था। शतपथ ब्राह्मण में श्रद्धादेव मनु को भी यज्ञ के प्रति अतिशय श्रद्धालु और समर्पणशील वर्णित किया है। उसके यज्ञ-प्रेम का उल्लेख करते हुए कहा है कि वह यज्ञानुष्ठान से सभी आसुरी प्रवृत्तियों और असुर प्रवृत्ति के लोगों को वश में कर लेता था—"**श्रद्धादेवो वै मनुः**" (१.१.४.१४)

—यह मनु श्रद्धादेव है।

"**मनोः श्रद्धादेवस्य यजमानस्य असुरघ्नी वाग् यज्ञायुधेषु प्रविष्टा आसीत्।**" (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.२.६.९)

अर्थात्—'यजमान श्रद्धादेव मनु की वाणी यज्ञविधियों रूप शस्त्रों में प्रविष्ट थी और वह असुरों का विनाश करने वाली थी। अर्थात् यज्ञीय विधियों के श्रद्धापूर्वक सम्यक् अनुष्ठान के द्वारा मनु आसुरी प्रवृत्तियों और असुर प्रवृत्ति के प्रजाजनों या शत्रुओं को प्रभावित और नियन्त्रित कर लेते थे।' यह नियन्त्रण यज्ञ के श्रद्धापूर्ण अनुष्ठान का परिणाम था।

(ङ) यही नहीं मनु श्रद्धादेव की पत्नी भी वेदविदुषी और मन्त्रोच्चारण में कुशल थी। वह यज्ञानुष्ठान में जब उच्चस्वर से वेदमन्त्रों का उच्चारण करती थी तो असुर प्रवृत्ति के लोग भी उससे प्रभावित होकर पराजित हो जाते थे। काठक ब्राह्मण में वर्णित एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना इसी संदर्भ में पठनीय है —

"**तत् पत्नीं यजुर्वदन्तीं प्रत्यपद्यत। तस्याः वाग् द्याम् आतिष्ठत्। तस्याः वदन्त्याः यावन्तोऽसुराः उपाशृण्वन् ते पराभवन्।**" (३.३०.१)

अर्थात्—मनु अपनी पत्नी के महल में जाते हैं तो देखते हैं कि 'उनकी पत्नी यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण कर रही थी। उसकी उच्च-स्वरीय वाणी आकाश को गुंजा रही थी। उसके मन्त्रपाठ को सुनकर सभी असुर-प्रवृत्ति के लोग इस प्रकार प्रभावित हुए मानो पराजित हो गये हों या सस्वर मन्त्रपाठ से आसुरी भावनाएं नष्ट हो रही थीं।'

इससे यह भ्रान्ति भी निर्मूल हो जाती है कि प्राचीन मनु स्त्रियों के धार्मिक अधिकारों के विरोधी थे। इस घटना में स्वतन्त्ररूप से

मनुपत्नी द्वारा यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण और उनसे यज्ञानुष्ठान का स्पष्ट उल्लेख है।

वैदिक ग्रन्थों के इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि स्वायम्भुव मनु और उसकी परम्परा में परिगणित अन्य मनु यज्ञ की धार्मिक परम्परा के आदि प्रवर्तक और श्रद्धापूर्वक संवाहक थे। अतः प्राचीन इतिहास में मनु का एक धार्मिक प्रतिष्ठाता के रूप में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(२.८) विभिन्न विद्याओं के आदि प्रस्तुतकर्त्ता मनु

प्राचीन समाज, संस्कृति, सभ्यता, विद्याओं या विषयों का इतिहास-लेखन अथवा विश्लेषण मनुस्मृति के विवेचन के बिना संभव नहीं है। मनुस्मृति अनेक विषयों की संहिता है जिसमें वे विषय सार और मौलिक रूप में विश्लेषित किये गये हैं। उनसे प्राचीन समाज एवं संस्कृति-सभ्यता पर प्रकाश पड़ता है। जिन विद्याओं या विषयों के आरम्भिक स्वरूप के ज्ञान और विश्लेषण के लिए मनुस्मृति की अनिवार्य आवश्यकता है, वे हैं—

१. धर्मशास्त्र	६. राजनीति शास्त्र
२. समाजशास्त्र	७. युद्धकला एवं नीति
३. इतिहास (सांस्कृतिक)	८. लोक प्रशासन
४. विधिशास्त्र तथा दण्डविधि	९. भाषा शास्त्र
५. अध्यात्म एवं दर्शन	१०. अर्थशास्त्र
	११. वाणिज्य

इन सब विषयों का संक्षिप्त विवेचन मनुस्मृति में पाया जाता है। प्राचीनतम समय में इतने सारे विषयों पर विचार एवं निर्णय प्रस्तुत करके मनु ने विश्व के लिए अनेक विद्याओं के द्वार खोल दिये थे। वेदों और अनेक विद्याओं की उद्गमस्थली होने के कारण तत्कालीन भारत 'विश्वगुरु' माना जाता था। भारत को 'विश्वगुरु' कहलाने और उस स्तर तक पहुंचाने का श्रेय मनु को ही जाता है। मनु घोषणापूर्वक विश्व के सभी लोगों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षार्थ अपने देश में आमन्त्रित करते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (२.२०)

अर्थ—हे पृथ्वी के निवासी सभी मनुष्यो! आओ, इस देश के विद्वान् तथा सदाचारी ब्राह्मणों के सान्निध्य में रहकर अपने-अपने चरित्रों=व्यवहारों और अभीष्ट व्यवसायों की शिक्षा ग्रहण करके विद्वान् बनो।

इस श्लोक से संकेत मिलता है कि मनु बिना किसी भेदभाव के, प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा को अनिवार्य मानते थे। उसका कारण यह था कि शिक्षा के बिना व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता। अशिक्षित व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए पर्याप्त योगदान नहीं कर पाता। मनु किसी भी व्यक्ति को राष्ट्र में निठल्ला और निकम्मा नहीं देखना चाहते थे, अतः उन्होंने शिक्षा पर बहुत अधिक बल दिया और किसी भी प्रकार का शिक्षण/प्रशिक्षण ग्रहण न करने वाले को निम्नवर्णस्थ माना तथा वर्णबाह्य करने का भी निर्देश दिया। मनु का यह '**सबके लिए अनिवार्य शिक्षा**' का संदेश था।

इस देश को इतना महान् गौरव दिलाने वाले और उस आदियुग में विश्व के सभी मनुष्यों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा प्राप्त करने का अवसर देने वाले मनु स्वायंभुव हमारे लिए गर्व करने योग्य महापुरुष हैं। ऐसे महापुरुष की अनर्गल आलोचना करने का अभिप्राय है विश्व के समक्ष अपनी ऐतिहासिक अज्ञानता का परिचय देना।

* * *

अध्याय तीन

मनुस्मृति में वर्णव्यवस्था का यथार्थ स्वरूप

(३.१) वर्णव्यवस्था सम्बन्धी भ्रान्तियां और यथार्थ

महर्षि मनु और मनुस्मृति के मौलिक मन्तव्यों को जानने के लिए मनु की वर्णव्यवस्था पर विचार किया जाना परम आवश्यक है क्योंकि अधिकांश जनों को मनु की वर्णव्यवस्था के मौलिक या वास्तविक स्वरूप की तथ्यपरक जानकारी नहीं है। ऐसा देखने में आया है कि भ्रामक जानकारियों के आधार पर ही लोग मनु को गलत समझ बैठे हैं।

(अ) मनु की वर्णव्यवस्था को समझने में भूलें व उसका यथार्थ स्वरूप

मनु की वर्णव्यवस्था अथवा वैदिक वर्णव्यवस्था को समझने में सबसे **पहली और बड़ी भूल** यह की जाती है कि कुछ लोग चातुर्वर्ण्य अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का अस्तित्व जन्म से मान लेते हैं, जबकि ये जन्म से नहीं होते। जन्म से वर्ण को मानने की भ्रान्ति के कारण ही मनु पर उच्च वर्णों को सुविधा-सम्मान देने का और शूद्र को तिरस्कृत करने का आरोप लगाया जाता है। ऐसे ही लोग वर्णों को वंशानुगत मानने की भ्रान्ति का शिकार हैं। वास्तविकता यह है कि मनु की वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, योग्यता पर आधारित व्यवस्था थी, जन्म पर आधारित जातिव्यवस्था नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि किसी भी कुल या वर्ण में जन्म लेने के बाद बालक या व्यक्ति में जैसे-जैसे गुण, कर्म, योग्यता के लक्षण होंगे, उन्हीं के अनुसार उसका वर्ण निर्धारित होगा। उसके बाद वह उसी वर्ण के नाम से पुकारा जायेगा, चाहे उसके माता-पिता का वर्ण कुछ भी रहा हो। ब्राह्मण के कुल या वर्ण में उत्पन्न बालक यदि ब्राह्मण के गुण, कर्म, योग्यता वाला है तो 'ब्राह्मण' कहलायेगा; यदि शूद्र के गुण, कर्म, योग्यता वाला है तो 'शूद्र' कहा जायेगा। इस प्रकार जन्म के आधार पर कुछ भी निर्धारित नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण-नाम जन्म से ब्राह्मण आदि होने का संकेत देने के लिए नहीं

हैं, अपितु केवल लोक व्यवहार के लिए हैं। जैसे, यह कहा जाता है कि अध्यापक, डॉक्टर , सैनिक, व्यापारी और श्रमिक के अमुक-अमुक कर्त्तव्य हैं, तो हमें आज कोई भी भ्रान्ति नहीं होती, और न यह अनुभव होता है कि ये नाम जन्म के आधार पर हैं। इसका कारण यह है कि वर्तमान व्यवस्था की यथार्थ स्थिति हमारे सामने है और यह मालूम है कि ये पद या नाम लम्बी प्रक्रिया को पूरी करने के बाद प्राप्त होते हैं, किन्तु प्रयोग इसी तरह होता है कि जैसे ये जन्माधारित व्यवसाय हों। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नाम भी एक निर्धारित प्रक्रिया के बाद प्राप्त होते थे। आज वह व्यवस्था प्रचलित नहीं है अतः जन्माधारित नाम का संदेह हो जाता है।

मनु की वर्णव्यवस्था को समझने में **दूसरी भूल** अशुद्ध अनुवादों के कारण हुई है। वर्णव्यवस्था की परम्परा को गम्भीरता और वास्तविकता से न समझ पाने के कारण अंग्रेज लेखकों ने वर्ण का जाति (Cast) अर्थ कर दिया। परवर्ती लेखक इसी का अन्धानुकरण करके वर्ण का जाति अर्थ करते आ रहे हैं। यह मूल में भूल है, जिससे वर्णों के विषय में जन्माधारित जाति का भ्रम हो रहा है। क्योंकि 'जाति' का 'जन्म' अर्थ आज रूढ़ हो चुका है। वर्ण और जन्मना जाति तो परस्परविरोधी हैं। वर्ण गुण-कर्म-योग्यता से प्राप्त किया जाता है, जबकि जाति जन्म से प्राप्त होती है। वर्ण स्वेच्छा से वरण किया जाता है, जबकि जाति अनिवार्यतः माता-पिता से मिलती है। वर्ण का अर्थ समुदाय (Class) है और जाति का अर्थ जन्मना जाति (Cast) है। इस प्रकार वर्ण का 'जाति' अर्थ करने से वर्ण के जन्माधारित होने की भ्रान्ति फैल गयी है।

वर्णव्यवस्था आर्यों के परिवारों और समाज की व्यवस्था है। उसमें चार वर्ण हैं। ये चार वर्ण आर्यों के परिवारों के बालकों या व्यक्तियों से अस्तित्व में आते हैं। किसी भी कुल या वर्ण में उत्पन्न होकर बालक या व्यक्ति जिस वर्ण का विधिवत् शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त करेगा, उसका वही वर्ण निर्धारित होगा। इस प्रकार चारों वर्ण मुख्यतः आर्यों के कुलों में से ही निर्मित होने के कारण वर्णव्यवस्था में न तो असमानता थी, न ऊंच-नीच, न स्पृश्यता-अस्पृश्यता और न भेदभाव। हाँ, यथायोग्य सामाजिक सम्मान-व्यवस्था अवश्य निर्धारित

थी। वह तो प्रत्येक व्यवस्था, प्रत्येक संस्था और प्रत्येक विभाग में आज भी है। आज की चतुर्वर्गीय सरकारी प्रशासन-व्यवस्था से यदि हम मनु की वर्णव्यवस्था की तुलना करें तो हमें मनु की वर्णपद्धति का बहुत-सा अंश समझ में आ जायेगा, क्योंकि दोनों व्यवस्थाओं में पर्याप्त मूलभूत समानता है। अन्तर इतना ही है कि मनु की व्यवस्था सामाजिक व प्रशासनिक दोनों स्तरों पर लागू थी, जबकि वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था केवल प्रशासन तक सीमित है। आज सरकार की प्रशासन-व्यवस्था में चार वर्ग ये हैं—

१. प्रथम श्रेणी अधिकारी,
२. द्वितीय श्रेणी अधिकारी,
३. तृतीय श्रेणी कर्मचारी,
४. चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी।

इनमें प्रथम दो वर्ग अधिकारियों के हैं, दूसरे दो कर्मचारियों के। संविधान के अनुसार यह विभाजन योग्यता के आधार पर है और इसी आधार पर इनका महत्त्व, सम्मान एवं अधिकार हैं। इन पदों के लिए योग्यताओं का प्रमाणीकरण पहले भी शिक्षासंस्थान (गुरुकुल, आश्रम, आचार्य) करते थे और आज भी शिक्षासंस्थान (विद्यालय, विश्वविद्यालय आदि) ही करते हैं। विधिवत् शिक्षा का कोई प्रमाणपत्र नहीं होने से, अल्पशिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति सेवा और शारीरिक श्रम के कार्य ही करता है और वह अन्तिम कर्मचारी-श्रेणी में आता है। पहले भी जो गुरु के पास जाकर विधिवत् विद्या प्राप्त नहीं करता था, वह इसी स्तर के कार्य करता था और उसकी संज्ञा 'शूद्र' थी। शूद्र के अर्थ हैं-'जो विधिवत् शिक्षित न हो', 'निम्न स्थिति वाला' 'आदेशवाहक' 'आदेश के अनुसार सेवा या श्रमकार्य करने वाला' अशिक्षित मजदूर आदि। नौकर, चाकर, मजदूर, पीयन, सेवक, प्रेष्य, सर्वेंट, अर्दली, भृत्य, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी आदि संज्ञाओं में कितनी अर्थसमानता है, आप स्वयं देख लीजिये। व्यवसायों के निर्धारण में भी बहुत अन्तर नहीं है। शिक्षासंस्थानों से डाक्टर, वकील, अध्यापक, आदि की डिग्री प्राप्त करने के बाद ही उसी व्यवसाय की अनुमति सरकार से मिलती है, उसके बिना नहीं। सबके नियम-कर्तव्य और आचार संहिता निर्धारित है। उनकी पालना न

करने वाले को व्यवसाय और पद से हटा दिया जाता है या दण्डित किया जाता है।

इसी प्रकार वर्णव्यवस्था में गुरुकुल आदि से स्नातक बनने के बाद उसी अधीत विषय का व्यवसाय करने की अनुमति होती थी, उसी पर आधारित वर्णनाम आचार्य द्वारा निर्धारित होता था। निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन न करने पर व्यक्ति को राजा अथवा धर्मसभा द्वारा उस पद या व्यवसाय से अपात्र घोषित करके वर्णावनत (पदावनत) कर दिया जाता था या दण्डित किया जाता था। पद और व्यवसाय की स्वतन्त्रता, योग्यता एवं नियम के अनुसार जैसे आज की प्रशासनिक व्यवस्था में है, उसी प्रकार वर्णव्यवस्था में थी।

(आ) वर्णधारण और वर्णपरिवर्तन आदि की प्रक्रिया

यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि वैदिक या मनु की वर्णव्यवस्था में वर्णधारण, वर्णनिर्धारण, वर्णपरिवर्तन, वर्णपतन और वर्णबहिष्कार की क्या प्रक्रिया थी?

(क) वर्णधारण—सर्वप्रथम, आचार्य, आचार्या अथवा शिक्षासंस्था का मुखिया निर्धारित आयु में विधिवत् शिक्षा प्राप्त कराने के लिए गुरुकुल में आने वाले बालक या बालिका का उपनयन संस्कार (विद्या संस्कार) करके उसे इच्छित वर्ण में दीक्षित करता था, अथवा वर्ण धारण कराता था। यह वर्णधारण बालक-बालिका की रुचि या लक्ष्य, अथवा माता-पिता की इच्छा के अनुसार होता था, जैसे आज भी प्राथमिक विद्यालयों में माता-पिता बालक-बालिका को अपनी इच्छा के अनुसार विषयों का अध्यापन करवाते हैं। किन्तु, शिक्षा प्राप्त करते समय जैसे बड़े बच्चों की रुचि बदल जाती है और वे स्वयं अपना व्यावसायिक लक्ष्य निर्धारित कर लेते हैं, उसी प्रकार गुरुकुल में अध्ययन करते समय बालक भी वर्णशिक्षा में परिवर्तन कर सकते थे। वर्णशिक्षा के लिए प्रवेश की सर्वसामान्य आयु इस प्रकार निश्चित थी— ब्राह्मणवर्ण की शिक्षार्थ प्रवेश की आयु ५-७ वर्ष, क्षत्रियवर्ण की शिक्षा के लिए ६-१०, वैश्यवर्ण की शिक्षा के लिए ८-११ वर्ष (मनुस्मृति २.३६-३७)। शिक्षार्थ प्रवेश की अधिकतम आयु ब्राह्मण वर्ण की शिक्षा के लिए १६ वर्ष तक, क्षत्रियवर्ण की शिक्षा के लिए २२ वर्ष, वैश्यवर्ण की शिक्षा के लिए २४ वर्ष तक

थी (मनु० २.३८)। इस आयु तक भी शिक्षार्थ प्रवेश न लेने वाले व्यक्ति निन्दित समझे जाते थे, और वे आर्यों के समाज में बहिष्कृत या शूद्र स्तर के माने जाते थे, क्योंकि शिक्षा आर्यों के समाज में महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य थी। विधिवत् शिक्षा न प्राप्त करने वाला ही 'शूद्र' होता था, अर्थात् दूसरा विद्याजन्म न होने के कारण ही वह 'एकजाति' अर्थात् 'केवल माता-पिता से ही जन्म लेने वाला' कहाता था। उसी का नाम 'एकजाति' या 'शूद्र' होता था (१०.४), जन्म के आधार पर नहीं।

कुछ पाठक मनुस्मृति के इस प्रकरण पर शंका प्रस्तुत करते हैं कि प्रवेश-प्रकरण में 'शूद्र' का उल्लेख क्यों नहीं है? वे इसका अभिप्राय यह निकालते हैं कि शूद्र को विद्याप्राप्ति का अधिकार नहीं था। यह शंका भी भूल में भूल से हो रही है। जो अपने मस्तिष्क में वर्णों को जन्म से मान लेने का भ्रम पाले हुए हैं, उन्हें यह शंका होती है। वास्तविक प्रक्रिया यह थी कि चारों वर्णों के बालक जिस द्विज-वर्ण में दीक्षा लेना चाहते थे, उसमें ले सकते थे। विद्या प्राप्त करके द्विज बनने वाले तीन वर्ण हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। इन्हीं में प्रवेश का औचित्य है। शूद्र बनने के लिए प्रवेश की आवश्यकता ही नहीं है। शूद्र तो वह था जो इन तीनों वर्णों में प्रवेश नहीं लेता था, अथवा प्रवेश लेकर विधिवत् शिक्षा पूर्ण नहीं करता था। इसी प्रकार शूद्र माता-पिता से उत्पन्न बालक-बालिका भी उच्च तीन वर्णों में से इच्छित वर्ण में दीक्षित हो जाते थे। इन श्लोकों में पठित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के प्रवेश की आयु से अभिप्राय है इन वर्णों में प्रवेश के इच्छुक विद्यार्थी की आयु से; जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बालक की आयु से नहीं। यह मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥ (२.३७)

अर्थ—माता-पिता की अपेक्षा से यह कथन है कि जो अधिक विद्या और ब्रह्मचर्य की कामना रखते हों, ऐसे ब्राह्मण बनने के इच्छुक बालक का उपनयन पांचवें वर्ष में करावें। अधिक बल की इच्छा रखने वाले क्षत्रिय बनने के इच्छुक बालक का छठे वर्ष में और अधिक धन की इच्छा रखने वाले वैश्य बनने के इच्छुक बालक आठवें वर्ष में उपनयन करावें।

यहां 'बालक' भी उपलक्षक पद है। इससे बालक और बालिका दोनों का ग्रहण होता है। कानून की भाषा में जैसे यह कहा जाता है कि 'जो चोरी करेगा उसको दण्ड मिलेगा', इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं होता कि केवल पुरुषों को ही दण्ड मिलेगा, स्त्रियों को नहीं। ऐसे वाक्यों से दोनों का ग्रहण होता है। इसी प्रकार धर्मशास्त्रों में पुल्लिंग प्रयोग दोनों का उपलक्षक है, उससे पुरुष और स्त्री दोनों का ही ग्रहण होता है। वर्णव्यवस्था में स्त्रियों का उपनयन संस्कार होता था और वे ऋषिकाएं बनती थीं। उनके पृथक् गुरुकुल थे। वह परम्परा उक्त अर्थ को पुष्ट करती है। (द्रष्टव्य 'नारी की स्थिति' शीर्षक पंचम अध्याय)

(ख) वर्णनिर्धारण—गुरुकुल में साथ-साथ दो प्रकार की शिक्षाएं चलती थीं— एक, वेदादिशास्त्रों एवं भाषा प्रशिक्षण की शिक्षा, जो तीनों वर्णों के लिए समान थी। दूसरी, अपने-अपने स्वीकृत वर्ण की व्यावसायिक शिक्षा थी। कम से कम एक वेद की आध्यात्मिक शिक्षा अर्जित करने तक की शिक्षा सबके लिए अनिवार्य थी। आयु के अनुसार, पुरुषों के लिए २५ वर्ष तक और बालिकाओं के लिए १६ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करनी अनिवार्य थी। उसे पूर्ण न करने वाला शूद्र घोषित हो जाता था। इससे अधिक कितनी भी शिक्षा प्राप्त की जा सकती थी। गुरुकुल से स्नातक बनते समय आचार्य बालक-बालिका के वर्ण का निर्धारण करके उसकी घोषणा करता था, जो बालक प्राप्त वर्ण शिक्षा के अनुसार होता था। जैसे, आजकल प्राप्त शिक्षा के अनुसार विद्यालय और विश्वविद्यालय कलास्नातक, वाणिज्य-स्नातक, विज्ञान-स्नातक, कानूनस्नातक आदि की उपाधियां प्रदान करते हैं और जैसे, अग्रिम आयु में व्यक्ति उन उपाधियों के अनुसार ही व्यवसाय को सम्पादित करता है, उसी प्रकार वर्णव्यवस्था में गुरु द्वारा निर्धारित वर्ण के अनुसार ही व्यवसाय, पद आदि ग्रहण करता था। मनुस्मृति में कहा है—

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या सा जराऽमरा॥

(२.१४८)

अर्थ—'वेदों में पारंगत आचार्य सावित्री=गायत्री मन्त्रपूर्वक उपनयन

संस्कार करके, विधिवत् शिक्षण देकर जो बालक के वर्ण का निर्धारण करता है, वही वर्ण उसका वास्तविक और स्वीकार्य है अर्थात् उसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।' इसको ब्रह्मजन्म कहा जाता है। इसी ब्रह्मजन्म को पाकर व्यक्ति द्विजाति बनते हैं। इस प्रकार बालक-बालिका का वर्णनिधारण होता था।

(ग) वर्णपरिवर्तन—एक बार वर्णनिर्धारण के बाद भी यदि कोई व्यक्ति वर्णपरिवर्तन करना चाहता था तो उसको उसकी स्वतन्त्रता थी और परिवर्तन के अवसर प्राप्त थे। जैसे, आज कोई कलास्नातक पुनः वाणिज्य की आवश्यक शिक्षा अर्जित करके, वाणिज्य की उपाधि प्राप्त कर व्यवसायी हो सकता है, उसी प्रकार वर्णव्यवस्था में अभीष्ट वर्ण का शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त करके व्यक्ति वर्णपरिवर्तन कर सकता था। आज भी उसकी अनुमति उपाधियों द्वारा शिक्षासंस्थान, या मान्यता द्वारा सरकार देती है; वर्णव्यवस्था-काल में भी शिक्षासंस्थान और शासन देते थे, अथवा धर्मसभा देती थी। (द्रष्टव्य हैं, इसी अध्याय के ३.८ 'अ' में ऐतिहासिक उदाहरण 'वर्णपरिवर्तन' शीर्षक में)

(घ) वर्णपतन—एक बार वर्णग्रहण करने के बाद यदि व्यक्ति अपने वर्ण, पद, या व्यवसाय के निर्धारित कर्त्तव्यों और आचार-संहिता का पालन नहीं करता था तो उसको राजा या अधिकार प्राप्त धर्मसभा वर्णावनत या वर्ण से पतित कर देते थे। अपराध करने पर भी वर्ण से पतित हो जाते थे। जैसे, आजकल नौकरी, व्यवसाय या निर्धारित कार्यों में कर्त्तव्य या कानून का पालन न करने पर, नियमों का पालन न करने पर, अथवा अपराध करने पर उस नौकरी या व्यवसाय का कुछ समय तक अधिकार छीन लिया जाता है, या उससे हटा दिया जाता है, या पदावनत कर दिया जाता है। ऐसे ही वर्णव्यवस्था में प्रावधान था। (द्रष्टव्य हैं, इसी अध्याय के ३.८ 'इ' में 'वर्णपतन' शीर्षक में ऐतिहासिक उदाहरण)

(ङ) वर्ण-बहिष्कार—जैसे आजकल विद्यालयों या शिक्षा संस्थानों में निर्धारित आयु में या समय पर प्रवेश न लेने पर बालक वैधानिक शिक्षा से और शिक्षाधारित अधिकारों से वंचित रह जाते हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में अधिकतम निर्धारित आयु (ब्राह्मण बनने के लिए १६ वर्ष, क्षत्रिय बनने के लिए २२ वर्ष, वैश्य बनने के लिए

२४ वर्ष) तक प्रवेश न लेने पर बालक या युवक उच्च वर्णों से पतित अथवा वर्णव्यवस्था से बहिष्कृत हो जाता था। यह आर्यों का वर्ण-बहिष्कार था। ऐसा व्यक्ति "व्रात्य"=व्रत से पतित या अनार्य कहाता था (२.३९)। अन्यत्र भी महर्षि मनु ने स्पष्ट कहा है—

वर्णापेतं.....................................अनार्यम्॥ (१०.५७)

अर्थ—'वर्णों की दीक्षा से रहित व्यक्ति 'अनार्य' है।' उन्हीं लोगों को 'दस्यु' भी कहा है—

मुखबाहूरूपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥ (१०.४५)

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्णों से बाहर अर्थात् इनमें जो दीक्षित नहीं हैं, वे सब व्यक्ति और समुदाय 'दस्यु' संज्ञक हैं, चाहे वे आर्यभाषाएं बोलते हैं अथवा म्लेच्छ=विकृत भाषाएं। इसी प्रकार वेद में भी 'दस्यु', 'आर्य' का विपरीतार्थक प्रयोग है।

यदि वह पुनः वर्णग्रहण करना चाहता था तो प्रायश्चित्त करके पुनः किसी अभीष्ट वर्ण की दीक्षा ले सकता था। (प्रमाण पृष्ठ ८१-८२ पर द्रष्टव्य हैं)।

(च) वर्ण-वरण में अपवाद - ऐसा भी अपवाद मिलता है कि रेभ नामक व्यक्ति वेदों का श्रेष्ठ विद्वान् था किन्तु उसने आजीविका के लिए स्वेच्छा से शूद्रवर्ण को ग्रहण किया (कूर्म पुराण अ० १०.२)। इससे यह संकेत मिलता है कि कभी-कभी व्यक्ति स्वेच्छा से भी निम्नवर्ण को ग्रहण कर लेता था।

(इ) मनु की वर्णव्यवस्था में जन्म की उपेक्षा—

वर्णव्यवस्था सामाजिक और प्रशासनिक दोनों व्यवस्थाओं का मिला-जुला रूप थी, जो मृत्युपर्यन्त व्यवहृत होती थी, किन्तु यह निर्विवाद रूप से सुनिश्चित है कि वह जन्म के आधार पर निर्णीत नहीं होती थी। 'जन्म' उसका निर्णायक तत्त्व नहीं था। वर्णव्यवस्था में 'जन्म' गौण अथवा उपेक्षित तत्त्व था। उसकी जातिव्यवस्था से कुछ भी समानता नहीं थी। अतः उसकी जातिव्यवस्था से तुलना करना न्यायसंगत नहीं है। जो लोग ऐसा करते हैं उन्हें वर्णव्यवस्था के वास्तविक या यथार्थ स्वरूप का सही ज्ञान नहीं है या वे सही स्थिति को स्वीकार करना नहीं चाहते।

सम्पूर्ण मनुस्मृति में महर्षि मनु ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि ब्राह्मण आदि जन्म से होते हैं अथवा ब्राह्मण आदि का पुत्र ब्राह्मण आदि ही हो सकता है। मनु ने निर्धारित कर्मों को करने वाले को ही उस-उस वर्ण का माना है। ब्राह्मण किस प्रकार बनता है? इसका स्पष्ट निर्देश मनु ने निम्नलिखित श्लोक में दिया है—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ (२.२८)

अर्थ—'विद्याओं के पढ़ने से; ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण आदि व्रतों के पालन से, विहित अवसरों पर अग्निहोत्र करने से, वेदों के पढ़ने से, पक्षेष्टि आदि अनुष्ठान करने से, धर्मानुसार सुसन्तानोत्पत्ति से, पांच महायज्ञों के प्रतिदिन करने से, अग्निष्टोम आदि यज्ञ—विशेष करने से मनुष्य का शरीर ब्राह्मण का बनता है।' इसका अभिप्राय यह है कि इसके बिना मनुष्य ब्राह्मण नहीं बनता।

इसी प्रकार सप्तम अध्याय में राजा के पुत्र को कहीं राजा नहीं कहा है, अपितु उपनयनकृत क्षत्रियवर्णस्थ को राजा होना कहा है (७.२)। ऐसे ही वैश्य भी कृतसंस्कार व्यक्ति होता है, उसके बिना नहीं [९.३२६ (१०.१)]। यदि मनु को वंशानुगत रूप से या जन्म से वर्ण अभीष्ट होते तो वे ऐसा वर्णन नहीं करते, यही कह देते कि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण होता है, क्षत्रिय का क्षत्रिय, वैश्य का वैश्य और शूद्र का शूद्र होता है। निष्कर्ष यह है कि मनु को जन्म से वर्ण अभिप्रेत नहीं थे।

मनु, जन्माधारित महत्ताभाव को कितना उपेक्षणीय समझते थे, इसका ज्ञान उस श्लोक से होता है जहां भोजनार्थ अपने जन्म के कुल-गोत्र का कथन करने वाले को उन्होंने 'वान्ताशी = वमन करके खाने वाला' जैसे निन्दित विशेषण से अभिहित किया है—

(क) **न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत्।**
भोजनार्थं हि ते शंसन् वान्ताशी उच्यते बुधै॥ (३.१०९)

अर्थ - कोई द्विज भोजन प्राप्त करने के लिए अपने कुल और गोत्र का परिचय न दे। भोजन या भिक्षा के लिए कुल और गोत्र का कथन करने वाला "वान्ताशी" अर्थात् 'वमन किये हुए को खाने वाला' माना जाता है।

(ख) **वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।**
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्॥ (२.१३६)

अर्थ :—वित्त = धनी होना, बन्धु-बान्धव होना, आयु में अधिकता, श्रेष्ठ कर्म, विद्वत्ता, ये पांच सम्मान के मानदण्ड हैं। इनमें बाद-बाद वाला अधिक-सम्मान का पात्र है। अर्थात् सर्वाधिक सम्माननीय विद्वान् होता है, फिर क्रमशः श्रेष्ठ कर्म करने वाला, आयु में अधिक, बन्धु और धनवान् होते हैं। वैसे यह एक ही प्रमाण पर्याप्त है जो वर्णव्यवस्था में जन्म के महत्त्व को पूर्णतः नकार देता है। यदि जन्म का महत्त्व होता तो यह कहा जाता कि जन्मना ब्राह्मण प्रथम सम्माननीय है। किन्तु ऐसा नहीं है।

मनु की वर्णव्यवस्था में कर्म का ही महत्त्व है, जन्म का नहीं; इसको सिद्ध करने वाला उनका महत्त्वपूर्ण विधान यह भी है कि कोई बालक यदि निर्धारित आयु सीमा तक उपनयन संस्कार नहीं कराता है और किसी वर्ण की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त नहीं करता है तो वह आर्यों के वर्णों से बहिष्कृत हो जाता है। जैसे आज की व्यवस्था में निर्धारित आयु तक विद्यालयों में या अन्य शिक्षा संस्थानों में प्रवेश न लेने पर उन्हें प्रवेश नहीं मिलता। तब वह वैधानिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाता। यदि मनु जन्म से वर्ण मानते तो इस प्रतिबन्धात्मक विधान का उल्लेख ही नहीं करते। जो जिस वर्ण में पैदा हो गया, आजीवन वही रहता। न तो उसका वर्णनिर्धारण होता, न वर्ण से पतन होता, न परिवर्तन होता। इससे सिद्ध है कि मनु की वर्णव्यवस्था में जन्म का आधार मुख्य नहीं है। देखिए श्लोकोक्त विधान—

आषोडशात् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥ (२.३८)
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥ (२.३९)
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद् ब्राह्मणः सह॥ (२.४०)

अर्थ—'सोलह वर्ष का होने के बाद ब्राह्मण बनने के इच्छुक बालक का, बाईस वर्ष के बाद क्षत्रिय बनने के इच्छुक का, चौबीस वर्ष के बाद वैश्य बनने के इच्छुक का, उपनयन संस्कार का

अधिकार नहीं रहता। उसके बाद ये सावित्री व्रत (उपनयन) से पतित होकर आर्यवर्णों से बहिष्कृत हो जाते हैं। व्रत का पालन न करने वाले इन पतितों से फिर कोई द्विज अध्ययन-अध्यापन तथा विवाह सम्बन्धी वैधानिक व्यवहार न करे।'

यहां इस बिन्दु पर ध्यान दीजिए कि मनु ने 'व्रात्य' लोगों से वैधानिक सम्बन्धों का निषेध किया है, सामान्य व्यवहारों का नहीं। इसे हम आज के संदर्भ में यों समझ सकते हैं कि जैसे वैधानिक शिक्षा से वंचित व्यक्ति कहीं औपचारिक प्रवेश नहीं ले सकता किन्तु स्वयं अध्ययन आदि कर सकता है। उसी प्रकार व्रत से पतितों को स्वयं अध्ययन, धर्माचरण आदि का निषेध नहीं था। दूसरी विशेष बात यह है कि उस स्थिति में भी मनु ने उनका सदा-सदा के लिए वर्णग्रहण का मार्ग अवरुद्ध नहीं किया है। यदि वे लोग फिर भी वर्णग्रहण करना चाहें तो उनके लिए यह अवसर था कि वे प्रायश्चित्त के रूप में तीन कृच्छ व्रत करके पुनः उपनयन करा सकते थे (मनु० ११.१९१-१९२-, २१२-२१४)। प्रायश्चित्त इसलिए है कि उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को भंग किया है, शिक्षा के पवित्र उद्देश्य की उपेक्षा की है, समाज में अज्ञान को बढ़ाने का पाप किया है; अतः उनको पहले इस दोष के लिए खेद अनुभव करने हेतु तथा भविष्य में विधानों की दृढ़पालना हेतु प्रायश्चित्त करना चाहिए। यह आत्मा-मन को प्रभावित करने वाली धार्मिक विधि थी। आजकल इस प्रकार के मामलों में कानूनी शपथपत्र लिया जाता है। आजकल यह कानूनी प्रक्रिया है, पहले सामाजिक-धार्मिक प्रक्रिया थी। सामाजिक-धार्मिक प्रक्रिया में अधिक दृढ़ता और ईमानदारी रहती है, कानूनी केवल कागज का टुकड़ा बनकर रह जाता है।

(ई) मनु को जातिव्यवस्थापक मानने से मनुस्मृति-रचना व्यर्थ

यदि मनु को जन्मना जातिव्यवस्था का प्रतिपादक मान लेते हैं तो इसमें मनुस्मृति की रचना का उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायेगा। क्योंकि, मनुस्मृति में पृथक्-पृथक् वर्णों के लिए पृथक्-पृथक् कर्मों का विधान किया गया है। यदि कोई व्यक्ति जन्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कहलाने लगेगा तो वह विहित कर्म करे या न करे, वह उसी वर्ण में रहेगा। जैसा कि आजकल जन्मना जाति-व्यवस्था में

है। कोई कुछ भी अच्छा-बुरा कर्म करे, वह वही कहलाता है, जो जन्म से है। उसके लिए कर्मों का विधान निरर्थक है। मनु ने जो पृथक्-पृथक् कर्मों का निर्धारण किया है, वही यह सिद्ध करता है कि वे कर्म के अनुसार वर्णव्यवस्था को मानते हैं, जन्म से नहीं।

जैसे आज भी पढ़ाना कार्य अध्यापक का है, जो पढ़ायेगा वह 'अध्यापक' कहलायेगा, सब कोई नहीं। इसी प्रकार चिकित्सा करने वाला 'डॉक्टर', वकालत करने वाला 'वकील' कहलाता है, अन्य नहीं। इसी तरह मनुस्मृति में निर्धारित कर्म करने वाला ही उस वर्ण का कहलायेगा। निर्धारित कर्म न करने वाला व्यक्ति केवल जन्म के आधार पर ब्राह्मण आदि नहीं कहा जायेगा।

(उ) वर्णों में जातियों की गणना नहीं—

मनु की कर्मणा वर्णव्यवस्था का साधक एक बहुत बड़ा प्रमाण यह है कि मनु ने केवल चार वर्णों का उल्लेख किया है और वर्णों के अन्तर्गत किन्हीं जातियों का परिगणन नहीं किया है। इससे दो तथ्य स्पष्ट होते हैं— एक, मनु के समय जन्मना कोई जाति नहीं थी। दो, जन्म का वर्णव्यवस्था में कोई महत्त्व नहीं था और न उसके आधार पर वर्ण की प्राप्ति होती थी। यदि मनु के समय जातियां होतीं और जन्म के आधार पर वर्ण का निर्धारण होता तो वे उन जातियों का परिगणन अवश्य करते और बतलाते कि अमुक जातियां ब्राह्मण हैं, अमुक क्षत्रिय हैं, अमुक वैश्य हैं और अमुक शूद्र हैं। मनु ने प्रथम अध्याय (१.३१, ८७-९२) में जब वर्णों की उत्पत्ति बतलायी है, तब केवल चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण का उल्लेख किया है। वहां किसी भी जाति की उत्पत्ति का वर्णन या उल्लेख न होना यह सिद्ध करता है कि मनुस्मृति की व्यवस्था से जन्मना जातियों का कोई सम्बन्ध नहीं था। दशम अध्याय में कुछ जातियों का अप्रासंगिक वर्णन है जो स्पष्टतः बाद में मिलाया गया प्रक्षिप्त प्रसंग है। यदि वह मनुकृत मौलिक होता तो वह प्रथम अध्याय के वर्णोत्पत्ति प्रसंग (१.३१, ८७-९१) में ही वर्णित मिलता।

निष्कर्ष—मनु का समय अति प्राचीन है। यद्यपि उन्होंने मनुस्मृति में जो आदर्श जीवनमूल्य, मर्यादाएं और धर्म का स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह सार्वभौम एवं सार्वकालिक है, किन्तु जो देश-काल-

परिस्थितियों पर आधारित व्यवस्थाएं हैं, वे तदनुसार परिवर्तनीय हैं। मनु ने अपने समय जिस सामाजिक व्यवस्था को ग्रहण किया वह उस समय की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था थी। यही कारण है वह व्यवस्था अत्यन्त व्यापक प्रभाव वाली रही और हजारों वर्षों तक वह विश्व के अधिकांश भाग में प्रचलित रहती रही है। इस कालचक्र में कुछ व्यवस्थाएं अपने मूल स्वरूप को खोकर विकृत हो गयीं। आज राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां बदलीं, हम राजतन्त्र से प्रजातन्त्र में आ गये। समयानुसार अनेक सामाजिक व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन हुआ। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि प्राचीनता हमारे लिए पूर्णतः अग्राह्य और अपमान की वस्तु बन गयी। यदि हमारी यही सोच उभरती है तो प्राचीन गौरव से जुड़ी प्रत्येक वस्तु जैसे–महापुरुष, वीर पुरुष, कवि, लेखक, नगर, तीर्थ, भवन, साहित्य, इतिहास सभी कुछ निन्दा की चपेट में आ जायेगा। अपने अतीत से कट जाने वाले समुदाय गौरव के साथ आगे नहीं बढ़ सकते। अतीत की उपेक्षा का अर्थ है भविष्य की उपेक्षा। 'इतिहास' नामक विषय के अध्ययन का जिन कारणों से महत्त्व है, वही महत्त्व वर्णव्यवस्था के अध्ययन का है। हमें केवल विरोध के लिए ही अतीत का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए, अपितु किसी भी व्यवस्था, वस्तु, व्यक्ति का मूल्यांकन तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही किया जाना चाहिए। वही सही मूल्यांकन माना जा सकता है और वह मूल्यांकन यह है कि मनु की वर्णव्यवस्था कर्म पर आधारित थी जन्म पर नहीं। अतः मनु पर जातिवादी होने का आरोप नितान्त निराधार एवं मिथ्या है।

(ऊ) शारीरिक रंग का वर्णों से सम्बन्ध : एक भ्रान्ति

वर्णों की संरचना–प्रक्रिया तथा वर्णव्यवस्था के इतिहास को न जानने–समझने वाले कुछ कथित लेखकों ने जाने या अनजाने में एक भ्रान्ति फैला दी है कि वर्णों का निर्धारण शरीर के वर्ण के आधार पर किया गया था, अथवा होता था। यह भ्रान्ति जिन संदर्भों के आधार पर उत्पन्न हुई है उनको गम्भीरता से न तो समझा गया है और न उस पर चिन्तन किया गया है। यदि किसी संस्कृत के ग्रन्थ में भी यह बात कही गयी है तो वह भी मिथ्या चिन्तन का परिणाम है।

वस्तुतः, जहां कहीं वर्णों के संदर्भ में शारीरिक वर्णों (रंगों) की चर्चा है वह केवल प्रतीकात्मक है। यह प्रतीकात्मकता पुराकाल में भी रही है और आज भी है। जैसे, तिरंगे ध्वज में तीनों रंग एक-एक विशेषता के प्रतीक हैं। केसरिया त्याग का, सफेद शान्ति का, हरा समृद्धि का प्रतीक है। काला धन, सफेद धन, लाल झंडा, पीत पत्रकारिता, सड़कों पर लगी तीन रंगों की बत्तियां, गाड़ियों पर लगी लाल-पीली हरी बत्तियां आदि सभी प्रतीक हैं किसी भाव या गुण की। आज भी जब यह कहा जाता है कि 'यह आदमी काले दिल का है' या 'बड़ा काला है' तो उसका अभिप्राय शरीर के रंग से नहीं होता अपितु उसकी प्रकृति की विशेषता को व्यक्त करता है। इसी प्रकार चारों वर्णों की मूल प्रकृति को कभी-कभी रंगों की प्रतीकात्मकता के द्वारा व्यक्त किया जाता रहा है। वहां वर्णानुसार शरीर के रंग से अभिप्राय नहीं है।

वर्णों के साथ शरीर के रंगों का सम्बन्ध इतिहास-परम्परा से भी गलत सिद्ध होता है। विष्णु, लक्ष्मण गौरवर्ण थे, फिर भी क्षत्रिय थे। शिव, राम, कृष्ण, काले रंग के थे, किन्तु क्षत्रिय थे। महर्षि वेदव्यास गहरे काले रंग के थे, किन्तु ब्राह्मण थे। ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। अतः यह बात सर्वथा गलत है कि रंग के आधार कभी वर्ण-निश्चय किया जाता था। यह संभव भी नहीं है। मनु ने सम्पूर्ण मनुस्मृति में रंग-आधारित वर्णव्यवस्था के निर्माण की कहीं चर्चा भी नहीं की है। उन्होंने केवल गुण-कर्म-योग्यता को वर्णनिर्धारण का आधार माना है।

महाभारत में जो श्लोक वर्णों के रंग का वर्णन कर रहा है, वह प्रतीकात्मक है। वहां यह कहा गया है कि पहले एक वर्ण ब्राह्मण वर्ण ही था। सभी ब्राह्मण थे। उनमें से रक्तवर्ण क्षत्रिय बने, पीत वैश्य बने, कृष्णवर्ण शूद्र बने। 'वर्णों (रंगों) के आधार पर वर्ण बने,' इसका सही अभिप्राय यह स्पष्ट हो रहा है कि स्वभावगत विशेषताओं के आधार पर उनमें से अन्य वर्ण बने। यदि उन श्लोकों का प्रतीकार्थ नहीं मानेंगे तो पहले-पिछले श्लोकों में विरोध उपस्थित होगा। पहले श्लोक में सभी ब्राह्मण-वर्णस्थों को 'उजले' रंग का कहा है। जब सभी उजले-गोरे रंग के थे तो उनमें से लाल, पीले,

काले कहां से उत्पन्न हो गये? इस विरोध का समाधान प्रतीकार्थ द्वारा ही संभव है। वह श्लोक यह है—

ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां च लोहितः।
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितं तथा॥

(महाभारत, शान्तिपर्व १८८.५ तथा आगे)

अर्थ—'ब्राह्मणों का उजला (गोरा) रंग है। क्षत्रियों का लाल रंग है। वैश्यों का पीला रंग है। शूद्रों का असित=काला या मैला रंग है।' यहां सफेद या उजला रंग ज्ञान का, लाल रंग वीरता का, पीला समृद्धि का, और काला अज्ञान का प्रतीक है। आज भी इन विशेषताओं के प्रतीक यही रंग हैं। चारों वर्णों की यह प्रतीकात्मकता ही आधारभूत विशेषता है।

इसकी पुष्टि में एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण उपलब्ध है। शाल्मलि द्वीप नामक देश में तो चारों वर्णों के नाम ही रंगों की प्रतीकात्मकता के आधार पर प्रचलित थे—

शाल्मले ये तु वर्णाश्च वसन्ति ते महामुने॥
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक्-पृथक्।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति ते॥

(विष्णुपुराण २.४.१२, १३)

अर्थ—यहां ब्राह्मणों का सफेद के स्थान पर भूरा रंग बताया है। कहा है—'शाल्मलि द्वीप में ब्राह्मणों का कपिल, क्षत्रियों का अरुण, वैश्यों का पीत और शूद्रों का कृष्ण नाम प्रचलित है। वे चारों वर्ण यज्ञानुष्ठान करते हैं।'

भागवतपुराण के निम्नलिखित श्लोक में तो कृष्ण रंग को शूद्र के पर्याय-रूप में ही प्रयुक्त किया है। जो यह सिद्ध करता है कि यह लाक्षणिक नाम है—

"ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रूरङ्घ्रिश्रितः कृष्णवर्णः"

(२.१.३७)

अर्थात्—'उस महान् पुरुष के मुख में ब्राह्मण वर्ण, भुजाओं में क्षत्रिय वर्ण, जंघाओं में वैश्य और चरणों में कृष्णवर्ण अर्थात् शूद्र वर्ण का निवास है।' यहां स्पष्ट हो रहा है कि वर्णों की मुख्य प्रकृति के आधार पर यह रंग-आधारित नामकरण प्रचलित हुआ। आज भी

व्यक्तियों के कपिल, अरुण, कृष्ण नाम प्रायः मिलते हैं, वस्तुतः वे भूरे, लाल, काले नहीं होते। वहां लाक्षणिक प्रतीकार्थ ही अभिप्रेत हुआ करता है। अतः पाठकों को रंग-आधारित वर्णव्यवस्था की भ्रान्ति में नहीं पड़ना चाहिए। ऐसी भ्रान्ति से ग्रस्त लेखक, बुद्धिमानों में साहित्यज्ञान से रहित और विचारशून्य माने जाते हैं।

(३.२) वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था के मूलभूत अन्तर

(अ) मूलभूत अन्तर के बिन्दु—

वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था परस्पर विरोधी व्यवस्थाएं हैं। इतनी विरोधी हैं कि एक की उपस्थिति में दूसरी व्यवस्था का अस्तित्व नहीं रहता। इनके विभाजक मूलभूत अन्तर इस प्रकार हैं—

१. वर्णव्यवस्था में बालक-बालिका या व्यक्ति किसी भी कुल में उत्पन्न होने के पश्चात् अपनी रुचियों, गुण, कर्म, योग्यता के अनुसार किसी भी इच्छित वर्ण को ग्रहण कर सकता है, जबकि जातिव्यवस्था में जाति का माता-पिता से निर्धारण होने के कारण व्यक्ति किसी अन्य इच्छित जाति को ग्रहण नहीं कर सकता।

२. वर्णव्यवस्था में वर्णों के निर्धारक तत्त्व गुण, कर्म, योग्यता होते हैं, जबकि जातिव्यवस्था में केवल जन्म ही जाति का निर्धारक तत्त्व होता है। वर्णव्यवस्था में जन्म का कोई महत्त्व नहीं होता, जबकि जातिव्यवस्था में जन्म का सर्वोच्च महत्त्व होता है।

३. वर्णव्यवस्था में पद और व्यवसाय वंशानुगत होने अनिवार्य नहीं हैं, जबकि जातिव्यवस्था में ये अनिवार्य होते हैं।

४. वर्णव्यवस्था में व्यक्ति की बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक क्षमताओं के विकास का स्वतन्त्र व खुला अवसर रहता है, जबकि जातिव्यवस्था में वह अवरुद्ध रहता है।

५. वर्णव्यवस्था में असमानता के आधार पर ऊंच-नीच, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि का भेदभाव नहीं होता, जबकि जातिव्यवस्था में इनका अस्तित्व उग्र या शिथिल रूप में अवश्य बना रहता है।

६. वर्णव्यवस्था में जीवनभर वर्णपरिवर्तन की स्वतन्त्रता बनी रहती है, जबकि जातिव्यवस्था में जहां एक बार जन्म हो गया, जीवनपर्यन्त अनिवार्य रूप से उसी जाति में रहना पड़ता है।

७. वर्णव्यवस्था में व्यक्ति निर्धारित कर्मों के न करने पर या

उनके त्यागने पर वर्ण से अनिवार्यतः पतित हो जाता है, जबकि जातिव्यवस्था में अच्छा-बुरा कुछ भी करने पर उसी जाति का बना रहता है। जैसे—वर्णव्यवस्था में अनपढ़, मूढ़, चोर या डाकू को कभी ब्राह्मण वर्णस्थ नहीं माना जा सकता, जबकि जातिव्यवस्था में अनपढ, मूढ़, चोर या डाकू भी ब्राह्मण ही रहता है और वह उस पतित स्थिति में भी उच्च जातीयता का अभिमान रखता है।

८. वर्णव्यवस्था में सवर्ण विवाह की प्राथमिकता होते हुए भी समान गुण-कर्म-योग्यता की कन्या से अन्य वर्ण में भी विवाह किया जा सकता है। मनु का कथन है—**"स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि"** (२.२३८, २४०)= 'श्रेष्ठ स्त्री निम्नकुल से भी ग्रहण की जा सकती है।' इस प्रकार वर्णव्यवस्था में अन्तर-वर्ण विवाह (अन्तर-जातीय विवाह) और सहभोज स्वीकार्य होते हैं। जातिव्यवस्था में ये दोनों ही स्वीकार्य नहीं होते।

९. वर्णव्यवस्था स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक तथा स्वैच्छिक है, जबकि जातिव्यवस्था अस्वाभाविक, अमनोवैज्ञानिक और बलात् आरोपित है।

१०. वर्णव्यवस्था का व्यावहारिक क्षेत्र उदार एवं विस्तृत है, जबकि जातिव्यवस्था का संकीर्ण एवं सीमित।

११. वर्णव्यवस्था समाज और राष्ट्र में सामुदायिक भावना एवं समरसता उत्पन्न कर दृढ़ता प्रदान करती है, जबकि जातिव्यवस्था विघटन पर विघटन पैदा करती है। जातिव्यवस्था का विघटन असीम है।

१२. वर्णव्यवस्था में शरीर, बुद्धि, मन का सामञ्जस्य बना रहता है, जबकि जातिव्यवस्था में इनका सामञ्जस्य होना सदा संभव नहीं होता।

(आ) डॉ० अम्बेडकर के मतानुसार मूलभूत अन्तर—

डॉ. अम्बेडकर वर्णव्यवस्था एवं जातिव्यवस्था को परस्पर विरोधी मानते हैं और वर्णव्यवस्था के मूलतत्त्वों की प्रशंसा करते हैं। उन्हीं के शब्दों में उनके मत उद्धृत हैं—

(क) "जाति का आधारभूत सिद्धान्त वर्ण के आधारभूत सिद्धान्त से मूलरूप से भिन्न है, न केवल मूल रूप से भिन्न है, बल्कि मूल

रूप से परस्पर-विरोधी है। पहला सिद्धान्त (वर्ण) गुण पर आधारित है'' (अम्बेडकर वाड्मय, खंड १, पृ. ८१)

(ख) वर्ण और जाति दोनों का एक विशेष महत्त्व है जिसके कारण दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। वर्ण तो पद या व्यवसाय किसी भी दृष्टि से वंशानुगत नहीं है। दूसरी ओर, जाति में एक ऐसी व्यवस्था निहित है जिसमें पद और व्यवसाय, दोनों ही वंशानुगत हैं, और इसे पुत्र अपने पिता से ग्रहण करता है। जब मैं कहता हूं कि ब्राह्मणवाद ने वर्ण को जाति में बदल दिया, तब मेरा आशय यह है कि इसने पद और व्यवसाय को वंशानुगत बना दिया।'' (वही खंड ७, पृ० १६९)

(ग) ''वर्ण निर्धारित करने का अधिकार गुरु से छीनकर उसे पिता को सौंपकर ब्राह्मणवाद ने वर्ण को जाति में बदल दिया।'' (वही, खंड ७, पृ० १७२)

(घ) ''वर्ण और जाति, दो अलग-अलग धारणाएं है। वर्ण इस सिद्धान्त पर टिका हुआ है कि प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार, जबकि जाति का सिद्धान्त है कि प्रत्येक को उसके जन्म के अनुसार। दोनों में **इतना ही अन्तर है जितना पनीर और खड़िया में।**'' (वही, खंड १, पृ० ११९)

(ङ) ''वर्ण के अधीन कोई ब्राह्मण मूढ़ नहीं हो सकता। ब्राह्मण के मूढ़ होने की संभावना तभी हो सकती है, जब वर्ण जाति बन जाता है, अर्थात् जब कोई जन्म के आधार पर ब्राह्मण हो जाता है।'' (वही, खंड ७, पृ० १७३)

(च) ''जाति और वर्ण में क्या अन्तर है, जो महात्मा (गांधी) ने समझा है? जो परिभाषा महात्मा ने दी है उसमें मैं कोई अन्तर नहीं पाता हूं। जो परिभाषा महात्मा ने दी है उसके अनुसार तो वर्ण ही जाति का दूसरा नाम है, इसका सीधा कारण यह है कि दोनों का सार एक है अर्थात् पैतृक पेशा अपनाना। प्रगति तो दूर, महात्मा ने अवनति की है। वर्ण की वैदिक धारणा की व्याख्या करके उन्होंने जो उत्कृष्ट था उसे वास्तव में उपहासप्रद बना दिया है।.....(वह वैदिक वर्णव्यवस्था) केवल योग्यता को मान्यता देती है। वर्ण के बारे में महात्मा के विचार न केवल वैदिक वर्ण को मूर्खतापूर्ण बनाते हैं,

बल्कि घृणास्पद भी बनाते हैं। वर्ण और जाति, दो अलग-अलग धारणाएं हैं। अगर महात्मा विश्वास करते हैं, जो वह अवश्य करते हैं कि प्रत्येक को अपना पैतृक पेशा अपनाना चाहिए, तो निश्चित रूप से जातपांत की वकालत कर रहे हैं तथा इसको वर्णव्यवस्था बताकर न केवल परिभाषिक झूठ बोल रहे हैं, बल्कि बदतर और हैरान करने वाली भ्रांति फैला रहे हैं। मेरा मानना है कि सारी भ्रान्ति इस कारण से है कि महात्मा की धारणा निश्चित और स्पष्ट नहीं है कि वर्ण क्या है और जाति क्या है।'' (वही, खंड १, पृ० ११९)

उपर्युक्त बहुत-से उद्धरणों में हमने देखा कि डॉ० अम्बेडकर जाति और वर्ण को बिल्कुल भिन्न मानते हैं और वर्ण को श्रेष्ठ तथा आपत्तिरहित भी मानते हैं। मनु की व्यवस्था भी वर्णव्यवस्था है, जाति व्यवस्था नहीं। फिर भी मनु का विरोध क्यों?

(३.३) मनुस्मृति में 'जाति' शब्द 'वर्ण' और 'जन्म' का पर्याय

पाठकों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि मनुस्मृति में अनेक श्लोकों में वर्ण के बजाय 'जाति' शब्द का प्रयोग है। क्या मनु 'जाति' को स्वीकार करते हैं?

(अ) इसका उत्तर पूर्वोक्त ही है कि जाति का 'जन्मना' 'जाति' अर्थ नहीं है, क्योंकि वर्णव्यवस्था में जन्मना जाति स्वीकार्य नहीं थी और न मनु के समय जातियों का उद्‌भव ही हुआ था। उस समय 'जाति' शब्द भी वर्ण या समुदाय के पर्याय के रूप में ही प्रयुक्त होता था, जैसे—

(क) ''**आचार्यस्त्वस्य यां जातिम्.....उत्पादयति सावित्र्या।**''

(२.१४८)

अर्थ—आचार्य बालक-बालिका के जिस वर्ण का गायत्रीपूर्वक निर्धारण करता है।

(ख) ''**जातिहीनांश्च नाक्षिपेत्**'' (४.१४१)

अर्थ—अपने से निम्न वर्ण वालों पर कभी कटाक्ष न करे।

(ग) ''**मुखबाहूरूपज्जानां या लोके जातयो बहिः।**'' (१०.४५)

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण-व्यवस्था से जो समुदाय बाहर हैं, वे सब दस्यु हैं।

(घ) ''**जातिं वितथेन ब्रुवन् दाप्यः**'' (८.२७३)

अर्थ—अपना वर्ण झूठ बतलाने वाला दण्डनीय है।

(आ) इसके अतिरिक्त मनुस्मृति में जाति शब्द का प्रयोग 'जन्म' के पर्याय रूप में हुआ है 'जन्मना जाति' के अर्थ में नहीं। कुछ उदाहरण हैं—

(क) "**एकजातिः**" = एक जन्म वाला अर्थात् शूद्र वर्ण, जिसका विद्याजन्म रूपी दूसरा जन्म नहीं हुआ (१०.४)।

(ख) "**द्विजातिः**" = जिसके शारीरिक तथा विद्याजन्म, ये दो जन्म हुए हैं, वे वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं (१०.४)।

(ग) "**जात्यन्धबधिरौ**" = जन्म से अन्धे और बहरे (९.२०१)।

(घ) "**जातिं स्मरति पौर्विकीम्**" = योगी पूर्व जन्म को स्मरण कर लेता है (४.१४८)

मनुस्मृति के मौलिक प्रसंगों में पठित जाति शब्द का जाति-पांति व्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(३.४) मनुस्मृति की वर्णव्यवस्था की वेदमूलकता

महर्षि मनु स्वयं स्वीकार करते हैं कि मनुस्मृति में वर्णित गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित वर्णव्यवस्था वेदमूलक है। इसका वर्णन तीन वेदों (ऋग्० १०.९०.११-१२; यजु० ३१.१०-११; अथर्व० १९.६.५-६) में पाया जाता है। मनु वेदों को धर्म में परमप्रणाम मानते हैं, अतः उन्होंने वर्णव्यवस्था को वेदों से ग्रहण करके उसे धर्ममूलक व्यवस्था मानकर अपने शासन में क्रियान्वित किया तथा अपने धर्मशास्त्र के द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित किया।

पाठक इस तथ्य की ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान दें कि वेदों तथा मनुस्मृति में वर्णित वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति के प्रसंग में वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है, वर्णस्थ व्यक्तियों की उत्पत्ति का नहीं। वहां यह बतलाया गया है कि किस अंग की समानता के आधार पर किस वर्ण की कल्पना की गई अर्थात् किस वर्ण का कैसे नामकरण किया गया। उत्पत्ति सम्बन्धी मन्त्रों और श्लोकों की व्याख्या में अनेक व्याख्याकार भ्रमित होकर ब्राह्मण, शूद्र आदि व्यक्तियों की उत्पत्ति वर्णित करते हैं, जो वर्णव्यवस्था के मूल सिद्धान्त के ही विरुद्ध है। वेदमन्त्रों का सही अर्थ इस प्रकार है—

प्रश्न— **यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।**
मुखं किमस्य, कौ बाहू, का ऊरू पादौ उच्येते ॥

उत्तर— ब्राह्मणो-अस्य मुखम् आसीद् बाहू राजन्यःकृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
(ऋग्० १०.९०.११-१२)

प्रश्न—प्रश्न है कि (यत् पुरुषं वि-अदधुः) जिसको 'पुरुष' कहते हैं, उसकी अथवा समाजरूपी पुरुष की किस प्रतीक के रूप में कल्पना की गयी? वह (कतिधा अकल्पयन्) वह कल्पना कितने प्रकार से की गयी? (अस्य मुखं किम्) इस समाज या पुरुष का मुख क्या है? (कौ बाहू) भुजाएं क्या हैं? (का ऊरू, पादौ उच्येते) जंघाएं अर्थात् मध्यमार्ग और पैर क्या कहे जाते हैं?

उत्तर—इस पुरुष का, अथवा समाजरूपी पुरुष का (ब्राह्मणः मुखम् आसीत्) ब्राह्मण नामक वर्ण मुख = मुखमण्डल हुआ अर्थात् मुखमण्डल के गुणों के आधार पर प्रथम वर्ण का 'ब्राह्मण वर्ण' नाम रखा गया (बाहू राजन्यः कृतः) भुजा 'क्षत्रिय वर्ण' को बनाया गया अर्थात् भुजाओं के गुणों के अनुसार 'राजन्य=क्षत्रिय वर्ण' नाम रखा गया (यद् वैश्यः तद् अस्य ऊरू) जो 'वैश्य वर्ण' है, वह इसका मध्यभाग या जंघा रूप कहा गया अर्थात् पेट आदि मध्यभाग के गुणों के अनुसार 'वैश्य वर्ण' नाम रखा गया (शूद्रः पद्भ्याम् अजायत) 'शूद्रवर्ण' पैरों की तुलना से निर्मित हुआ अर्थात् पैरों के गुणों के अनुसार 'शूद्रवर्ण' का नाम रखा गया।

प्रश्न—आपने वर्णव्यवस्था का विधान करने वाले वेदमन्त्रों का अर्थ वर्ण की उत्पत्तिपरक किया है जबकि अन्य व्याख्याकार वर्णस्थ व्यक्तियों की उत्पत्तिपरक अर्थ करते हैं। इनमें से किस व्याख्या को ठीक मानें? मनुस्मृति में किस प्रकार उत्पत्ति बतायी है?

उत्तर—यहां प्रस्तुत व्याख्या ही ठीक तथा शास्त्रानुकूल है। सबसे पहले इसमें वेदों के व्याख्याग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण देता हूं। वहां एक आख्यापिका में वर्णों की उत्पत्ति बतलाते हुए पहले वर्णों की उत्पत्ति ही कही है—

"ब्रह्म वा इदमासीदेकमेव.......तत् असृजत् क्षत्रम्...... स विशमसृजत् सः शौद्रं वर्णमसृजत्।" (१४.४.२.२३-२५)

यहां उत्पत्ति-प्रक्रिया में स्पष्टतः वर्णों की उत्पत्ति पहले कही है। तर्क के आधार पर भी उक्त व्याख्या सही है। इसमें **पहला तर्क** यह है कि जब पहले वर्ण उत्पन्न होंगे तभी तो व्यक्ति उनमें प्रवेश

करेगा। जैसे, पहले आश्रमों, संस्कारों का अविष्कार हुआ। फिर उनमें व्यक्तियों का प्रवेश हुआ। जैसे पहले कक्षा का नाम (मैट्रिक, बी.ए., एम. ए., आचार्य) रखा जाता है। बाद में उसमें प्रवेश होता है। यहां **दूसरा तर्क** यह है कि उत्पत्ति एक बार ही हुआ करती है। जबकि वर्णपरिर्वतन होकर लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बार-बार बनते रहते हैं। कभी स्वेच्छा से तो कभी दण्डस्वरूप वर्णपतन होता है। यदि ब्राह्मण को मुख से उत्पन्न हुआ कहा जाता है तो वह जब शूद्र घोषित होगा तो दोबारा उसकी उत्पत्ति पैरों से कैसे होगी? वह तो पहले ही उत्पन्न हो चुका है। **तीसरा तर्क** यह है कि एक वर्ण में करोड़ों लोग हैं, इतनी बड़ी संख्या में वे कैसे उत्पन्न होंगे? और रोज-रोज कैसे होते रहेंगे? अतः इसे आलंकारिक लाक्षणिक शैली का वर्णन मानना चाहिए। इस प्रकार यहां प्रस्तुत 'वर्णों की उत्पत्ति' वाला अर्थ ही तर्कसंगत है।

इस प्रसंग में बहुत-से लोग गलत अर्थ करके और फिर दूसरे उसे पढ़कर भ्रान्ति का शिकार हो जाते है और यह समझते हैं कि पुरुष से सीधे व्यक्तियों की उत्पत्ति बतलायी हैं, अतः वर्णव्यवस्था में सभी लोगों का वर्ण जन्म से ही निर्धारित होता है। यह भ्रान्ति अपव्याख्या से उत्पन्न होती है। महर्षि मनु ने गत वेदमन्त्रों को सही अर्थ में समझा था, अतः उन्होंने भी पहले वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन किया है—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुख-बाहूरूपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्॥ (१.३१)

अर्थ- 'समाज की विशेष उन्नति-समृद्धि के लिए परमात्मा ने मुख, बाहु, जंघा और पैरों के कार्यों की तुलना से क्रमशः ब्राह्मणवर्ण, क्षत्रियवर्ण, वैश्यवर्ण और शूद्रवर्ण को निर्मित किया। वर्णों का निर्माण करके फिर उनके कर्मों का निर्धारण इस प्रकार किया—

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक् कर्माण्यकल्पयत्॥ (१.८७)

अर्थ— 'इस सम्पूर्ण संसार की सुरक्षा एवं पालन-पोषण के लिए उस महातेजस्वी परमात्मा ने मुख, बाहु, ऊरु और पैरों की तुलना से निर्मित क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के पृथक्-पृथक्

कर्म निर्धारित किये। उसके बाद १.८९-९२ में एक-एक वर्ण के कर्मों का वर्णन है। उन कर्मों को अपनाने के बाद ही व्यक्ति फिर उस-उस वर्ण का नाम धारण करता है। क्योंकि बिना वर्णनाम निर्धारित हुए और बिना कर्मों को धारण किये कोई ब्राह्मण नहीं कहला सकता। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी नहीं कहला सकते। इस प्रकार वर्णस्थ व्यक्ति बनने का क्रम तो वर्णोत्पत्ति और कर्म निर्धारण के पश्चात् तीसरे क्रम पर आता है। अतः पहले वर्णोत्पत्ति का होना ही अभीष्ट एवं बुद्धिसंगत है।

एक ही पुरुष से चार वर्णों की उत्पत्ति होने से वर्णों में ऊंच-नीच का भाव भी नहीं हो सकता है। यह केवल योग्यता का क्रम वर्णित है। पैरों के गुणों की समानता से शूद्रवर्ण की उत्पत्ति में भी नीचता या हीनता का भाव नहीं है। वैदिक साहित्य में पूषा देव, पृथ्वी, मन्त्रों की उत्पत्ति पैरों से कही गयी है। क्या इन देवों और मन्त्रों को हम नीच मान लेंगे? इसी प्रकार शूद्र वर्ण में भी नीचता का भाव नहीं समझना चाहिए। (विस्तृत विवेचन अ० चार में पढ़िए।)

(३.५) महर्षि मनु द्वारा निर्धारित वर्णों के अनिवार्य कर्त्तव्य—

वेदवर्णित इन मन्त्रों को आधार बनाकर पहले ब्रह्मा ने और फिर मनु ने चार वर्णों (समुदायों) के कर्त्तव्य-कर्म निर्धारित किये। इसका भाव यह है कि जो व्यक्ति जिस वर्ण का चयन करेगा उसको विहित कर्मों का पालन करना होगा। निर्धारित कर्मों का पालन न करने वाला व्यक्ति उस वर्ण का नहीं माना जायेगा। इसी प्रकार किसी वर्ण-विशेष के कुल में जन्म लेने मात्र से भी कोई व्यक्ति उस वर्ण का नहीं माना जा सकता। जैसे कोई अध्यापन बिना अध्यापक, चिकित्सा बिना डॉक्टर, सेना बिना सैनिक, व्यापार बिना व्यापारी, श्रमकार्य बिना श्रमिक नहीं कहला सकता, उसी प्रकार निर्धारित कर्मों के किये बिना कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं माना जा सकता।

(क) ब्राह्मण वर्ण का चयन करने वाले स्त्रियों और पुरुषों के लिए निर्धारित कर्म—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजन तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ (१.८८)

अर्थ—ब्राह्मण वर्ण में दीक्षा लेने के इच्छुक स्त्री-पुरुषों के लिए

ये कर्त्तव्य और आजीविका के कर्म निर्धारित किये हैं—'विधिवत् पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना तथा दान प्राप्त करना और सुपात्रों को दान देना।' इन कर्मों के बिना कोई ब्राह्मण-ब्राह्मणी नहीं हो सकता।

(ख) क्षत्रिय वर्ण ग्रहण करने वाले स्त्रियों-पुरुषों के लिए निर्धारित कर्म—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ (१.८९)

अर्थ—विधिवत् पढ़ना, यज्ञ करना, प्रजाओं का पालन-पोषण और रक्षा करना, सुपात्रों को दान देना, धन-ऐश्वर्य में लिप्त न होकर जितेन्द्रिय रहना, ये संक्षेप में क्षत्रिय वर्ण को धारण करने वाले स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य हैं। विस्तार से इनके कर्त्तव्य मनुस्मृति के अध्याय ७, ८, ९ में बतलाये हैं। वहां देखे जा सकते हैं।

महर्षि दयानन्द ने क्षत्रिय के कर्त्तव्यों के अन्तर्गत 'इज्या' शब्द के अर्थ 'यज्ञ करना और कराना' दोनों किये हैं (समु० ४)। यह वर्णव्यवस्था के अनुसार सही है। यज्ञानुष्ठान क्षत्रिय और वैश्य भी करा सकते हैं क्योंकि वे प्रशिक्षित और वेदवित् होते हैं, किन्तु वे इसको नियमित आजीविका नहीं बना सकते, क्योंकि वह केवल ब्राह्मण के लिए ही निर्धारित है। इसी प्रकार एक मतानुसार क्षत्रिय और वैश्य अपने तथा अपने से निम्न वर्ण का उपनयन संस्कार भी करा सकते हैं—

"**ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति, राजन्यो द्वयस्य, वैश्यस्य, शूद्रमपि कुल-गुण-सम्पन्नं मन्त्रवर्जमुपनीतमध्यापयेदित्येके।**" (सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, अ० २)

अर्थात्-'ब्राह्मण अपने सहित तीन वर्णों का, क्षत्रिय अपने सहित निम्न दो का, वैश्य अपने सहित निम्न एक वर्ण का उपनयन करा सकता है।' यह संस्कार यज्ञपूर्वक ही होता है।

(ग) वैश्य वर्णेच्छुक स्त्री-पुरुषों के लिए निर्धारित कर्त्तव्य—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥ (१.९०)

अर्थ—पशुओं का पालन-पोषण एवं संवर्धन करना, सुपात्रों को दान देना, यज्ञ करना, विधिवत् अध्ययन करना, व्यापार करना, ब्याज से धन कमाना, खेती करना, ये वैश्य वर्ण को ग्रहण करने वाले स्त्री-पुरुषों के लिए निर्धारित कर्म हैं।

(घ) शूद्र वर्णधारक स्त्री-पुरुषों के लिए निर्धारित कर्म—

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥ (१.९१)

अर्थ—परमात्मा ने वेदों में शूद्र वर्ण ग्रहण करने वाले स्त्री-पुरुषों के लिए एक ही कर्म निर्धारित किया है, वह यह है कि 'इन्हीं चारों वर्णों के व्यक्तियों के यहां सेवा या श्रम का कार्य करके जीविका करना।' क्योंकि अशिक्षित व्यक्ति शूद्र होता है अतः वह सेवा या श्रम का कार्य ही कर सकता है, अतः उसके लिए यही एक निर्धारित कर्म है।

(३.६) वर्णों के नामों का अर्थ एवं व्युत्पत्ति—

व्याकरण की भाषा में कहें तो वर्णों के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम यौगिक पद हैं और गुणवाचक हैं। इन नामों में ही इनके कर्त्तव्यों का संकेत निहित है। वैदिक संस्कृत के इन शब्दों की रचना और व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

(क) ब्राह्मण—'ब्रह्मन्' पूर्वक 'अण्' प्रत्यय के योग से 'ब्राह्मण' पद बनता है। ब्रह्म के वेद, ईश्वर, ज्ञान आदि अर्थ हैं।

ब्रह्मणा वेदेन परमेश्वरस्य उपासनेन सह वर्तमानः ब्राह्मणः=ब्रह्म अर्थात् वेदपाठी, परमेश्वर के उपासक और ज्ञानी गुण वाले वर्ण या व्यक्ति को 'ब्राह्मण' कहा जाता है। जिसमें ये गुण नहीं, वह ब्राह्मण नहीं है।

(ख) क्षत्रिय—'क्षत' पूर्वक 'त्रै' धातु से 'उ' प्रत्यय होकर 'क्षत्र' पद बनता है। क्षत्र ही क्षत्रिय कहलाता है। **'क्षदति रक्षति जनान् सः क्षत्रः'** = जो प्रजा की सुरक्षा, संरक्षा करता है, उस गुणवाले को 'क्षत्रिय' या 'क्षत्रियवर्ण' कहते हैं। आज उसे राजा, राजनेता, सेनाधिकारी या सैनिक कहते हैं।

राजन्य—यह क्षत्रिय का पर्याय है। 'राजन्' पूर्वक 'यत्' प्रत्यय से यह सिद्ध होता है। प्रजाओं की रक्षा करने वाले 'राजन्य' कहलाते हैं। ये प्रजाओं की रक्षा के लिए सदा उद्यत रहते हैं।

(ग) वैश्य—'विश' से 'यत्' और 'अण्' प्रत्यय होकर 'वैश्य' पद की रचना होती है। **'विशति पण्यविद्यासु सः वैश्यः'** = जो

वाणिज्य विद्याओं में प्रविष्ट रहता है, संलग्न रहता है, उस गुण वाले को वैश्यवर्ण या वैश्य कहते हैं। आज उसे व्यापारी कहते हैं। जिसमें ये गुण नहीं वह वैश्य नहीं कहला सकता।

(घ) शूद्र—'शु अव्यय पूर्वक 'द्रु गतौ' धातु से' 'ड' प्रत्यय के योग से 'शूद्र' बनता है 'शु द्रवति इति'= जो स्वामी की आज्ञा से इधर-उधर आता-जाता है अर्थात् जो सेवा या श्रम का कार्य करता है। अथवा, 'शुच्-शोके' धातु से औणादिक 'रक्' प्रत्यय और च को द होकर शूद्र शब्द बनता है [उणादि० २.१९]। '**शोच्यां स्थितिमापन्नः**' = जो अपनी निम्न जीवन स्थिति से चिन्तायुक्त रहता है कि मैं निम्न वर्ण का क्यों रहा, उच्च वर्ण का क्यों नहीं हुआ! इस कारण चतुर्थ वर्ण का नाम 'शूद्र' है। यह 'एक-जाति' अर्थात् एक जन्म वाला (दूसरे 'विद्या जन्म' से रहित) होने से अनपढ़ या विधिपूर्वक अशिक्षित होता है। आज उसे सेवक, चाकर, परिचारक, अर्दली, श्रमिक, सर्वेंट, पीयन आदि कहते हैं। विधिवत् शिक्षित और उपर्युक्त तीन वर्णों का कार्य करने वाले शूद्र नहीं कहे जा सकते

(ङ) डॉ० अम्बेडकर का मत—डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति के श्लोक "**वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्**" (८.४१८) का अर्थ करते हुए शूद्र का '**मजदूर**' अर्थ स्वीकार किया है—

"राजा आदेश दे कि व्यापारी तथा मजदूर अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करें।" (अम्बेडकर वाड्मय, खंड ६, पृ. ६१)

डॉ० अम्बेडकर का यह सही अर्थ है। ऐसी मान्यता स्वीकार कर लेने पर 'शूद्र' शब्द को घृणास्पद मानने का कोई औचित्य नहीं।

(३.७) मनु की वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन के विधान

वैदिक अर्थात् मनु की वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि व्यक्ति को आजीवन वर्णपरिवर्तन की स्वतन्त्रता होती है। वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन हो सकता है जबकि जातिव्यवस्था में जहां जन्म हो गया, जीवनपर्यन्त वही जाति रहती है। मनु की व्यवस्था वर्णव्यवस्था थी, क्योंकि उसमें व्यक्ति को आजीवन वर्ण-परिवर्तन की स्वतन्त्रता थी। इस विषय में पहले मनुस्मृति का एक महत्त्वपूर्ण श्लोक प्रमाणरूप में उद्धृत किया जाता है जो सभी सन्देहों को दूर कर देता है—

(अ) शूद्र से ब्राह्मणादि और ब्राहमण से शूद्र आदि बनना—

शूद्रो ब्राह्मणताम्-एति, ब्राहमणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियात् जातमेवं तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च॥ (१०.६५)

अर्थात्—'ब्राह्मण के गुण, कर्म, योग्यता को ग्रहण करके शूद्र, ब्राह्मण बन जाता है और हीन कर्मों से ब्राह्मण शूद्र बन जाता है। इसी प्रकार क्षत्रियों और वैश्यों से उत्पन्न सन्तानों में भी वर्णपरिवर्तन हो जाता है।

(आ) शूद्र द्वारा उच्च वर्ण की प्राप्ति का मनुप्रोक्त विधान—

(क) श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण और श्रेष्ठाचरण का पालन करके शूद्र उच्च वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का अधिकारी बन जाता है—

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुः मृदुवागनहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥ (९.३३५)

अर्थ—तन और मन से शुद्ध-पवित्र रहने वाला, उत्कृष्टों के सान्निध्य में रहने वाला, मधुरभाषी, अहंकार से रहित, अपने से उत्तम वर्णों—वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मणों के यहां सेवाकार्य करने वाला शूद्र अपने से उत्कृष्ट=वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् वह जिस वर्ण की योग्यता अर्जित कर लेगा उसी वर्ण को धारण करने का अधिकारी बन जायेगा। (यहां जाति शब्द का अर्थ 'वर्ण' है। प्रमाण के लिए इसी अध्याय में देखिए—'मनुस्मृति में जाति शब्द वर्ण और जन्म का पर्याय' शीर्षक पृ० ९०-९१ पर)

(ख) मनुस्मृति में, उपर्युक्त सिद्धान्त को नष्ट करने के लिए इससे पहले एक श्लोक प्रक्षिप्त कर दिया है जिसमें यह दिखाया गया है कि वर्णपरिवर्तन सातवीं पीढ़ी में होता है। ऐसा विचार मनु की मान्यता के विरुद्ध है। पीढ़ियों का हिसाब संभव भी नहीं है।

वर्णपरिवर्तन के उदाहरण भी भारतीय प्राचीन इतिहास में मिलते हैं और इस सिद्धान्त की पुष्टि-परम्परा भी। मनुस्मृति के उक्त श्लोकों के भावों को यथावत् वर्णित करने वाले श्लोक महाभारत में भी उपलब्ध होते हैं। यहां उस प्रसंग की कुछ पंक्तियां उद्धृत की जा रही हैं जिनसे मनुस्मृति की परम्परा की पुष्टि होती है—

"कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद् भ्रश्यति वै द्विजः।"
"ब्राह्मण्यात् सः परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते।"

''स द्विजो वैश्यतां याति वैश्यो वा शूद्रतामियात्।''
''एभिस्तु कर्मभिर्देवि, शुभैराचरितैस्तथा।''
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्।

(महाभारत, अनुशासन पर्व अ० १४३, ७, ९, ११, २६)

अर्थात्—दुष्कर्म करने से द्विज वर्णस्थ अपने वर्णस्थान से पतित हो जाता है।......क्षत्रियों जैसे कर्म करने वाला ब्राह्मण भ्रष्ट होकर क्षत्रिय वर्ण का हो जाता है।........वैश्य वाले कर्म करने वाला द्विज वैश्य और इसी प्रकार शूद्र वर्ण का हो जाता है। हे देवि! इन अच्छे कर्मों के करने और शुभ आचरण से शूद्र, ब्राह्मणवर्ण को प्राप्त कर लेता है और वैश्य, क्षत्रिय वर्ण को। इसी प्रकार अन्य वर्णों का भी परस्पर वर्ण-परिवर्तन हो जाता है।

(ग) महाभारत का एक अन्य श्लोक जो दो स्थानों पर आया है मनुस्मृति की कर्माधारित वर्णव्यवस्था की पुष्टि करता है तथा कर्मानुसार वर्णपरिवर्तन के सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है—

शूद्रे तु यत् भवेत् लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेत् शूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥

(वनपर्व १८०.१९; शान्तिपर्व १८८.१)

अर्थात्—शूद्र में जो लक्षण या कर्म होते हैं वे ब्राह्मण में नहीं होते। ब्राह्मण के कर्म और लक्षण शूद्र में नहीं होते। यदि शूद्र में शूद्र वाले लक्षण न हों तो वह शूद्र नहीं होता और ब्राह्मण में ब्राह्मण वाले लक्षण न हों तो वह ब्राह्मण नहीं होता। अभिप्राय यह है कि लक्षणों और कर्मों के अनुसार ही व्यक्ति उस वर्ण का होता है जिसके लक्षण या कर्म वह ग्रहण कर लेता है।

(घ) यह परम्परा सूत्र-ग्रन्थों में भी मिलती है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में उच्च-निम्न वर्णपरिवर्तन का विधान किया है—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥

(२.५.१०-११)

अर्थ—निर्धारित धर्म के आचरण से निचला वर्ण उच्च वर्ण को

प्राप्त कर लेता है, उस-उस वर्ण की वैधानिक दीक्षा लेने के बाद। इसी प्रकार अधर्माचरण करने पर उच्च वर्ण निचले वर्ण में चला जाता है, आचरण के अनुसार वर्णपरिवर्तन की वैधानिक स्वीकृति या घोषणा होने के बाद।

(इ) हीन कर्मों से वर्णपतन या निम्न वर्णपरिवर्तन

(क) **उत्तमानुत्तमान् गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन्।**
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्॥ (४.२४५)

अर्थ—ब्राह्मण-वर्णस्थ व्यक्ति श्रेष्ठ-अतिश्रेष्ठ व्यक्तियों का संग करते हुए और नीच-नीचतर व्यक्तियों का संग छोड़कर अधिक श्रेष्ठ बनता जाता है। इसके विपरीत आचरण से पतित होकर वह शूद्र बन जाता है, अर्थात् ब्राह्मणत्व का बोधक श्रेष्ठाचरण होता है, जब तक श्रेष्ठाचरण है तो वह ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है। निम्न वर्ण का आचरण होने पर वही ब्राह्मण शूद्र कहलाता है।

(ख) **न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।**
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ (२.१०३)

अर्थ—जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रातःकालीन संध्या नहीं करता और जो सायंकालीन संध्या भी नहीं करता। वह शूद्र के समान है, उसको द्विजों के सभी अधिकारों या कर्त्तव्यों से बहिष्कृत कर देना चाहिए अर्थात् उसे 'शूद्र' घोषित कर देना चाहिए।

(ग) **योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।**
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ (२.१६८)

अर्थ—जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वेदाध्ययन का त्याग कर अन्य विद्याओं में ही परिश्रम करता रहता है, वह जीते-जी अपने आश्रित परिजनों के सहित शूद्रता को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि, उसका ब्राह्मणत्व प्रदान करने वाला वेदाध्ययन छूटने से उसके आश्रित परिजनों का भी छूट जाता है, अतः वह परिवार शूद्र कहलाता है।

(घ) **यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्।**
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः॥ (२.१२६)

अर्थ—'जो द्विजाति अभिवादन के उत्तर में अभिवादन करना नहीं जानता अर्थात् अभिवादन का विधिवत् उत्तर नहीं देता, बुद्धिमान् को

उसे अभिवादन नहीं करना चाहिए, क्योंकि जैसा शूद्र होता है वह वैसा ही है। अर्थात् उसको शूद्र समझना चाहिए, चाहे वह किसी भी उच्चवर्ण का हो।' इससे यह भी संकेत मिलता है कि शिक्षितों की परम्परा को न जानने वाला अशिक्षित व्यक्ति शूद्र होता है। निष्कर्ष यह है कि शूद्रत्व मुख्यतः अशिक्षा पर आधारित होता है।

(ङ) अब वर्णपतन का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण लीजिए। मनु की कर्मणा वर्णव्यवस्था में केवल वर्णपरिवर्तन और वर्णपतन ही नहीं होता था अपितु बालक या युवक वर्णव्यवस्था से बाह्य भी हो जाता था अर्थात् आर्यत्व से ही पतित हो जाता था। मनु की कर्मणा वर्णव्यवस्था में शिक्षा का बहुत महत्त्व था और उसे सर्वोच्च प्राथमिकता थी। निर्धारित आयु में उपनयन संस्कार न कराने वाला और किसी वर्ण की शिक्षा-दीक्षा न प्राप्त करने वाला युवक आर्य वर्णों से बहिष्कृत कर दिया जाता था और उसके सभी वैधानिक व्यवहार वर्जित हो जाते थे। जन्म से वर्ण मानने पर ऐसा विधान करना संभव नहीं हो सकता, अतः यह कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था की प्रक्रिया थी—

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्याः भवन्त्यार्यविगर्हिताः।। (२.३९)
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान्यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद् ब्राह्मणः सह।। (२.४०)

अर्थ—निर्धारित अधिकतम आयु में भी शिक्षाप्राप्ति के लिए उपनयन संस्कार न कराने वाले युवक सावित्रीव्रत से पतित (उपनयन के अधिकार से वंचित) हो जाते हैं। ये 'व्रात्य' आर्यों द्वारा निन्दित एवं बहिष्कृत होते हैं। कोई भी द्विज इन पतितों के साथ वैधानिक अध्ययन-अध्यापन एवं विवाह सम्बन्धों को न रखे।'

आर्य वर्णव्यवस्था से बहिष्कृत या पतित ये व्यक्ति यदि पुनः किसी वर्ण में शिक्षार्थ दीक्षित होना चाहते थे तो उसका अवसर भी उन्हें प्राप्त था। ये प्रायश्चित्त करके वर्णव्यवस्था में सम्मिलित हो सकते थे (मनु० ११.१९१-१९२, २१२-२१४)।

(ई) सवर्ण-असवर्ण जातियों में गोत्रों की एकरूपता का कारण 'वर्णपरिवर्तन'

भारत की गोत्रपद्धति नृवंश के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली

अद्‌भुत परम्परा है। इससे मूलपिता तथा मूल परिवार का ज्ञान होता है। वर्तमान में ब्राह्मण—जातियों, क्षत्रिय—जातियों, वैश्य-जातियों और दलित-जातियों में समान रूप से पाये जाने वाले गोत्र, उस ऐतिहासिक वंश—परम्परा के पुष्ट प्रमाण हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि वे सभी एक ही पिता के वंशज हैं। पहले वर्णव्यवस्था में जिसने गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर जिस वर्ण का चयन किया, वे उस वर्ण के कहलाने लगे। बाद में विभिन्न कारणों के आधार पर उनका ऊंचा-नीचा वर्णपरिवर्तन होता रहा। किसी क्षेत्र में किसी गोत्र-विशेष का व्यक्ति ब्राह्मण वर्ण में रह गया, तो कहीं क्षत्रिय, तो कहीं शूद्र कहलाया। कालक्रमानुसार जन्म के आधार पर उनकी जाति रूढ़ और स्थिर हो गयी।

आज हम देखते हैं कि सब वर्णों के गोत्र प्रायः सभी जातियों में हैं। कौशिक ब्राह्मण भी हैं, क्षत्रिय भी। कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण भी हैं, राजपूत भी, पिछड़ी जाति वाले भी। वसिष्ठ ब्राह्मण भी हैं, दलित भी। दलितों में राजपूतों और जाटों के अनेक गोत्र हैं। सिंहल-गोत्रीय क्षत्रिय भी हैं, बनिये भी। राणा, तंवर, गहलोत-गोत्रीय जाट भी हैं, राजपूत भी। राठी-गोत्रीय जन जाट भी हैं, बनिये भी। गोत्रों की यह एकरूपता सिद्ध करती है कि कभी ये लोग एक पिता के वंशज या एक वर्ण के थे। व्यवस्थाओं और परिस्थितियों ने उनको उच्च-निम्न स्थिति में ला दिया और जन्मना जातिवाद ने उसे सुस्थिर कर दिया।

(उ) डॉ० अम्बेडकर का वर्णपरिवर्तन समर्थक मत—

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी समीक्षाओं में वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन के सिद्धान्त को स्वीकार करके उसे उत्तम व्यवस्था माना है और जातिव्यवस्था से भिन्न अपितु परस्परविरोधी व्यवस्था माना है। इस विषयक डॉ० अम्बेडकर के उद्धरण पूर्व उद्‌धृत किये जा चुके हैं। यहां वर्णपरिवर्तन विषयक उनके मन्तव्यों को तथा मनुस्मृति के उन श्लोकार्थों को उद्‌धृत किया जाता है जिन्हें डॉ० अम्बेडकर ने अपने ग्रन्थों में प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया है—

(क) "अन्य समाजों के समान भारतीय समाज भी चार वर्णों में विभाजित था, ये हैं—१. ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग, २. क्षत्रिय या सैनिक वर्ग ३. वैश्य अथवा व्यापारिक वर्ग, ४. शूद्र तथा शिल्पकार और

श्रमिक वर्ग। इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि आरंभ में यह अनिवार्य रूप से वर्ग-विभाजन के अन्तर्गत व्यक्ति की दक्षता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था और इसीलिए वर्णों को व्यक्तियों के कार्य की परिवर्तनशीलता स्वीकार्य थी''

(डॉ० अम्बेडकर वाड्मय, खंड १, पृ ३०)

(ख) ''इस बात की पुष्टि के लिए परम्परा के आधार पर पर्याप्त प्रमाण हैं, जिनका उल्लेख धार्मिक साहित्य में हुआ है......... इस परम्परा के अनुसार किसी भी व्यक्ति के वर्ण का निश्चय करने का काम अधिकारियों के एक दल द्वारा किया जाता था, जिन्हें 'मनु' और 'सप्तर्षि' कहते थे। व्यक्तियों के समूह में से 'मनु' उनका चुनाव करता था, जो क्षत्रिय और वैश्य होने के योग्य होते थे और 'सप्तर्षि' उन व्यक्तियों को चुनते थे जो ब्राह्मण होने के योग्य होते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य होने के लिए 'मनु' और 'सप्तर्षियों' द्वारा व्यक्तियों का चुनाव करने के बाद बाकी व्यक्ति जो नहीं चुने जा सकते थे, वे शूद्र कहलाते थे।.......हर चौथे वर्ष अधिकारियों का नया दल नया चुनाव करने के लिए नियुक्त होता था, जिसकी पद संज्ञा वही 'मनु' और 'सप्तर्षि' होती थी। इस प्रक्रिया में यह होता था कि जो लोग पिछली बार केवल शूद्र होने के योग्य बच जाते थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने के लिए चुने गये होते थे, वे केवल शूद्र होने के योग्य होने के कारण रह जाते थे। इस प्रकार वर्ण के व्यक्ति बदलते रहते थे।''(वही, खंड ७, पृ० १७०)

(ग) ''जिस प्रकार कोई शूद्र ब्राह्मणत्व को और कोई ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त होता है, उसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न शूद्र भी क्षत्रिय और वैश्यत्व को प्राप्त होता है।'' [मनु० १०.६५] (वही, खंड १३, पृ० ८५)

(घ) ''प्रत्येक शूद्र जो शुचिपूर्ण है, जो अपने से उत्कृष्टों का सेवक है, मृदुभाषी है, अहंकाररहित है, और सदा ब्राह्मणों के आश्रित रहता है, वह उच्चतर जाति प्राप्त करता है।'' [मनु० ९.३३५] (वही, खंड ९, पृ० ११७)

(ङ) ''बड़ों के साथ सम्बन्ध करता हुआ और नीचों का त्याग करता हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठता को पाता है। इसके विरुद्ध आचरण करता हुआ शूद्रता को पाता है।'' [मनु० ४.२४५] (वही, खंड ६, पृ० १४४)

(च) "लेकिन जो प्रातःकाल इसका खड़े होकर और संध्या समय में बैठकर पाठ नहीं करता है, उसे शूद्र समझकर प्रत्येक द्विज कर्म से बहिष्कृत कर देना चाहिए।" [मनु० २.१०३] (वही, खंड ७, पृ० २४५)

(छ) "कोई द्विज यदि वेदाध्ययन नहीं करता है और अन्य (सांसारिक ज्ञान) के अध्ययन में रत रहता है तो वह शीघ्र ही, अपितु अपने जीवन काल में ही शूद्र की स्थिति प्राप्त करता है और उसके बाद उसकी सन्तति भी (मनुस्मृति २.१६८)। (वही, खंड ८, पृ० २०९, २५६ तथा अन्य)

(ऊ) अनार्यों को आर्य बनाने सम्बन्धी डॉ० अम्बेडकर का मत—

(क) "आर्यों ने हमेशा अनार्यों को आर्य बनाने का प्रयत्न किया अर्थात् उन्हें आर्य संस्कृति का अनुयायी बनाने का प्रयत्न किया।" (वही, खंड ७, पृ. ३२६)

(ख) "आर्य न केवल अपने ढंग से इच्छुक अनार्यों को अपनी जीवनपद्धति में परिवर्तित कर रहे थे, जो आर्यों की यज्ञ-संस्कृति और चातुर्वर्ण्य सिद्धान्त और यहां तक कि वे उनके वेदों तक के विरोधी थे।" (वही, खंड ७, पृ० ३२७)

इन श्लोकार्थों को पढ़कर कौन पाठक यह मानने के लिए विवश नहीं होगा कि 'डॉ. अम्बेडकर मनुस्मृति में वर्णपरिवर्तन का विधान मानते हैं।' यदि वे अन्यत्र अपने ही इन कथनों के विरुद्ध कुछ कहते हैं तो इसका अभिप्राय है कि उनके लेखन में परम्परविरोध है। उक्त श्लोकार्थ डॉ० अम्बेडकर ने प्रमाण के रूप उद्धृत किये हैं। किसी भी लेखक के द्वारा किसी संदर्भ को प्रमाण रूप में उद्धृत करने का भाव यह होता है कि लेखक उनको प्रामाणिक मानता है। यहां मनु के वर्णपरिवर्तन के सिद्धान्त को भी डॉ० अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया है। वर्णपरिवर्तन का निर्दोष सिद्धान्त है, स्वतन्त्रता और उदारता का सिद्धान्त है, जो सर्वथा आपत्तिरहित है। यह जातिव्यवस्था में संभव नहीं होता। फिर भी मनु का विरोध क्यों? इसका उत्तर उपर्युक्त संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में डॉ० अम्बेडकर को देना चाहिए था, अथवा अब उनके अनुयायियों को देना चाहिए।

(३.८) वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन के ऐतिहासिक उदाहरण

भारतीय इतिहास में वर्णपरिवर्तन या वर्णपतन के सैंकड़ों

ऐतिहासिक उदाहरण मिलते हैं जिनसे वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन की स्वतन्त्रता तथा वर्णपतन की दण्डात्मकता का परिज्ञान होता है। यहां कुछ प्रमुख उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(अ) व्यक्तिगत वर्णपरिवर्तन के ऐतिहासिक उदाहरण

१. मनुस्मृति के प्रवक्ता मनु स्वायंभुव के कुल में भी वर्ण-परिवर्तन हुए हैं। ब्राह्मण वर्णधारी महर्षि ब्रह्मा का पुत्र मनु स्वायंभुव स्वयं भी राजा बनने के कारण, ब्राह्मण से क्षत्रिय बना। मनुस्मृति के आद्यरचयिता इसी मनु स्वायंभुव के बड़े पुत्र राजा प्रियव्रत के दस पुत्र थे जो जन्म से क्षत्रिय थे। उनमें से सात क्षत्रिय राजा बने। तीन ने ब्राह्मण वर्ण को स्वीकार किया और तपस्वी बने। उनके नाम थे— महावीर, कवि और सवन (भागवतपुराण अ० ५)।

२. दासी का पुत्र 'कवष ऐलूष' शूद्र परिवार का था। वह विद्वान् ब्राह्मण बनके मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहलाया। इस ऋषि द्वारा अर्थदर्शन किये गये सूक्त आज भी ऋग्वेद के दशम मण्डल में (सूक्त ३१-३३) मिलते हैं, जिन पर ऋषि के रूप में इसी का नाम अंकित है। (ऐतरेय ब्राह्मण २.१९; सांख्यायन ब्राह्मण १२.१-३)

३. इसी प्रकार शूद्रा का पुत्र कहा जाने वाला वत्स काण्व भी पढ़-लिख कर ऋग्वेद के मन्त्रों का अर्थद्रष्टा ऋषि बना। (पंच० ब्रा० ८.६.१; १४.६.६)

४. सत्यकाम जाबाल अज्ञात कुल का था। वह अपनी सत्यवादिता एवं प्रखर बुद्धि के कारण महान् और प्रसिद्ध ऋषि बना। (बृहदारण्यक उप० ४.१.६; छान्दोग्य उप० ४.४-६; पंचविश ब्राह्मण ८.६.१)।

५. निम्न कुल—परिवार में उत्पन्न हुआ मातंग अपनी विद्वत्ता के कारण ब्राह्मण एवं ऋषि बना। (महाभारत, अनु० ३.१९)

६. (कुछ कथाओं के अनुसार) वाल्मीकि निम्न कुल में उत्पन्न हुए, किन्तु वे ब्रह्मर्षि और महाकवि बने। (स्कंद पुराण, वै० २१)।

७. विदुर दासी के पुत्र थे। वे महात्मा बने और राजा धृतराष्ट्र के महामन्त्री रहे। (महाभारत, आदिपर्व १००, १०१, १३५-१३७ अ०)

८. पांचाल-राजा भर्म्याश्व का एक पुत्र मुद्गल राजा था, जो क्षत्रिय था। बाद में यह और इसके वंशज ब्राह्मण बन गये। इसके

वंशज ब्राह्मण आज भी 'मौद्गल ब्राह्मण' कहलाते हैं (भागवतपुराण-९.२१; वायु पुराण ९९.१९८)

९. कान्यकुब्ज के राजा विश्वरथ राज्य को त्याग कर क्षत्रिय से ब्राह्मण बने और फिर ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया और ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके अनेक पुत्रों में से कुछ क्षत्रिय ही रहे तो कुछ ब्राह्मण बन गये, जो आज कौशिक ब्राह्मण कहाते हैं। (वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड ५१-५६ अध्याय)।

१०. इसी प्रकार दीर्घतमा नामक ऋषि के कई पुत्र थे, उनमें से कुछ ब्राह्मण बने तो कुछ क्षत्रिय। उनके वंशजों को 'वालेय ब्राह्मण' और 'वालेय क्षत्रिय' कहा जाता है। (विष्णुपुराण ४.१८; भागवत पुराण ९.२०)।

११. चक्रवर्ती क्षत्रिय राजा मनु वैवस्वत (सातवां मनु) का नाभानेदिष्ट नामक पुत्र ब्राह्मण बना (ऐतरेय ब्राह्मण ५.१४)। उसके लिए 'ब्राह्मण' संबोधन प्राप्त होता है (महाभारत १.७५.३)। यह ऋग्वेद के १.६१-६२ सूक्तों का मन्त्रद्रष्टा ऋषि है (ऐतरेय ब्राह्मण ५. १४)।

१२. क्षत्रिय राजा मनु के इसी पुत्र का पुत्र नाभाग (किसी के मतानुसार दिष्ट राजा का पुत्र) वैश्य बना (भागवत०- ९.२.२३, २८; मार्कण्डेय० १२८.३२; विष्णु० ४.१.१९)। मुनि प्रभाति ने इसे पुनः क्षत्रिय वर्ण की दीक्षा दी थी।

१३. क्षत्रिय मनु वैवस्वत के पुत्र नरिष्यन्त के वंश में उत्पन्न देवदत्त का एक पुत्र अग्निवेश्य हुआ। यह 'कनीन' और 'जातूकर्ण्य' नामक ब्राह्मण ऋषि प्रसिद्ध हुआ। ब्राह्मणों में 'आग्निवेश्य' वंशीय ब्राह्मण इसी के वंशज हैं। (भागवत०-९.२.१९; ब्रह्माण्ड० ३.४७.४९)

१४. वैवस्वत मनु के सूर्यवंश प्रवर्तक ज्येष्ठपुत्र राजा इक्ष्वाकु के वंश में पच्चीसवीं पीढ़ी में युवनाश्व राजा का 'हरित' नामक पुत्र हुआ। यह क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गया। 'हारित' ब्राह्मणों का वंश इसी से प्रचलित हुआ (विष्णु० ४.३.५; ब्रह्माण्ड० ४.१.८५)।

१५. चन्द्रवंशी चक्रवर्ती सम्राट् ययाति के दूसरे पुत्र पुरु के वंश में अप्रतिरथ राजा का पुत्र कण्व हुआ। उसका पुत्र मेधातिथि (दूसरा नाम प्रस्कण्व) ब्राह्मण बना। 'काण्वायन' ब्राह्मण इसी मेधातिथि के वंशज हैं। ये सभी ब्राह्मण वर्ण में दीक्षित हो गये थे (विष्णु० ४.१९.२,२०; भागवत० ९.२०.१)

१६. वीतहव्य नामक एक प्रसिद्ध राजा ब्राह्मण बन गया था। भृगु ऋषि ने इस राजा को ब्राह्मणत्व की दीक्षा दी थी (महाभारत, अनुशासन पर्व, अ० ३०.५७-५८)

१७. राजा प्रतीप के तीन पुत्र हुए—देवापि, शान्तनु और महारथी। इनमें से देवापि ब्राह्मण बन गया और शान्तनु तथा महारथी (बाल्हीक) क्षत्रिय राजा बने। (महाभारत, आदि० ९४.६१; विष्णु० ४.२२.७; भागवत० ९.२२.१४-१७)।

ऐसे वर्णपरिवर्तन के उदाहरणों से प्राचीन भारतीय इतिहास भरा पड़ा है। ये उदाहरण मनु की और वैदिक वर्णव्यवस्था की पुष्टि करते हैं कि वह कर्म पर आधारित थी, जन्म पर नहीं।

(आ) वर्णपतन तथा वर्णबहिष्कार के उदाहरण

(क) मर्यादापुरुषोत्तम राम के पूर्वज सम्राट् रघु का 'प्रवृद्ध' नामक एक पुत्र था। नीच कर्मों के कारण उसे 'राक्षस' घोषित किया गया था और इस प्रकार वह वर्णों से पतित हो गया था।

(ख) राम के ही पूर्वज सगर का एक पुत्र 'असमंजस्' था। उसके अन्यायपूर्ण कर्मों के कारण उसे क्षत्रिय से शूद्र घोषित करके राज्याधिकार से वंचित कर राज्य से बहिष्कृत कर दिया था। (भागवतपुराण ६.८.१४-१९; महाभारत, वनपर्व १०७)।

(ग) लंका का राजा रावण पुलस्त्य ऋषि के वंश में उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मणोपेत क्षत्रिय था। अन्यायी और दुराचारी होने के कारण उसे 'राक्षस' घोषित किया गया। (वाल्मीकि-रामायण, बाल एवं उत्तरकांड)

(घ) सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रियों के मूल पुरुष सातवें मनु वैवस्वत, जो एक चक्रवर्ती राजा थे, उनके पुत्र पृषध्र से किसी कारण गोवध हो गया। वैदिक काल में गोवध महापाप माना जाता था। इस पाप के दण्डस्वरूप उसको शूद्र घोषित कर दिया गया था। (भागवत० ८.१३.३,९.१.१२, २.३-१४; वायु० ६४.३०, ८५.४, ८६.१; विष्णु० ३.१.३४, ४.१.७, १७ आदि)।

(इ) समुदायों के वर्णपरिवर्तन एवं वर्णबहिष्कार के उदाहरण

(क) व्यक्तिगत उदाहरणों के अतिरिक्त, इतिहास में पूरी जातियों

का अथवा जाति के पर्याप्त भाग का वर्णपरिवर्तन भी मिलता है। महाभारत में और मनुस्मृति में कुछ पाठभेद के साथ पाये जाने वाले निम्न-उद्धृत श्लोकों से ज्ञात होता है कि निम्न जातियां पहले क्षत्रिय थीं किन्तु अपने क्षत्रिय-कर्त्तव्यों के त्याग के कारण और ब्राह्मणों द्वारा बताये शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त न करने के कारण वे शूद्रकोटि में अथवा वर्णबाह्य परिगणित हो गयीं—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजाः यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः॥

(मनु० १०.४३-४४)

अर्थात्—अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का त्याग कर देने के कारण और फिर ब्राह्मणों द्वारा बताये प्रायश्चित्तों को न करने के कारण धीरे-धीरे ये क्षत्रिय जातियां शूद्र कहलायीं- पौण्ड्रक, औड्र, द्रविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खश॥ महाभारत अनु० ३५.१७-१८ में इनके अतिरिक्त मेकल, लाट, कान्वशिरा, शौण्डिक, दार्व, चौर, शबर, बर्बर जातियों का भी उल्लेख है।

(ख) बाद तक भी वर्णपरिवर्तन के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। जे.विलसन और एच.एल. रोज के अनुसार राजपूताना, सिन्ध और गुजरात के पोखरना या पुष्करण ब्राह्मण और उत्तरप्रदेश में उन्नाव जिला के आमताड़ा के पाठक और महावर राजपूत वर्णपरिवर्तन से निम्न जाति से ऊंची जाति के बने (देखिए, हिन्दी विश्वकोश भाग ४, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी)

(ई) डॉ० अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत जातीय वर्णपरिवर्तन के उदाहरण

(क) "पतित जातियों में मनु ने उन्हें सम्मिलित किया है जिन क्षत्रियों ने आर्य अनुष्ठान त्याग दिए थे, जो शूद्र बन गए थे और ब्राह्मण पुरोहित जिनके यहां नहीं आते थे। मनु ने इनका उल्लेख इस प्रकार किया है—पौड्रक, चोल, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरद।" (अंबेडकरवाङ्मय, खंड ८, पृ० २१८)

(ख) ''दस्यु आर्य सम्प्रदाय के सदस्य थे किन्तु उन्हें कुछ ऐसी धारणाओं और आस्थाओं का विरोध करने के कारण 'आर्य' संज्ञा से रहित कर दिया गया, जो आर्यसंस्कृति का आवश्यक अंग थी।'' (वही, खंड ७, पृ० ३२१)

(ग) ''सेन राजाओं के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। डॉ० भंडारकर का कहना है कि ये सब ब्राह्मण थे, जिन्होंने क्षत्रियों के सैनिक व्यवसाय को अपना लिया था।'' (डॉ० अम्बेडकर वाङ्मय खंड ७, पृ० १०६)

डॉ० अम्बेडकर मनु के उदाहरणों तथा ऐतिहासिक उदाहरणों द्वारा समुदाय या जाति के वर्णपरिवर्तन को ऐतिहासिक सत्य स्वीकार करते हैं। ये उदाहरण जन्मना जातिवादी व्यवस्था के विरुद्ध हैं। स्पष्ट है कि मनु की व्यवस्था जातिवादी नहीं थी। फिर मनु पर जातिवादी होने का निराधार आक्षेप लगाकर उनका विरोध क्यों?

(३.९) वर्णव्यवस्था का ह्रास और जातिवाद का उद्भव काल

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से लेकर महाभारत (गीता) पर्यन्त वैदिक कर्माधारित वर्णव्यवस्था चलती रही है। गीता में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

''चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः'' [४।१३]

अर्थात्—'गुण-कर्म-विभाग के अनुसार चातुर्वर्ण्यव्यवस्था का निर्माण किया गया है। जन्म के अनुसार नहीं।' इसका अभिप्राय यह हुआ कि तब तक वर्णों का निर्धारक तत्त्व 'जन्म' नहीं था। वर्णव्यवस्था के अर्न्तगत रहकर भारत ने विद्या, बुद्धि, बल में अद्भुत उन्नति की थी; किन्तु महाभारत के विशाल युद्ध ने भारत के सारे ढांचे को चरमरा दिया। सारी सामाजिक व्यवस्थाओं में अस्त-व्यस्त स्थिति बन गई। धीरे-धीरे लोगों में अकर्मण्यता, स्वार्थ एवं लोभ के भावों ने स्थान बना लिया। कर्म की प्रवृत्ति नष्ट हो गई किन्तु सुविधा-सम्मान की प्रवृत्ति बनी रही। इस प्रकार धीरे-धीरे वर्णव्यवस्था में विकार आने लगा और जन्म को महत्त्व दिये जाने के कारण जातिव्यवस्था का उद्भव हुआ। पहले वर्णों में जन्म का महत्त्व प्रारम्भ हुआ फिर वर्ण-संकरता के नाम पर जन्माधारित जातियों का निर्माण हुआ। इसी प्रकार जातियों में उपजातियों का विकास हुआ और भारत में पूरा जातितन्त्र फैल गया। इस निर्माण के साथ जातिगत असमानता का भाव भी उभरने

लगा। उसी भाव के कारण अन्तर-वर्ण विवाह और सहभोज भी समाप्त होते गये। लेकिन फिर भी व्यवहार में लचीलापन था।

ऐसा प्रतीत होता है कि ईसा से १८५ वर्ष पूर्व पुष्यमित्र शुङ्ग नामक ब्राह्मण राजा के काल में, जो अपने राजा मौर्य सम्राट् बृहद्रथ की हत्या करके, वर्णव्यवस्था के नियमों को तोड़कर राजा बन बैठा था, राज्य की ओर से जातिव्यवस्था को बढ़ावा दिया गया, जन्माधारित भावनाओं को सुदृढ़ बनाया गया, जातिवाद का सुनियोजित रूप से प्रसार किया गया। तभी ब्राह्मणों को जन्म के आधार पर महिमामण्डित और सर्वाधिकार-युक्त घोषित किया गया तथा शूद्र आदि निम्न वर्गों पर अनेक अंकुश लगाये गये और उनके विरुद्ध कठोर नियम लागू किये गये।

यह भी अनुमान सही प्रतीत हाता है कि उसी काल में प्रायः समस्त वैदिक भारतीय वाङ्मय में सुनियोजित पद्धति से जातिवादी प्रक्षेप किये गये जिनमें ब्राह्मणों की पक्षपातपूर्ण पक्षधरता और शूद्रों की अन्यायपूर्ण उपेक्षा प्रमुख विषय रहे। इस प्रकार धीरे-धीरे जातिवाद का जाल फैलता चला गया। ब्राह्मणों का वर्चस्व एवं धार्मिक एकाधिकार जातिवाद के प्रचार-प्रसार में सबसे सशक्त कारण बना। जब से जातिवाद का उदय हुआ तब से भारत का भाग्य सो गया क्योंकि जातिवाद ने भारत का चहुंमुखी विनाश किया है और कर रहा है।

लगभग १४० वर्ष पूर्व आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने जब भारतीय समाज की दयनीय स्थिति को देखा तो उन्होंने वैदिक वर्णव्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को जनता के सामने स्पष्ट किया और मनु की मान्यताओं को सही अर्थ में समझाते हुए बताया कि 'वर्ण' कर्म से निर्धारित होते हैं, जन्म से नहीं; जातिवादी व्यवस्था वैदिक व्यवस्था नहीं है, आदि। उन्होंने मनुष्यमात्र के लिए शिक्षा का अधिकार घोषित किया और स्त्रियों तथा दलितों को समानशिक्षा और समानता का अधिकार घोषित करके एक नयी क्रान्ति का सूत्रपात किया। आज के ऊंच-नीच रहित समाज के निर्माण में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने वैदिक प्राचीन वर्णव्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को हमारे सामने रख कर जहां नये समाज का निर्माण किया, वहीं प्राचीन संस्कृति का भी पुनरुद्धार किया।

(अ) डॉ० अम्बेडकर का जाति उद्‌भव सम्बन्धी मत—

डॉ० अम्बेडकर बुद्ध (५५० ईसा पूर्व) के लगभग जन्मना जातिव्यवस्था का उद्‌भव मानते हैं। यद्यपि तब तक व्यवहार में लचीलापन था किन्तु असमानता का भाव आ चुका था। जातिवादी कठोरता का समय वे पुष्यमित्र शुङ्ग (१८५ ई०पू०) नामक ब्राह्मण राजा के काल को मानते हैं।

मनु की वर्णव्यवस्था महाभारत काल तक प्रचलित थी, इसके प्रमाण और उदाहरण महाभारत और गीता तक में मिलते हैं। डॉ० अम्बेडकर ने शान्तनु क्षत्रिय और मत्स्यगंधा शूद्र-स्त्री के विवाह का उदाहरण देकर इस तथ्य को स्वीकार किया है (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० १७५, १९५)। उससे भी आगे बौद्ध काल तक भी अन्तर-जातीय विवाह और अन्तर-जातीय भोजन का प्रचलित होना उन्होंने स्वीकार किया है कि "जातिगत असमानता तब तक उभर गयी थी" (वही, पृ० ७५)। डॉ० अम्बेडकर यह भी मानते हैं कि "तब व्यवहार में लचीलापन था। आज की तरह कठोरता नहीं थी" (वही, पृ० ७५)। उनके मत ध्यानपूर्वक पठनीय हैं—

(क) "बौद्धधर्म-समय में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था एक उदार व्यवस्था थी और उसमें गुंजाइश थी.........किसी भी वर्ण का पुरुष विधिपूर्वक दूसरे वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता था। इस दृष्टिकोण की पुष्टि में अनेक दृष्टान्त उपलब्ध हैं" (वही, खंड ७, पृ० १७५)।

(ख) "इन दो नियमों ने जातिप्रथा को जन्म दिया। अन्तर-विवाह और सहभोज का निषेध दो स्तंभ हैं, जिन पर जातिप्रथा टिकी हुई है" (वही, खंड ७, पृ० १७८)।

(ग) "वास्तव में जातिप्रथा का जन्म भारत की विभिन्न प्रजातियों के रक्त और संस्कृति के आपस में मिलने के बहुत बाद में हुआ"(वही, खंड १, पृ० ६७)

(घ) "बुद्ध ने जातिप्रथा की निंदा की। जातिप्रथा उस समय (५५० ई०पू०) वर्तमान रूप में विद्यमान नहीं थी। अन्तर्जातीय भोजन और अन्तर्जातीय विवाह पर निषेध नहीं था। तब व्यवहार में लचीलापन था। आज की तरह कठोरता नहीं थी। किन्तु असमानता का सिद्धान्त, जो कि जातिप्रथा का आधार है, उस समय सुस्थापित हो गया था और इसी सिद्धान्त के विरुद्ध बुद्ध ने एक निश्चयात्मक

और कठोर संघर्ष छेड़ा।'' (वही, खंड ७, पृ० ७५)

(ङ) ''जिज्ञासु सहज ही यह पूछेगा कि (१८५ ई० पूर्व पुष्यमित्र की क्रान्ति के बाद) ब्राह्मणवाद ने विजयी होने के बाद क्या किया ?.........'' (३) इसने वर्ण को जाति में बदल दिया।.........(६) इसने वर्ण-असमानता की प्रणाली को थोप दिया और इसने सामाजिक व्यवस्था को कानूनी और कट्टर बना दिया, जो पहले पारंपरिक और परिवर्तनशील थी।'' (वही खंड ७, पृ० १५७)

(च) ''ब्राह्मणवाद अपनी विजय के बाद मुख्य रूप से जिस कार्य में जुट गया, वह था वर्ण को जाति में बदलने का कार्य, जो बड़ा ही विशाल और स्वार्थपूर्ण था।'' (वही खंड ७, पृ० १६८)

(छ) डॉ० अम्बेडकर का स्पष्ट मानना है कि ''तर्क में यह सिद्धान्त है कि ब्राह्मणों ने जाति-संरचना की।'' (वही, खंड १, पृ. २९)

(ज) ''उपनयन के मामले में ब्राह्मणवाद ने जो मुख्य परिवर्तन किया, वह था उपनयन कराने का अधिकार गुरु से लेकर पिता को देना। इसका परिणाम यह हुआ कि चूंकि पिता को अपने पुत्र का उपनयन करने का अधिकार था, इसलिए वह अपने बालक को अपना वर्ण देने लगा और इस प्रकार उसे वंशानुगत बना दिया। इस प्रकार वर्ण निर्धारित करने का अधिकार गुरु से छीनकर उसे पिता को सौंपकर ब्राह्मणवाद ने वर्ण को जाति में बदल दिया।'' (वही, खंड ७, पृ० १७२)

इससे यह निष्कर्ष निकला कि बौद्धकाल तक भी जाति-व्यवस्था नहीं पनप पायी थी। तब तक प्राचीन वर्णव्यवस्था का ही समाज पर अधिक प्रभाव था। इससे एक निष्कर्ष स्पष्ट रूप से सामने आता है कि हजारों पीढ़ी पूर्व जो आदिपुरुष मनु हुए हैं, उनके समय में जाति-पांति व्यवस्था का नामो-निशान भी नहीं था। उस समय विशुद्ध गुण-कर्म पर आधारित वैदिक वर्ण-व्यवस्था थी, जिसकी डॉ. अम्बेडकर ने गत उद्धरणों में प्रशंसा की है। अतः मनु पर जाति-पांति, ऊंच-नीच, छूत-अछूत आदि का आरोप किंचित् मात्र भी नहीं बनता। फिर भी मनु का विरोध क्यों?

(३.१०) जन्मना जातिवाद : वर्णव्यवस्था का विकृत रूप

यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि जन्मना जातिव्यवस्था

वर्णव्यवस्था से विकसित व्यवस्था नहीं है अपितु उसकी विकृत व्यवस्था है। इसको मनु स्वायम्भुव के साथ कदापि नहीं जोड़ा जा सकता। यह बताया जा चुका है कि वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था परस्परविरोधी व्यवस्थाएं हैं। एक की उपस्थिति में दूसरी नहीं टिक सकती। इनके अन्तर्निहित अर्थभेद को समझकर इनके मौलिक अन्तर को आसानी से समझा जा सकता है। वर्णव्यवस्था में वर्ण प्रमुख है और जातिव्यवस्था में जाति अर्थात् 'जन्म' प्रमुख है। जिन्होंने इनका समानार्थ में प्रयोग किया है उन्होंने स्वयं को और पाठकों को भ्रान्त कर दिया। 'वर्ण' शब्द 'वृञ्-वरणे' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-'जिसको स्वेच्छा से वरण किया जाये वह समुदाय'। निरुक्त में आचार्य यास्क ने 'वर्ण' शब्द के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

''**वर्णःवृणोतेः**''(२.१४)=स्वेच्छा से वरण करने से 'वर्ण' कहलाता है।

वैदिक वर्णव्यवस्था में समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार समुदायों में व्यवस्थित किया गया था। जब तक गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर व्यक्ति इन समुदायों का वरण करते रहे, तब तक वह वर्णव्यवस्था कहलायी। जब अकर्मण्यता और स्वार्थवश जन्म से ब्राह्मण, शूद्र आदि माने जान लगे तो वह व्यवस्था विकृत होकर जातिव्यवस्था बन गयी। इस प्रकार जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था का विकास नहीं, अपितु विकार है। विकृत व्यवस्था का दोष मनु को नहीं दिया जा सकता। मनु न तो काल की दृष्टि से, न व्यवस्था की दृष्टि से जाति-व्यवस्था के निर्माता माने जा सकते हैं। जाति का निर्माता तो मनु से बहुत परवर्ती अर्थात् महाभारत काल के बाद का समाज है। वही मनुस्मृति में जातिवादी प्रक्षेप करने का उत्तरदायी है।

(अ) डॉ० अम्बेडकर का मत—

डॉ० अम्बेडकर ने निम्नलिखित उल्लेखों में जातिव्यवस्था को वर्णव्यवस्था का विकृत या भ्रष्ट रूप माना है, जो बिल्कुल सही मूल्यांकन है। जो यह कहा जाता है कि जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था से विकसित हुई है, यह सरासर गलत है क्योंकि दोनों परस्परविरोधी व्यवस्थाएं हैं। डॉ० अम्बेडकर विकास की धारणा को बकवास मानते हुए लिखते हैं—

(क) ''कहा जाता है कि जाति, वर्ण-व्यवस्था का विस्तार है। बाद में **मैं बताऊंगा कि यह बकवास है। जाति वर्ण का विकृत स्वरूप है।** यह विपरीत दिशा में प्रसार है। **जात-पात ने वर्ण-व्यवस्था को पूरी तरह विकृत कर दिया है।**'' (वही, खंड ६, पृ० १८१)

(ख) ''जातिप्रथा, चातुर्वर्ण्य का, जो कि हिन्दू आदर्श है, **एक भ्रष्ट रूप है।**'' (वही, खंड १, पृ० २६३)

(ग) ''अगर मूल **वर्णपद्धति का यह विकृतीकरण** केवल सामाजिक व्यवहार तक सीमित रहता, तब तक तो सहन हो सकता था। लेकिन ब्राह्मण धर्म इतना कर चुकने के बाद भी संतुष्ट नहीं रहा। उसने **इस चातुर्वर्ण्य पद्धति के परिवर्तित तथा विकृत रूप** को कानून बना देना चाहा।'' (वही, खंड ७, पृ० २१६)

(आ) मनु जातिनिर्माता नहीं : डॉ० अम्बेडकर का मत—

कभी-कभी मनुष्य के हृदय से सत्य स्वयं निकल पड़ता है। डॉ० अम्बेडकर के हृदय से भी ये निष्पक्ष शब्द एक समय निकल ही पड़े—

(क) ''एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जातिप्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी।''

(डॉ० अम्बेडकर वाङ्मय, खंड १, पृ० २९)

(ख) कदाचित् मनु जाति के निर्माण के लिए जिम्मेदार न हो, परन्तु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश दिया है। वर्णव्यवस्था जाति की जननी है और इस अर्थ में मनु जातिव्यवस्था का जनक न भी हो, परन्तु उसके पूर्वज होने का उस पर निश्चित ही आरोप लगाया जा सकता है।'' (वही, खंड ६, पृ० ४३)

कोई कितना भी आग्रह करे, किन्तु यह निश्चित है कि डॉ० अम्बेडकर ने उक्त वाक्य लिखकर किसी एक मनु को ही नहीं, अपितु सभी मनुओं को जाति-व्यवस्था के निर्माता के आरोप से सदा-सदा के लिए मुक्त कर दिया है। इसके बाद जातिवाद के नाम पर मनु का विरोध करने का कोई औचित्य ही नहीं बनता।

(३.११) वर्णव्यवस्था की वर्तमान में प्रासंगिकता

इस युग में वर्णव्यवस्था की प्रासंगिकता पर बार-बार चर्चा उठती है। साथ ही यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि क्या वर्तमान में

वर्णव्यवस्था लागू हो सकती है? इसका उत्तर यह है कि यदि कोई शासनतन्त्र इसमें रुचि ले तो हो सकती है। जैसे मुस्लिम देशों में शरीयत प्रणाली का शासन आज भी लागू कर दिया जाता है। वर्णव्यवस्था प्रणाली तो बहुत ही मनोवैज्ञानिक और समाज-हितकारी व्यवस्था है। इससे समाज की निश्चय ही योजनाबद्ध रूप से उन्नति होती रही है और हो सकती है। प्राचीन काल में भारत जो विद्या, धन और बल में विश्व में सर्वोपरि था, वह इसी वैदिक वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत रहकर था। महर्षि मनु के समय यह देश 'विश्वगुरु' था और अन्य देशों के जन यहां शिक्षा प्राप्त करने आते थे—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (२.२०)

अर्थ—समस्त पृथिवी के मनुष्य आयें और इस भारतभू पर उत्पन्न विद्वान् एवं सदाचारी ब्राह्मणों के समीप रहकर अपने-अपने योग्य कर्त्तव्यों-व्यवसायों की शिक्षा प्राप्त करें।

उस समय यह देश न केवल विद्या में 'विश्वगुरु' था अपितु धन-ऐश्वर्य में 'स्वर्णभूमि' और 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। बल-पराक्रम में अजेय था। कभी इसकी ओर आंख उठाकर देखने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। यह व्यवस्था आदिपुरुष ब्रह्मा से लेकर महाभारत काल के बाद तक रही। इसी व्यवस्था में रहकर ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि जैसे विद्याविशेषज्ञ ऋषि हुए। स्वायम्भुव मनु, वैवस्वत मनु, जनक, अश्वपति जैसे राजर्षि; मय, त्वष्टा और विश्वकर्मा जैसे वास्तुकार; नल, नील जैसे सेतुविशेषज्ञ; वाल्मीकि, व्यास, कालिदास जैसे महाकवि; चरक, सुश्रुत, धन्वंतरि, वाग्भट्ट जैसे आयुर्वेदज्ञ; राम, कृष्ण जैसे पुरुषोत्तम; अर्जुन, कर्ण जैसे धनुर्धारी; वीर हनुमान जैसे शस्त्र और शास्त्रनिपुण, ऋषि भारद्वाज जैसे विमानविद्या विशेषज्ञ; आर्यभट्ट जैसे खगोलविद्, षड्दर्शनकारों जैसे अद्भुत चिन्तक उत्पन्न हुए थे।

देश का सर्वतोमुखी पतन तो तब हुआ जब यहाँ जन्मना जातिवाद का बोलबाला हो गया और अधिकांश समाज अज्ञानी हो गया और जातियों में विभाजित हो गया। इस जातिवाद को कर्मणा व्यवस्था की भावना ही मिटा सकती है। मैं तो इस बात को बल देकर कहना चाहूंगा कि जातिवादी व्यवस्था न तो वैदिक व्यवस्था है और न आर्यों

की व्यवस्था। स्वयं को आर्य या वैदिक कहने वाले व्यक्तियों को या तो जन्मना जाति-पांति, ऊंच-नीच, छूआछूत को छोड़ देना चाहिये अथवा स्वयं को आर्य या वैदिक कहना छोड़ देना चाहिये। जब से ये भावनाएं रही हैं देश-जाति की हानि ही हुई है, और जब तक रहेंगी और अधिक हानि होती रहेगी। इनको छोड़ने पर ही वास्तविक एकता और विकास हो सकेगा।

(३.१२) मनु की वर्णव्यवस्था की विशेषताएं

वैदिक वर्णव्यवस्था एक मनोवैज्ञानिक एवं समाज-हितकारी व्यवस्था थी। जैसा कि महर्षि मनु ने (१.३१, ८७-९१ में) स्वयं कहा है, वह निश्चय ही समाज को सुरक्षित और व्यवस्थित करके उसकी प्रगति और उन्नति करने वाली व्यवस्था है। उसकी विशेषताएं थीं -

१. **मनोवैज्ञानिक आधार**—वर्णव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों, रुचियों, योग्यताओं का और तदनुसार प्रशिक्षण का ध्यान रखा गया है। प्रत्येक मनुष्य में ये भिन्नताएं स्वाभाविक हैं। प्रत्येक को अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के आधार पर कार्यचयन का अवसर प्रदान किया गया है। इसमें महाविद्वान् से लेकर अनपढ़ तक, सबको कार्य का अवसर प्राप्त है। एक के कार्य में दूसरे के हस्तक्षेप की अनुमति नहीं है।

२. **कार्यसिद्धान्त का समान महत्त्व**—मनुस्मृति की व्यवस्था ऐसे कार्यसिद्धान्त पर आधारित है जिसमें चारों वर्णों के कार्यों का समान और अनिवार्य महत्त्व है। जैसे शरीर के लिए मुख, बाहु, उदर, पैर सबका समान महत्त्व है और किसी एक के बिना शरीर अपंग हो जाता है, उसी प्रकार समाजरूपी पुरुष के लिए चारों वर्णों का महत्त्व है। किसी एक के बिना वह अपंग है। अतः चारों वर्ण अपने कार्यों से समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। सबका कार्य अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण है।

३. **शक्ति का विकेन्द्रीकरण एवं संतुलन**—मनुस्मृति में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण करके, सभी वर्णों में शक्तियों को बांटकर समाज में शक्ति-संतुलन स्थापित किया गया है। सभी वर्णों की शक्तियां और अधिकार सुनिश्चित हैं। वर्णव्यवस्था में किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के पास असीमित शक्ति का संग्रह नहीं हो सकता। विविध शक्तियों का एक स्थान पर संग्रह होना ही समाज में

असन्तुलन, अन्याय, अत्याचार, अभाव को पैदा करता है। अतः वर्णव्यवस्था ने ज्ञान, बल, धन और श्रम को पृथक्-पृथक् किया है। भारत में जब तक वर्णव्यवस्था रही कभी समाज में शक्ति का असन्तुलन नहीं हुआ। सबके लिए काम था। सबकी मूल आवश्यकताएं पूर्ण होती थीं।

आज ही कथित श्रेष्ठ व्यवस्था का उदाहरण लीजिए। व्यवसाय-स्वतन्त्रता के नाम पर आज कोई भी एक व्यक्ति या व्यक्तिसमूह ज्ञान, धन, बल और श्रम का अपरिमित संग्रह कर सकता है। एक ही व्यक्ति अनेक व्यवसायों पर नियन्त्रण कर लेता है। उसका दुष्परिणाम यह होता है कि तुलना में उतने ही व्यक्ति या परिवार व्यवसाय से वंचित हो जाते हैं। अनेक प्रकार की शक्तियां एकत्र करके वह व्यक्ति व्यवसाय तक सीमित नहीं रहता, अपितु साथ ही शासन, प्रशासन और समाज को अपने हितों के लिए नियन्त्रित करना आरम्भ कर देता है। वह मनमानियां भी करता है। एक स्थान पर अनेक व्यवसायों की शक्ति का संग्रह होने के परिणामस्वरूप गरीब, अधिक गरीब और शक्तिहीन हो रहे हैं। शक्तिसम्पन्न लोग अधिक शक्तिसम्पन्न हो रहे हैं। समाज में दो ही वर्ग बनते जा रहे हैं—पूंजीपति और गरीब। लोकतन्त्र होते हुए भी शक्ति-सम्पन्नों का राज्य है। वे प्रायः निरंकुश हैं, कानून की पकड़ से बाहर हैं। वर्णव्यवस्था वाले समाज में ज्ञान में ब्राह्मणों का वर्चस्व था, बल में क्षत्रियों का, धन में वैश्यों का, श्रम में शूद्रों का। ब्राह्मणों पर क्षत्रियों का अंकुश थां और क्षत्रियों पर ब्राह्मणों का। वैश्य-शूद्रों पर भी राज्य का अंकुश था और राज्य पर वैश्यों का। एक वर्ण के व्यवसाय में दूसरा वर्ण हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, अतः रोजगार के अधिक अवसर थे।

४. विशेषज्ञ बनाने की पद्धति—वर्णव्यवस्था की पद्धति से शिक्षित-दीक्षित होकर जो व्यक्ति निकलते हैं वे अपने-अपने कर्मों में कुशल प्रशिक्षित अर्थात् विशेषज्ञ नागरिक होते हैं। ऐसे विशेषज्ञों से कोई भी समाज सदा उन्नति ही करेगा। प्रत्येक क्षेत्र के कार्यों में निरन्तर प्रगति होती रहेगी।

५. विशेषता का हस्तान्तरण—मनुस्मृति में विहित व्यवस्था गुण-कर्म-योग्यता से है। किन्तु इसमें यह भी स्वतन्त्रता है कि कोई बालक अपने माता-पिता के व्यवसाय को अपना सकता है। इस

प्रकार विशेषज्ञता पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती जाती है। इससे विशेषज्ञता और विकासदर दोनों बढ़ती हैं। इसी विशेषता के कारण प्राचीन भारत में प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति हुई।

६. कठोरता और लचीलेपन का समन्वय—वर्णव्यवस्था पद्धति में सभी के अधिकार, कर्त्तव्य और व्यवसाय निर्धारित हैं। जब तक व्यक्ति किसी वर्ण में रहता है, उसे कठोरता से उसके नियमों का पालन करना पड़ता है। उसके भंग करने पर राजदण्ड की व्यवस्था है।

किन्तु यदि कोई व्यक्ति वर्णपरिवर्तन करना चाहता है तो उसे इसकी छूट है। वह जिस वर्ण में जाना चाहता है उसकी आवश्यक योग्यता प्राप्त करके उस वर्ण को ग्रहण कर सकता है।

७. वर्णव्यवस्था के मूल तत्त्व विश्व की सभी व्यवस्थाओं के अपरिहार्य तत्त्व—क्या हम वर्णव्यवस्था के मूल तत्त्वों की उपेक्षा कर सकते हैं? कदापि नहीं। जैसा कि बार-बार कहा गया है कि मनुस्मृति में वर्णित वर्णव्यवस्था के आधारभूत तत्त्व हैं—गुण, कर्म, योग्यता। मनु व्यक्ति अथवा वर्ण को महत्त्व और आदर-सम्मान नहीं देते अपितु वर्णस्थ गुणों को देते हैं। जहां इनका आधिक्य है, उस व्यक्ति और वर्ण का महत्त्व और आदर-सम्मान अधिक है, न्यून होने पर न्यून है। आज तक संसार की कोई भी सभ्य व्यवस्था इन तत्त्वों को न नकार पायी है और न नकारेगी। इनको नकारने का अर्थ है—अन्याय, असन्तोष, आक्रोश, अव्यवस्था और अराजकता। मुहावरों की भाषा में इसी स्थिति को कहते हैं 'घोड़े-गधे को एक समझना' या 'सभी को एक लाठी से हांकना।' उसका परिणाम यह होता है कि कोई भी समाज या राष्ट्र न विकास कर सकता है, न उन्नति; न समृद्ध हो सकता है, न सम्पन्न; न सुखी हो सकता है, न संतुष्ट; न शान्त रह सकता है, न अनुशासित; न व्यवस्थित रह सकता है, न अखण्डित। उक्त गुणों से रहित व्यवस्था अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती। वर्तमान में निश्चित सर्वसमानता का दावा करने वाली साम्यवादी व्यवस्था भी इन तत्त्वों से स्वयं को पृथक् नहीं रख सकी है। उसमें भी गुण-कर्म-योग्यता के अनुसार पद और सामाजिक स्तर हैं। उन्हीं के अनुरूप वेतन, सुविधा और सम्मान में अन्तर हैं। वर्णव्यवस्था के मूल तत्त्वों को विश्व की कोई व्यवस्था नकार नहीं सकती।

* * *

अध्याय चार

मनुस्मृति में शूद्रों की यथार्थ स्थिति

(४.१) शूद्र-विषयक कुछ भ्रान्तियां और समाधान

महर्षि मनु और मनुस्मृति के सम्बन्ध में आज सर्वाधिक ज्वलन्त विवाद शूद्रों को लेकर है। पाश्चात्य और उनके अनुयायी लेखकों तथा डॉ. अम्बेडकर ने आज के दलितों के मन में यह भ्रम पैदा कर दिया है कि मनु ने अपनी स्मृति में उनको घृणित नाम 'शूद्र' दिया है और उनके लिए पक्षपातपूर्ण एवं अमानवीय विधान किये हैं। गत शताब्दियों में शूद्रों के साथ हुए भेदभाव एवं पक्षपातपूर्ण व्यवहारों के लिए उन्होंने मनुस्मृति को भी जिम्मेदार ठहराया है। इस अध्याय में मनुस्मृति के आन्तरिक प्रमाणों द्वारा इस तथ्य का विश्लेषण किया जायेगा कि उपर्युक्त आरोपों में कितनी सच्चाई है, क्योंकि अन्तःसाक्ष्य सबसे प्रभावी और उपयुक्त प्रमाण होता है।

(अ) शूद्र के अर्थ-विषयक गलत धारणाएं

सर्वप्रथम 'शूद्र' नाम को लेकर जो गलत धारणाएं बनी हुई हैं, उन पर विचार किया जाता है।

(क) जैसे आज की सरकारी सेवाव्यवस्था में चार वर्ण निर्धारित किये हुए हैं—१. प्रथम श्रेणी अधिकारी, २. द्वितीय श्रेणी अधिकारी, ३. तृतीय श्रेणी कर्मचारी, ४. चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी। इनमें सम्मान, सुविधा, वेतन, कार्यक्षेत्र निर्धारण पृथक्-पृथक् है। इन वर्गों के नामों से सम्बोधित करने में किसी को आपत्ति भी नहीं होती। इसी प्रकार वैदिक काल में समाज व्यवस्था में चार वर्ग थे जिन्हें 'वर्ण' कहा जाता था। किसी भी कुल में जन्म लेने के बाद कोई भी बालक या व्यक्ति अभीष्ट वर्ण के गुण, कर्म, योग्यता को ग्रहण कर उस वर्ण को धारण कर सकता था। उनमें ऊंच-नीच, छूत-अछूत आदि का भेदभाव नहीं था। सम्मान, सुविधा, वेतन (आय), कार्यक्षेत्र का निर्धारण पृथक्-पृथक् था। आज के समान तब भी किसी को वर्णनाम से पुकारने पर आपत्ति नहीं थी, न बुरा माना जाता था। आज हम चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों को पीयन, क्लास फोर, सेवादार, अर्दली,

श्रमिक, मजदूर, चपरासी, श्रमिक, आदेशवाहक, सफाई कर्मचारी, वाटरमैन, सेवक, चाकर आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं और लिखते हैं, किन्तु कोई बुरा नहीं मानता। इसी प्रकार जन्मना जातिवाद के पनपने से पूर्व 'शूद्र' नाम से कोई बुरा नहीं मानता था और न ही यह हीनता या घृणा के अर्थ में प्रयुक्त होता था। वैदिक व्यवस्था में 'शूद्र' एक सामान्य और गुणाधारित संज्ञा थी। जन्मना जातिवाद के आरम्भ होने के बाद, जातिगत आधार पर जो ऊंच-नीच का व्यवहार शुरू हुआ, उसके कारण 'शूद्र' नाम के अर्थ का अपकर्ष होकर वह हीनार्थ में रूढ़ हो गया। आज भी हीनार्थ में प्रयुक्त होता है। इसी कारण हमें यह भ्रान्ति होती है कि मनु की प्राचीन वर्णव्यवस्था में भी यह हीनार्थ में प्रयुक्त होता था, जबकि ऐसा नहीं था। इस तथ्य का निर्णय 'शूद्र' शब्द की व्याकरणिक रचना से हो जाता है। उस पर एक बार पुनः विस्तृत विचार किया जाता है। व्याकरणिक रचना के अनुसार शूद्र शब्द के अधोलिखित अर्थ होंगे—

१. 'शु' अव्ययपूर्वक 'द्रु-गतौ' धातु से 'डः' प्रत्यय के योग से शूद्र पद बनता है। इसकी व्युत्पत्ति होगी—**'शु द्रवतीति शूद्रः'** = जो स्वामी के कहे अनुसार इधर-उधर आने-जाने का कार्य करता है अर्थात् जो सेवा और श्रम का कार्य करता है। संस्कृत साहित्य में 'शूद्र' के पर्याय रूप में **'प्रेष्यः'**=इधर-उधर काम के लिए भेजा जाने वाला, (मनु० २.३२, ७.१२५ आदि), **'परिचारकः'**=सेवा-टहल करने वाला (मनु० ७.२१७), **'भृत्यः'**=नौकर-चाकर आदि प्रयोग मिलते हैं। आज भी हम ऐसे लोगों को सेवक, सेवादार, आदेशवाहक, अर्दली, श्रमिक, मजदूर आदि कहते हैं, जिनका उपर्युक्त अर्थ ही है। इस धात्वर्थ में कोई हीनता का भाव नहीं है, केवल व्यवसायबोधक सामान्य शब्द है।

२. 'शुच्-शोके' धातु से भी 'रक्' प्रत्यय के योग से 'शूद्र' शब्द बनता है। इसकी व्युत्पत्ति होती है—**'शोच्यां स्थितिमापन्नः, शोचतीति वा'**=जो निम्नस्तर की जीवनस्थिति में है और उससे चिन्तायुक्त रहता है। आज भी अल्पशिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति को श्रमकार्य की नौकरी मिलती है। वह अपने जीवननिर्वाह की स्थिति को सोचकर प्रायः चिन्तित रहता है। उसे इस बात का पश्चात्ताप होता रहता है

कि उच्चशिक्षित होता तो मुझे भी अच्छी नौकरी मिलती। इसी प्रकार प्राचीन वर्णव्यवस्था में जो अल्पशिक्षित या अशिक्षित रहता था उसे भी श्रमकार्य मिलता था। उसी श्रेणी को शूद्रवर्ण कहते थे। उसे भी अपने जीवन स्तर पर चिन्ता उत्पन्न होती थी। इसी भाव को अभिव्यक्त करने वाला 'शूद्र' शब्द है। इस धात्वर्थ में भी हीन अर्थ नहीं है। यह केवल मनोभाव का बोधक है।

३. महर्षि मनु ने श्लोक १०.४ में शूद्रवर्ण के लिए अन्य एक शब्द का प्रयोग किया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सटीक है, वह है— **'एकजातिः'**। यह शूद्रवर्ण की सारी पृष्ठभूमि और यथार्थ को स्पष्ट कर देता है। 'एकजाति वर्ण' या व्यक्ति वह कहाता है जिसका केवल एक ही जन्म माता-पिता से हुआ है, दूसरा विद्याजन्म नहीं हुआ। अर्थात् जो विधिवत् शिक्षा ग्रहण नहीं करता और अशिक्षित या अल्पशिक्षित रह जाता है। इस कारण उस वर्ण या व्यक्ति को 'शूद्र' कहा जाता है। शेष तीन वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य 'द्विजाति' और 'द्विज' कहे जाते हैं; क्योंकि वे विधिवत् शिक्षा ग्रहण करते हुए अभीष्ट वर्ण का प्रशिक्षण प्राप्त करके उस वर्ण को धारण करते हैं। वह उनका दूसरा जन्म "ब्रह्मजन्म"= 'विद्याध्ययन जन्म' कहाता है। पहला जन्म उनका माता-पिता से हुआ, दूसरा विद्याध्ययन से, अतः वे 'द्विज' और 'द्विजाति' कहे गये। इस नाम में भी किसी प्रकार की हीनता का भाव नहीं है। मनु का श्लोक है—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः त्रयो वर्णाः द्विजातयः।
चतुर्थः एकजातिस्तु शूद्रः नास्ति तु पंचमः॥ (१०.४)

अर्थात्—'वर्णव्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण 'द्विज' या 'द्विजाति' कहलाते हैं; क्योंकि माता-पिता से जन्म के अतिरिक्त विद्याध्ययन रूप दूसरा जन्म होने से इन वर्णों के दो जन्म होते हैं। चौथा वर्ण **'एकजाति'** है; क्योंकि उसका केवल माता-पिता से एक ही जन्म होता है, वह विद्याध्ययन रूप दूसरा जन्म नहीं प्राप्त करता। उसी को शूद्र कहते हैं। वर्णव्यवस्था में पांचवां कोई वर्ण नहीं है।'

इसी आधार पर संस्कृत में पक्षियों और दांतों को द्विज कहते हैं, क्योंकि उनके दो जन्म होते हैं। वैदिक संस्कृति में दूसरे जन्म का विशेष महत्त्व है, क्योंकि वही राष्ट्र को कुशल, प्रशिक्षित नागरिक

प्रदान करता है, वही आजीविका प्रदान करता है, वही मनुष्य को मनुष्य बनाता है, वही सभी उन्नतियों का मूल कारण है, वही देवत्व और ऋषित्व की ओर ले जाता है। मनु ने कहा है—

ब्रह्मजन्म ही विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम्। (२.१४६)

अर्थात्—'शरीरजन्म की अपेक्षा ब्रह्मजन्म=विद्याध्ययन रूप जन्म ही द्विजातियों का इस जन्म और परजन्म में शाश्वत रूप से कल्याणकारी है।' ब्रह्म-जन्म को न प्राप्त करने वाला अशिक्षा और अज्ञान से ग्रस्त व्यक्ति जीवन में उन्नति नहीं कर सकता, अतः वह प्रशंसनीय नहीं है। इसी कारण वर्णव्यवस्था में शूद्र को चौथे स्थान पर रखा है और आज भी अशिक्षित व्यक्ति चौथे स्थान पर (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी) है। इस नाम में भी कोई हीनता का भाव नहीं है। यह केवल शूद्र वर्ण के निर्माण की प्रक्रिया की जानकारी दे रहा है।

(ख) वर्तमान बालिद्वीप (इंडोनेशिया) में पहले चातुर्वर्ण्य व्यवस्था रही है और अब भी कहीं-कहीं व्यवहार है। मनु की व्यवस्था के अनुसार, वहां उच्च तीन वर्णों को 'द्विजाति' तथा चतुर्थ वर्ण को 'एकजाति' कहा जाता है। वहां के समाज में शूद्र से कोई ऊंच-नीच या छूत-अछूत का व्यवहार नहीं होता। अतः त्रुटि मनु की व्यवस्था में नहीं है। यह त्रुटि भारतीय समाज में जन्मना जातिवाद के उद्भव के कारण आयी है। इसका दोष मनु पर नहीं डाला जा सकता (प्रमाण संख्या ८, पृ० १६ पर प्रथम अध्याय में द्रष्टव्य है)।

(ग) बाद तक वर्णनिर्धारण का यही नियम पाया जाता है। मनुस्मृति के प्रक्षिप्तसिद्ध एक श्लोक में कहा है—

शूद्रेण हि समस्तावद् यावत् वेदे न जायते। (२.१७२)

अर्थात्—'जब तक कोई वेदाध्ययन नहीं करता तब तक वह शूद्र के समान है, चाहे किसी भी कुल में उत्पन्न हुआ हो।'

(घ) पुराणकाल तक भी यही नियम था —

"जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।"

(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड २३९.३१)

अर्थात्—प्रत्येक बालक, चाहे किसी भी कुल में उत्पन्न हुआ हो, जन्म से शूद्र ही होता है। उपनयन संस्कार में दीक्षित होकर विद्याध्ययन करने के बाद ही द्विज बनता है।

(ङ) अशिक्षित होना ही शूद्र की पहचान है। मनु का एक अन्य श्लोक इसकी पुष्टि करता है—

यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः॥ (२.१२६)

अर्थ—'जो द्विज अभिवादन करने वाले को उत्तर में विधिपूर्वक अभिवादन नहीं करता अथवा अभिवादन-विधि के अनुसार अभिवादन करना नहीं जानता, उसको अभिवादन न करें क्योंकि वह वैसा ही है जैसा शूद्र होता है।' इस श्लोक से दो तथ्य प्रकट होते हैं—एक, शूद्र शिक्षित और शिक्षितों की विधियों को जानने वाले नहीं होते अर्थात् अशिक्षित होते हैं। दो, इन कारणों से कोई भी द्विज 'शूद्र' घोषित हो सकता है अर्थात् उसका उच्चवर्ण से निम्नवर्ण में पतन हो सकता है, यदि उसका आचार-व्यवहार शिक्षित वर्णों जैसा नहीं है।

(च) मनु की पूर्वोक्त व्युत्पत्तियों की पुष्टि शास्त्रीय परम्परा से भी होती है। उनमें भी हीनता का भाव नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों में शूद्र की उत्पत्ति 'असत्' से वर्णित की है। यह बौद्धिक गुणाधारित उत्पत्ति है—

"**असतो वा एषः सम्भूतः यच्छूद्रः**" (तैत्ति० ब्रा० ३.२.३.९)

अर्थात्—"यह जो शूद्र है, यह असत्=अशिक्षा (अज्ञान) से उत्पन्न हुआ है।" विधिवत् शिक्षा प्राप्त करके ज्ञानी व प्रशिक्षित नहीं बना, इस कारण शूद्र रह गया।

(छ) महाभारत में वर्णों की उत्पत्ति बतलाते हुए शूद्र को '**परिचारक**' = 'सेवा-टहल करने वाला' संज्ञा दी है। उससे जहां शूद्र के कर्म का स्पष्टीकरण हो रहा है, वहीं यह भी जानकारी मिल रही है कि शूद्र का अर्थ परिचारक है, कोई हीनार्थ नहीं। श्लोक है—

मुखजाः ब्राह्मणाः तात, बाहुजाः क्षत्रियाः स्मृताः।
ऊरुजाः धनिनो राजन्, पादजाः परिचारकाः॥

(शान्तिपर्व २९६.६)

अर्थ- मुखमण्डल की तुलना से ब्राह्मण, बाहुओं की तुलना से क्षत्रिय, जंघाओं की तुलना से धनी=वैश्य, और पैरों की तुलना से परिचारक=सेवक (शूद्र) निर्मित हुए।

(ज) डॉ० अम्बेडकर का मत—डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति के श्लोक **''वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्''** (८.४१८) के अर्थ में शूद्र का अर्थ **'मजदूर'** माना है- ''राजा आदेश दे कि· व्यापारी तथा मजदूर अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करें।'' (अम्बेडकर वाड्मय, खंड ६, पृ० ६१)। यह अर्थ भी हीन नहीं है।

मनु के और शास्त्रों के प्रमाणों से यह स्पष्ट हो गया है कि जब शूद्र शब्द का प्रयोग हुआ तब वह कर्माधरित या गुणवाचक यौगिक था। उसका कोई हीनार्थ नहीं था। मनु ने भी शूद्र शब्द का प्रयोग गुणवाचक किया है, हीनार्थ या घृणार्थ में नहीं। शूद्र नाम तब हीनार्थ में रूढ़ हुआ जब यहां जन्म के आधार पर जाति-व्यवस्था का प्रचलन हुआ। हीनार्थवाचक शूद्र शब्द के प्रयोग का दोष वैदिककालीन मनु को नहीं दिया जा सकता। यदि हम परवर्ती समाज का दोष आदिकालीन मनु पर थोपते हैं तो यह मनु के साथ अन्याय ही कहा जायेगा। अपने साथ अन्याय होने पर आक्रोश में आने वाले लोग यदि स्वयं भी किसी के साथ अन्याय करेंगे तो उनका वह आचरण किसी भी दृष्टि से उचित नहीं माना जायेगा। वे लोग यह बतायें कि जिस दोष के पात्र मनु नहीं है, उन पर वह दोष उन थोपने का अन्याय वे क्यों कर रहे है? क्या, उनकी यह भाषाविषयक अज्ञानता और इतिहास विषयक अनभिज्ञता है अथवा केवल विरोध का दुराग्रह?

(आ) शूद्र की पैरों से उत्पत्ति-विषयक आपत्ति का समाधान

वर्णव्यवस्था के आलोचक और मनु-विरोधी लोग यह आपत्ति करते हैं कि शूद्रों की उत्पत्ति पैरों से क्यों कही गयी? क्योंकि यह बहुत ही अपमानजनक है, और घृणास्पद है।

इस आपत्ति को करने वाले लोग भावुकतावश अपनी अज्ञानता का ही परिचय दे रहे हैं। ऐसा करके वे चार भूलें कर रहे हैं—

१. वर्णव्यवस्था में शरीरांगों से जो आलंकारिक उत्पत्ति बतलायी गयी है, वह व्यक्तियों की नहीं अपितु वर्णों की है। वर्ण एक बार निर्मित हुआ है, अतः उसकी उत्पत्ति कहना तर्कसंगत है। व्यक्ति तो रोज उत्पन्न होते हैं और करोड़ों की संख्या में हैं, वे कैसे पैदा होंगे? अतः वह शूद्रवर्ण की प्रतीकात्मक उत्पत्ति है, शूद्र व्यक्ति की नहीं।

२. वर्तमान में शूद्र कहे जाने वाले लोग स्वयं को आदिकाल से

और जन्म से शूद्र मानकर यह आक्रोश प्रकट कर रहे हैं। मनु की वर्णव्यवस्था में शूद्र तो वह व्यक्ति होता है जो विधिवत् शिक्षित नहीं होता। जो शूद्र रह गया वह पुनः योग्यता अर्जित करके ब्राह्मण आदि बन सकता है। अतः यह उत्पत्ति किसी व्यक्ति या जातिविशेष से संबद्ध नहीं है। दलित लोग भ्रान्तिवश इस नाम को स्वयं पर थोप कर व्यर्थ दुःखी होते हैं। मनु ने उनको कहीं शूद्र नहीं कहा।

३. आज की भाषा और व्यवहार में भी पैर निन्दित नहीं है। हम चरणस्पर्श करके स्वयं को धन्य मानते हैं। किसी के चरणों में शरण पाकर हम स्वयं को कृतकृत्य समझते हैं। किसी की हम चरणवन्दना करते हैं। किसी के चरणों में सिर नवाते हैं। किसी के चरण दबाते हैं, धोते हैं, चरणामृत लेते हैं। भारतीय परम्परा में चरण कभी घृणित नहीं रहा। आज के वातावरण की कुछ रूढ़ियों के आधार पर हमने कुछ धारणाएं बना ली हैं और उनको प्राचीनता पर असंगत रूप से थोप रहे हैं। एक ही शरीर के अंगों में यह भेद कैसे हो सकता है? एक ओर हम स्वयं यह तर्क देते हैं कि एक पुरुष से उत्पन्न चार वर्णों में भेदभाव नहीं हो सकता, तो दूसरी ओर अपनी आपत्ति को सही सिद्ध करने के लिए हम स्वयं मुख, पैर आदि में भेदभाव कर रहे हैं। यदि इस दृष्टि से आरोप लगाते हैं, तो वैश्यों की उत्पत्ति जंघाओं से कही है, क्या जंघाएं उत्तम अंग हैं? फिर तो इस पर वे लोग भी आपत्ति करेंगे। वस्तुतः ऐसा दृष्टिकोण वैदिक वर्णव्यवस्था में कभी नहीं रहा। यह आधुनिक वातावरण की सोच का प्रभाव है।

४. वैदिक वर्णव्यवस्था में वर्णों की उत्पत्ति कर्मों-व्यवसायों की तुलना के आधार पर है। ऊंच-नीच की भावना उसमें नहीं है। इसकी पुष्टि करने वाले प्रमाण वैदिक साहित्य में मिलते हैं। आपत्तिकर्त्ताओं ने उन संदर्भों का अध्ययन तटस्थ भाव से नहीं किया है। इस कारण उनकी सोच संकीर्ण बनी हुई है।

अब मैं पाठकों के समक्ष उन प्रमाणों को प्रस्तुत करता हूं जो मेरी उपर्युक्त स्थापना को सही सिद्ध करेंगे—

(क) अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ तैत्तिरीय संहिता में वर्णों के साथ अन्य पदार्थों की भी आलंकारिक उत्पत्ति वर्णित की है। वहां पैरों से निम्नलिखित पदार्थों की उत्पत्ति एक साथ बतायी है—

"**एकविंश स्तोम, अनुष्टुप् छन्द, वैराज साम, शूद्र, पशुओं में अश्व।**"(७.१.१.४)

अब देखिए, वैदिक ऋषियों ने शूद्र के साथ ऋग्वेद और सामवेद आदि धर्मग्रन्थों के मन्त्रों की उत्पत्ति भी पैरों से दर्शायी है, क्या यह हीनताबोधक सकती है? अश्व क्या हीन पशु है? क्योंकि वह तेज धावक है, अतः पैरों से तेज चलने की विशेषता के कारण उसकी उत्पत्ति पैर से कही है। इधर-उधर आना-जाना, सेवा-टहल का कार्य पैरों पर आधारित होने के कारण शूद्र की तुलना भी चलने वाले अंग 'पैर' से दर्शायी है। इसमें कहीं भी हीनता या घृणा की भावना नहीं है। ध्यान दीजिये, शूद्र यहां वेदमन्त्रों के समकक्ष है।

(ख) प्राचीन ग्रन्थों में इस बात का स्वयं स्पष्टीकरण दिया है कि शूद्र की उत्पत्ति पैरों से क्यों बतलायी जा रही है। तैत्तिरीय संहिता के गत उद्धरण में अश्व और शूद्र की उत्पत्ति पैरों से कही है। क्यों? संहिताकार स्वयं उसका उत्तर देता है—

"**तस्मात् पादौ उपजीवतः। पत्तो हि असृज्येताम्।**" (७.१.१.४)

क्योंकि दोनों की जीविका पैरों पर निर्भर है। इस कारण इनकी उत्पत्ति पैरों से कही गयी है। मेरे विचार से इससे अच्छा स्पष्टीकरण अन्य नहीं हो सकता। इसमें व्यवसाय-साम्य के अतिरिक्त कोई अन्य भावना नहीं है। फिर भी अगर कोई इस विषय पर कुतर्क करता है तो उसका दुराग्रह मात्र ही कहा जायेगा।

(ग) अब पैरों से देवताओं की उत्पत्ति भी देखिए। ऋग्वेद के एक मन्त्र में आलंकारिक उत्पत्ति का विवरण देते हुए कहा है—

"**पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्**" (१०.९०.१४)

अर्थ—पैरों से भूमि और कानों से दिशाएं उत्पन्न हुई।' यहां गुणों की समानता से आलंकारिक वर्णन है। क्या, इसमें कहीं हीनता दिखायी पड़ती है? एक और उदाहरण लीजिए—

"**सः शौद्रं वर्णमसृजत, पूषणमियं वै पूषा इयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च।**" (शतपथ ब्रा० १४.४.२.२५)

अर्थात्—उस ब्रह्म-पुरुष ने शूद्रसम्बन्धी वर्ण को उत्पन्न किया। देवों में पूषा देव को शूद्र के रूप में उत्पन्न किया, क्योंकि वह सबको पालन-पोषण करके पुष्ट करता है।

क्या यहां कहीं हीनभावना या अपमानजनक भावना दिखाई पड़ती है? शूद्र यहां एक वैदिक देव के समकक्ष है। क्योंकि यह उत्पत्ति गुणाधारित तुलना से है, अतः उस देव को 'शूद्रवर्ण' बताया है। गुणों में समानता यह है कि पृथ्वी का पोषक रूप=पूषा देव सब पदार्थों को पुष्ट करता है और शूद्र भी अपने श्रम-सेवा से सबको पुष्ट करता है, अतः गुण-कर्म-साम्य से दोनों शूद्र वर्णस्थ हैं।

(ङ) वर्णों की उत्पत्ति केवल मुख, पैर आदि से ही नहीं बतलायी गयी है, अपितु अन्य आलंकारिक विधियों से भी है, जिसका भाव यह है कि शास्त्रकारों को जहां भी कहीं कोई गुणसाम्य दिखाई पड़ा, उसी दृष्टि से उसका वर्णन कर दिया। अतः पाठकों को एक उत्पत्ति-प्रकार पर ही आग्रहबद्ध नहीं होना चाहिए। द्रष्टव्य हैं उत्पत्ति के कुछ अन्य प्रकार। तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन वेदों से तीन वर्णों की उत्पत्ति दर्शायी है—

सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्, ऋग्भ्यो जातं वैश्यवर्णमाहुः।
यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुः योनिम्, सामवेदोब्राह्मणानां प्रसूतिः॥
(३.१२.९.२)

अर्थात्—सब मनुष्य ब्रह्म की ही सन्तान हैं। ऋग्वेद से वैश्यवर्ण की उत्पत्ति हुई। यजुर्वेद से क्षत्रिय वर्ण की उत्पत्ति हुई। सामवेद से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है।

एक अन्य उत्पत्ति का आलंकारिक वर्णन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। वहां 'भूः' से ब्राह्मणवर्ण की, 'भुवः' से क्षत्रियवर्ण की और 'स्वः' से वैश्यवर्ण की उत्पत्ति कही है। (२.१.४.११)

इन प्रमाणों को दर्शाने का अभिप्राय यही है कि केवल एक उत्पत्ति प्रकार को लेकर कोई आग्रह नहीं बनाना चाहिए। ये केवल आलंकारिक वर्णन हैं। उसी संदर्भ में उनको देखना चाहिए।

(इ) शूद्रों के सभी विवादों का समाधान : वैदिक वर्णव्यवस्था में

जन्म पर आधारित जाति-पांति व्यवस्था सारे विवादों की जड़ है। उसने समाज में विघटन पैदा करके समाज और राष्ट्र की असीम हानि की है। उसी ने वर्णव्यवस्था को विकृत किया, उसी ने वर्णों में ऊंच-नीच, सवर्ण-असवर्ण, छूत-अछूत आदि का व्यववहार उत्पन्न किया। वैदिक काल में कर्मणा वर्णव्यवस्था में इस प्रकार का भेदभाव नहीं

था, मनुष्य-मनुष्य में अमानवीय अन्तर नहीं था। वैदिक साहित्य में हमें जो उल्लेख मिलते हैं उनमें स्पष्ट शब्दों में सभी मनुष्यों को एक ब्रह्म की सन्तान माना गया है और एक 'ब्रह्म वर्ण' से ही अन्य तीन वर्णों की उत्पत्ति मानी है। इस स्थिति में ऊंच-नीच, छूत-अछूत आदि का अवसर ही नहीं था। स्पष्ट है कि भेदभाव का व्यवहार न केवल वर्णव्यवस्था की मूल भावना के विरुद्ध है अपितु भारतीय संस्कृति के भी विरुद्ध है। भेदभाव की संस्कृति एक विकृति है जो वैदिक संस्कृति से मेल नहीं खाती। देखिए, शास्त्र क्या कहते हैं—

(क) शतपथ ब्राह्मण और बृहदारण्यक उपनिषद् की एक आख्यापिका में यह स्पष्ट किया है कि सभी वर्ण ब्राह्मणवर्ण से ही निष्पन्न हैं—

''ब्रह्म वा इदमासीदेकमेव, तदेकं सन् न व्यभवत्। तत् श्रेयोरूपमत्यसृजत् क्षत्रम्,.....सः नैव व्यभवत्, स विशमसृजत्, ...सः नैव व्यभवत्, सः शौद्रं वर्णमसृजत्।'' (शतपथ १४.४.२.२३-२५; बृह० उप० १.४. ११-१३)

अर्थात्—'ब्राह्मण वर्ण ही आरम्भ में अकेला था। अकेला होने के कारण उससे समाज की चहुंमुखी समृद्धि नहीं हुई। आवश्यकता पड़ने पर ब्राह्मण वर्ण में से तेजस्वी वर्ण क्षत्रियवर्ण का निर्माण किया गया। उससे भी समाज की चहुंमुखी समृद्धि नहीं हुई। आवश्यक जानकर उस ब्राह्मणवर्ण में से वैश्यवर्ण का निर्माण किया। उससे भी समाज की पूर्ण समृद्धि नहीं हुई। तब उस ब्राह्मणवर्ण में से शूद्रवर्ण का निर्माण किया। इन चार वर्णों से समाज में पूर्ण समृद्धि हुई।'

तीनों वर्ण एक ही ब्राह्मण-वर्ण के विकसित रूप हैं, अतः वैदिक वर्णव्यवस्था में कभी किसी वर्ण के साथ जन्म के आधार पर भेदभाव नहीं हुआ। यही वैदिक व्यवस्था मनु की वर्णव्यवस्था है।

(ख) इन्हीं भावों को व्यक्त करने वाला एक अन्य श्लोक है जो वाल्मीकि-रामायण में भी आता है और पाठ भेद से महाभारत में भी। रामायण में कहा है—

एकवर्णाः समभाषा एकरूपाश्च सर्वशः।
तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा॥

(उत्तरकाण्ड ३०.१९.२०)

अर्थात्—आदि समय में सभी लोग एक ब्राह्मण-वर्णधारी ही थे, एक समान भाषा बोलने वाले थे, सभी व्यवहारों में एक सदृश थे। उनके वेश और लक्षणों में किसी प्रकार की भिन्नताएं नहीं थीं।
(ग) महाभारत में भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा है—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥

(शान्तिपर्व १८८.११)

अर्थात्—सारा मनुष्य-जगत् एक ब्रह्म की सन्तान है। वर्णों के भेद से इनमें कोई भेद नहीं है। बस, इतना ही अन्तर है कि आदिसृष्टि में ब्रह्मा द्वारा वर्णव्यवस्था निर्मित करने के बाद लोग कर्मों के आधार पर भिन्न-भिन्न वर्ण के नाम से पुकारे जाने लगे।

यह है असली वैदिक वर्णव्यवस्था! इसमें न व्यक्ति में भेदभाव है, न वर्णों में। ब्रह्मा द्वारा निर्धारित यही वर्णव्यवस्था आरम्भ में प्रचलित थी। ब्रह्मा के पुत्र मनु ने भी इसी को अपने शासन में प्रचलित किया था। मौलिक मनुस्मृति में यही भावना निहित थी। अब प्राप्त मौलिक श्लोकों में भी यही समानता की भावना है। परवर्ती लोगों ने स्वार्थवश प्रक्षेप करके उस भावना को कहीं-कहीं क्षत-विक्षत कर दिया। उस क्षत-विक्षत व्यवस्था को मनुकालीन व्यवस्था नहीं कहना चाहिए। मनु की व्यवस्था तो उपर्युक्त ही है। वही शूद्रों के वर्तमान विवादों को निपटाने की एकमात्र औषध है। उसका संदेश है—सभी एक ईश्वर की सन्तान हैं, सभी एक वर्ण का विकास हैं, सभी महत्त्वपूर्ण हैं, एक पिता की सन्तानों में कोई भेदभाव नहीं है।

(ई) शूद्र वर्ण में शूद्र जातियों का उल्लेख नहीं

मनुस्मति में वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति के प्रसंग में केवल चार वर्णों के निर्माण का कथन है और उनके कर्त्तव्यों का निर्धारण है। किसी भी वर्ण में किसी जाति का उल्लेख नहीं है (१.३१.८७-९१)। यही तर्क यह संकेत देता है कि मनु ने किसी जातिविशेष को शूद्र नहीं कहा है और न किसी जातिविशेष को ब्राह्मण कहा है। आज के शूद्र जातीय लोगों ने मनूक्त 'शूद्र' नाम को बलात् अपने पर थोप लिया है। मनु ने उनकी जातियों को कहीं शूद्र नहीं कहा।

परवर्ती समाज और व्यवस्थाकारों ने समय-समय पर शूद्र संज्ञा देकर कुछ वर्णों और जातियों को शूद्रवर्ग में सम्मिलित कर दिया।

कुछ लोग भ्रान्तिवश इसकी जिम्मेदारी मनु पर थोप रहे हैं। विकृत व्यवस्थाओं का दोषी तो है परवर्ती समाज, किन्तु उसका अपयश मनु को दिया जा रहा है। न्याय की मांग करने वाले दलित और पिछड़ी जातियों के प्रतिनिधियों का यह कैसा न्याय है ? जब मनु ने वर्णव्यवस्था के निर्धारण में उनकी जातियों का उल्लेख ही नहीं किया है तो वे निराधार क्यों कहते हैं कि मनु ने उनको 'शूद्र' कहा है ?

वास्तविकता यह है कि मनु के समय जातियां थीं ही नहीं। मनु स्वायंभुव का काल मानवों की सृष्टि का लगभग आदिकाल है। तब केवल कर्म पर आधारित 'वर्ण' थे, जाति को कोई जानता ही नहीं था। यदि जातियां होतीं तो मनु यह अवश्य लिखते कि अमुक जातियां शूद्र हैं। किन्तु मनु ने किसी जाति का नाम लेकर नहीं कहा कि यह शूद्रवर्ण की है। दशम अध्याय में अप्रासंगिक रूप से कुछ जातियों की गणना स्पष्टतः बाद की मिलावट है।

डॉ० अम्बेडकर ने स्वयं स्वीकार किया है कि भारत में जातियों का उद्भव बौद्धकाल से कुछ पूर्व हुआ था और जन्मना जाति व्यवस्था में कठोरता व व्यापकता पुष्पमित्र शुङ्ग (लगभग १८५ ईस्वी पूर्व) के काल में आयी थी। मूल मनुस्मृति की रचना आदिकाल में हो चुकी थी अतः उसमें जातियों का उल्लेख या गणना संभव ही नहीं थी। इस कारण मनुस्मृति जातिवादी शास्त्र नहीं है। जातिवादी शास्त्र न होने से उसमें शूद्रों के प्रति असम्मान और भेदभाव भी नहीं है।

(४.२) मनु की वर्णव्यवस्था के अनुसार शूद्र आर्य और सवर्ण हैं

(अ) मनुस्मृति में वर्णित महर्षि मनु की वर्णव्यवस्था के अनुसार शूद्र आर्य हैं और सवर्ण हैं। मनु की व्यवस्था है कि आर्यों के समाज में चार वर्ण हैं (द्रष्टव्य १०.४ श्लोक)। उन चार वर्णों के अन्तर्गत होने से शूद्रवर्ण सवर्ण भी है और आर्यों के समाज का अंग भी है। मनु ने केवल उस व्यक्ति को अनार्य और असवर्ण माना है जो वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत नहीं है—

''वर्णापेतम्......आर्यरूपमिव-अनार्यम्'' (१०.५७)

अर्थ—'जो चार वर्णों में दीक्षित न होने से चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था से बाहर है और जो अनार्य है किन्तु आर्यरूप धारण करके रहता है, वह दस्यु है।'

मनु की वर्ण-व्यवस्था में आर्य-अनार्य, सवर्ण-असवर्ण का भेद संभव ही नहीं है, क्योंकि मुख्यतः चार वर्णों के ही परिवारों से गुण-कर्म-योग्यता के अनुसार चार वर्ण बनते हैं। चारों वर्णों के व्यक्ति आर्य भी हैं और सवर्ण भी। शूद्र को अनार्य और असवर्ण परवर्ती जातिव्यवस्था में माना गया है; अतः उसका दायित्व मनु का नहीं, जातिवादियों का है। जातिवादियों ने मनु की बहुत-सी व्यवस्थाओं को बदल डाला है, ऐसी ही शूद्र-सम्बन्धी व्यवस्थाएं हैं। अनभिज्ञ लेखक और पाठक उन्हें मनु की व्यवस्था कहते हैं, यथा—

(क) शिल्प, कारीगरी, कलाकारी आदि कार्य करने वाले जनों को मनु ने वैश्यवर्ण के अन्तर्गत माना है किन्तु जाति व्यवस्थापकों ने उनको शूद्र कोटि में परिगणित कर दिया (१०.९९, १००)।

(ख) मनु ने कृषि, पशुपालन को वैश्यों का कर्म माना है (१.९०)। किन्तु सदियों से ब्राह्मण, क्षत्रिय भी यह कार्य कर रहे हैं, किन्तु उनको जाति व्यवस्थापकों ने वैश्य घोषित नहीं किया, अपितु उल्टे अन्य जातियों के किसानों को शूद्र घोषित कर दिया। इस पक्षपातपूर्णव्यवस्था को मनु की व्यवस्था नहीं माना जा सकता।

(आ) डॉ० अम्बेडकर द्वारा शूद्रों के आर्यत्व का समर्थन—

डॉ० अम्बेडकर मनु की मान्यता को उद्धृत करते हुए दृढ़ता से शूद्रों को आर्य तथा सवर्ण मानते हैं। उन्होंने उन लेखकों का जोरदार खण्डन किया है जो शूद्रों को अनार्य और 'बाहर से आया हुआ' मानते हैं। यह मत उन्होंने दर्जनों स्थानों पर व्यक्त किया है। यहां कुछ प्रमुख मत उद्धृत किये जा रहे हैं—

(क) "दुर्भाग्य तो यह है कि लोगों के मन में यह धारणा घर कर गयी है कि शूद्र अनार्य थे। किन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि प्राचीन आर्य साहित्य में इस सम्बन्ध में रंच मात्र भी कोई आधार प्राप्त नहीं होता।" (डॉ० अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० ३१९)

(ख) "धर्मसूत्रों की यह बात कि शूद्र अनार्य हैं, नहीं माननी चाहिए। यह सिद्धान्त **मनु तथा कौटिल्य के विपरीत है।**" (शूद्रों की खोज, पृ० ४२)

(ग) "शूद्र आर्य ही थे अर्थात् वे जीवन की आर्य पद्धति में विश्वास रखते थे। शूद्रों को आर्य स्वीकार किया गया था और

कौटिल्य के अर्थशास्त्र तक में उन्हें आर्य कहा गया है। शूद्र आर्य समुदाय के अभिन्न जन्मजात और सम्मानित सदस्य थे।'' (डॉ० अम्बेडकर वाड्मय, खंड ७, पृ० ३२२)

(घ) ''आर्य जातियों का अर्थ है चार वर्ण - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। **दूसरे शब्दों में मनु चार वर्णों को आर्यवाद का सार मानते हैं।**'' (वही, खंड ८ पृ० २१७)

(ङ) ''**मनुस्मृति १०.४ श्लोक** (ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः ...जो इसी अध्याय के आरम्भ में उद्धृत है) **दो कारणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।** एक तो यह कि इसमें शूद्रों को दस्यु से भिन्न बताया गया है। दूसरे, **इससे पता चलता है कि शूद्र आर्य हैं।**'' (वही, खंड ८, पृ० २१७ पर टिप्पणी)

(च) ''शूद्र सूर्यवंशी आर्यजातियों के एक कुल या वंश थे। भारतीय आर्य-समुदाय में शूद्र का स्तर क्षत्रिय वर्ण का था।'' (वही, खंड १३, पृ० १६५)

(छ) ''सवर्ण का अर्थ है चारों वर्णों में से किसी एक वर्ण का होना। अवर्ण का अर्थ है चारों वर्णों से परे होना। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा **शूद्र सवर्ण हैं।**'' (शूद्रों की खोज, पृ० १५)

(ज) ''**जो चातुर्वर्ण्य के अन्तर्गत होते थे, उच्च या निम्न, ब्राह्मण या शूद्र, उन्हें सवर्ण कहा जाता था** अर्थात् वे लोग जिन पर वर्ण की छाप होती थी।'' (अम्बेडकर वाड्मय खंड ६, पृ० १८१)

महर्षि मनु की वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत शूद्र आर्य और सवर्ण थे, शूद्र सम्बन्धी इन सिद्धान्तों में डॉ अम्बेडकर ने मनु का नाम लेकर उनके मत का समर्थन किया है, फिर भी मनु का विरोध क्यों? मनुस्मृति-विरोधियों से इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षित है।

(४.३) मनु की वर्णव्यवस्था में शूद्र अछूत नहीं

मनु ने शूद्रों को निम्न या अछूत नहीं माना है। उनका शूद्रों के प्रति महान् मानवीय दृष्टिकोण है। ये आरोप वे लोग लगाते हैं जिन्होंने मनुस्मृति को ध्यान से नहीं पढ़ा, या जो केवल 'विरोध के लिए विरोध करना' चाहते हैं। कुछ प्रमाण देखें—

(अ) मनु के मत में शूद्र अछूत नहीं

मनुस्मृति में शूद्रों को कहीं अछूत नहीं कहा है। मनु की शूद्रों

के प्रति समान व्यवहार और न्याय की भावना है। मनुस्मृति में वर्णित व्यवस्थाओं से मनु का यह दृष्टिकोण स्पष्ट और पुष्ट होता है कि शूद्र आर्य परिवारों में रहते थे और उनके घरेलू कार्यों को करते थे—

(क) शूद्र को अस्पृश्य (=अछूत), निन्दित मानना मनु के सिद्धान्त के विरुद्ध है। महर्षि मनु ने शूद्र वर्ण के व्यक्तियों के लिए "**शुचि**" = पवित्र, "**ब्राह्मणाद्याश्रयः**" = 'ब्राह्मण आदि के साथ रहने वाला' जैसे विशेषणों का उल्लेख किया है। ऐसे विशेषणों वाला और द्विजों के मध्य रहने वाला व्यक्ति कभी अछूत, निन्दित या घृणित नहीं माना जा सकता। निम्नलिखित श्लोक देखिए—

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुः मृदुवाक्-अनहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥ (९.३३५)

अर्थ—'शुचिः= स्वच्छ-पवित्र और उत्तमजनों के संग में रहने वाला, मृदुभाषी, अहंकाररहित, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों के आश्रय में रहने वाला शूद्र अपने से उत्तम जाति=वर्ण को प्राप्त कर लेता है।' तीनों वर्णों के सान्निध्य में रहने वाला और उनके घरों में सेवा=नौकरी करने वाला कभी अछूत, घृणित या निन्दित नहीं हो सकता।

(ख) डॉ० अम्बेडकर द्वारा समर्थन- इस श्लोक का अर्थ डॉ० अम्बेडकर ने भी उद्धृत किया है अर्थात् वे इसे प्रमाण मानते हैं—

"प्रत्येक शूद्र जो शुचिपूर्ण है, जो अपने से उत्कृष्टों का सेवक है, मृदुभाषी है, अहंकाररहित है, और सदा ब्राह्मणों के आश्रित रहता है, वह उच्चतर जाति प्राप्त करता है। (मनु० ९.३३५)" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ९, पृ० ११७)

मनु के वर्णनानुसार शूद्र शुद्ध—पवित्र थे, वे ब्राह्मणादि द्विजों के सेवक थे और उनके साथ रहते थे। इस प्रकार वे अस्पृश्य नहीं थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है शूद्र आर्य परिवारों के अंग थे क्योंकि वे आर्य वर्णों के समुदाय में थे। इस श्लोकार्थ के उद्धरण से यह संकेत मिलता है कि डॉ० अम्बेडकर यह स्वीकार करते हैं कि मनुमतानुसार शूद्र अस्पृश्य नहीं है। अस्पृश्य होते तो मनु उनको आर्य परिवारों का सेवक या साथ रहने वाला वर्णित नहीं करते।

(ग) शूद्रवर्णस्थ व्यक्ति अशिक्षित होने के कारण ब्राह्मणों सहित सभी द्विजवर्णों के घरों में सेवा या श्रम कार्य करते थे। घर में रहने

वाला कभी अछूत नहीं होता। मनु ने कहा है—

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः॥ (९.३३४)

अर्थ—वेदों के विद्वान् द्विजों, तीनों वर्णों के प्रतिष्ठित गृहस्थों के यहां सेवाकार्य (नौकरी) करना ही शूद्र का हितकारी कर्त्तव्य है।

(आ) शूद्र के प्रति मनु का मानवीय दृष्टिकोण—

(क) महर्षि मनु परम दयालु एवं मानवीय दृष्टिकोण के थे। उन्होंने शूद्रों के प्रति मानवीय सद्‌भावना व्यक्त की है और उन्हें यथोचित सम्मान दिया है। निम्नांकित श्लोक में मनु का आदेश है कि द्विजवर्णस्थ व्यक्तियों के घरों में यदि शूद्र वर्ण का व्यक्ति आ जाये तो उसका अतिथिवत् भोजन-सम्मान करें—

वैश्य शूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथिधर्मिणौ।
भोजयेत् सह भृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन्॥ (३.११२)

(ख) डॉ० अम्बेडकर द्वारा समर्थन—डॉ० अम्बेडकर ने इस श्लोक के अर्थ को प्रमाण-रूप में उद्‌धृत किया है, जो यह संकेत देता है कि वे मनु के इस कथन को स्वीकार करते हैं और यह भी भाव इससे स्पष्ट होता है कि आर्य द्विजों के घर में अतिथि के रूप में सत्कार पाने वाले शूद्र, मनुमतानुसार अस्पृश्य, नीच, निन्दित या घृणित नहीं होते—

"यदि कोई वैश्य और शूद्र भी उसके (ब्राह्मण के) घर अतिथि के रूप में आए तब वह उसके प्रति दया का भाव प्रदर्शित करते हुए अपने सेवकों के साथ भोजन कराए (मनुस्मृति ३.११२)।" (अम्बेडकर वाड्मय, खंड ९, पृ० ११२)

इतनी सहृदयता और सद्‌भाव का आदेश देने वाला महर्षि मनु, जिसका प्रमाण डॉ० अम्बेडकर को भी स्वीकार है, वह विरोध का पात्र नहीं है, अपितु प्रशंसा का पात्र है। फिर भी मनु का विरोध क्यों?

(इ) द्विज और शूद्र वर्ण एक परमात्मपुरुष की सन्तान हैं—

(क) वैदिक या मनुस्मृति की वर्णव्यवस्था में सभी वर्णों का उद्‌भव एक ही परमात्मपुरुष अथवा ब्रह्मा के अंगों से माना है। ध्यान दें, यह आलंकारिक उत्पत्ति वर्णस्थ व्यक्तियों की नहीं है अपितु चार वर्णों की है। इस वर्णन से उन-उन वर्णों के कर्मों पर प्रतीकात्मक

प्रकाश डाला गया है—

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्॥ (१.३१)

अर्थ—समाज की समृद्धि एवं उन्नति के लिए मुख, बाहु, जंघा और पैर की तुलना से क्रमशः ब्राह्मणवर्ण, क्षत्रियवर्ण, वैश्यवर्ण और शूद्रवर्ण का निर्माण किया। उसी तुलना से, मुख के समान पढ़ाना, प्रवचन करना, ब्राह्मणवर्ण का कर्म निर्धारित किया। बाहुओं के समान रक्षा करना क्षत्रियवर्ण का, जंघा के समान व्यापार से धनसम्पादन करना वैश्यवर्ण का, और पैर के समान श्रम कार्य करना शूद्रवर्ण का कर्म निर्धारित किया। इस श्लोक में वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है, व्यक्तियों का नहीं।

इस आलंकारिक वर्णन से तीन निष्कर्ष निकलते हैं। **एक**, चारों वर्णों के व्यक्ति परमात्मा की एक जैसी सन्तानें हैं। **दूसरा**, एक जैसी सन्तानों में कोई अस्पृश्य और घृणित नहीं होता। **तीसरा**, एक ही शरीर का अंग 'पैर' अस्पृश्य या घृणित नहीं होता है। उक्त श्लोकों के मुनस्मृति में विद्यमान रहते कोई तटस्थ व्यक्ति क्या यह कह सकता है कि मनु शूद्रों को अस्पृश्य और घृणित मानते थे?

(ख) परम्परा—मनु तो वैदिक परम्परा के व्यक्ति है। शूद्रों के साथ समान व्यवहार, स्पृश्यता और सम्मान की परम्परा तो हमें उनके बाद महाभारत तक मिलती है। रामायण में दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में और युधिष्ठिर के राजसूय/अश्वमेघ यज्ञ में शूद्रों को ससम्मान बुलाया गया था और उन्होंने अन्य वर्णों के साथ बैठकर भोजन किया था।

वाल्मीकि रामायण में सुस्पष्ट शब्दों में आदेश है कि सभी वर्णों को ससम्मान बुलाया जाये और सब का श्रद्धापूर्वक संतोषजनक सत्कार किया जाये —

ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्चैव सहस्रशः।
समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान्॥
दातव्यमन्नं विधिवत् सत्कृत्य न तु लीलया।
सर्वे वर्णाः यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः॥

(बाल० १३.१४,२०,२१)

अर्थ—महर्षि वसिष्ठ आदेश देते है—'हजारों की संख्या में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को सभी प्रदेशों से सत्कारपूर्वक बुलाओ। उनको श्रद्धा-सत्कारपूर्वक भोजन कराओ, अश्रद्धापूर्वक नहीं। ऐसा व्यवहार करो कि सभी वर्णों के लोग सत्कार पाकर सम्मान का अनुभव करें।' कितना आदर्श और समानता का आदेश है!! प्राचीन काल में ऐसा ही सद्भावपूर्ण व्यवहार था।

(ई) वेदों में शूद्रों के प्रति सद्भाव : मनु का आदर्श

वेदों को परमप्रमाण और अपनी स्मृति का स्रोत मानने वाले मनु वेदोक्त आदेशों-निर्देशों के विरुद्ध न तो जा सकते हैं और न उनके विरुद्ध विधान कर सकते हैं। इसलिए हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि उन्होंने अपनी स्मृति में मौलिक रूप से शूद्रों के प्रति कोई असद्भाव प्रदर्शित किया होगा। उन्हें वेदों का गम्भीर ज्ञान था, उस परम्परा के वे संवाहक थे, अतः उनके विधान सद्भावपूर्ण थे। उनमें से कुछ पूर्व उद्धृत किये जा चुके हैं। यहां वेदों में शूद्रों के प्रति सद्भाव का वर्णन वाले कुछ मन्त्र उद्धृत किये जाते हैं—

(क) **रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।**
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि देहि रुचा रुचम्॥

(यजुर्वेद १८.४८)

अर्थ—सबसे प्रीति की कामना करता हुआ व्यक्ति कहता है—हे परमेश्वर या राजन्! ब्राह्मणों में हमारी प्रीति हो, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों में हमारी प्रीति हो। आप मुझमें सबसे प्रीति करने वाले संस्कार धारण कराइये।

(ख) **प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च॥**

(अथर्ववेद १९.३२.८)

अर्थ—मुझे ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और वैश्य, सबका प्रिय बनाइये। मैं सबसे प्रेम करने वाला और सबका प्रेम पाने वाला बनूं।

(ग) **प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।**
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये॥

(अथर्ववेद १९.६२.१)

अर्थ—मुझे विद्वान् ब्राह्मणों, क्षत्रियों, शूद्रों, वैश्यों और जो भी मुझ पर दृष्टिपात करे, उसका प्रियपात्र बनाओ।

वेदों के ये मन्त्र कितने सद्भावपूर्ण आदर्श वचन हैं। यह वैदिक संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था का एक नमूना प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि वैदिक काल का समाज कैसा था। यही वेद, मनु स्वायंभुव के आदर्श हैं, अतः उनके वचन भी इसी प्रकार परम सद्भाव से परिपूर्ण हैं। शूद्रों के प्रति असद्भावपूर्ण वचन वेदभक्त मनु के नहीं हो सकते।

(४.४) मनु की वर्णव्यवस्था में शूद्र दास नहीं।

मनुस्मृति का गंभीर अध्ययन किये बिना अथवा एकांगी अध्ययन के आधार पर जब मनु पर आरोपों का सिलसिला बना तो कुछ लोग जो मन में आया, वही आरोप लगाने लगे। यह भी कहा गया कि मनु ने शूद्रों को दास घोषित किया है। मनु बड़ा क्रूर था, उसने शूद्रों के लिए बर्बरतापूर्ण विधान किये, आदि-आदि।

(अ) महर्षि मनु का चरित्र-चित्रण

इस प्रकार के आरोप महर्षि मनु पर सही सिद्ध नहीं होते। क्योंकि मनुस्मृति के मौलिक मन्तव्यों के आधार पर जब हम मनु का चरित्र-चित्रण करते हैं, अथवा मनौवैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं तो हमें मनु दयालु मानसिकता के व्यक्ति ज्ञात होते हैं। बाह्यग्रन्थों के मनु-विषयक प्रमाण भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

सम्पूर्ण मनुस्मृति में हमें '**अहिंसा**' का सिद्धान्त सभी विधानों में ओतप्रोत मिलता है। यह कहना चाहिए कि मनुस्मृति '**अहिंसा**' पर टिकी हुई है। मनु मानवों को तो क्या, कीट-पतंग से लेकर पशुओं तक को पीड़ा देना पाप समझते हैं। पशुहत्या को वे महापाप मानते हैं। (५.५१)। उन्होंने ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी चारों आश्रमियों को किसी भी प्रकार की हिंसा न करने और अहिंसा-धर्म का पालन करने का आदेश दिया है। अनजाने में गृहस्थों द्वारा होने वाली कीट-पतंगों की हत्या के प्रायश्चित्त-स्वरूप मनु ने उनको प्रतिदिन पांच यज्ञों को करने का आदेश दिया है (३.६७-७४)। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर किसी भी प्रकार की जीवहत्या होने पर प्रायश्चित्त का निर्देश है। (अध्याय ११.१३१-१४४)। मनु हल में जुते बैलों के लिए भी यह निर्देश देता है कि उनको पीड़ा न देते हुए हल जोतना चाहिए (४.६७-६८)। मनु इस बात का भी आदेश देता

है कि मनुष्य ऐसी कोई जीविका न अपनायें जिससे दूसरे मनुष्यों को पीड़ा, हानि या कष्ट हो (४.२, ११, १२)। इतना ही नहीं, वह गुरु-शिष्य को और पति-पत्नी को परस्पर पीड़ा न पहुँचाते हुए प्रसन्न रखने का उपदेश देता है (३.५५-६२;४.१६६;२.१५९)। परिवार के सदस्यों को परस्पर कलह के द्वारा एक दूसरे को कष्ट न देने का विधान करता है (४.१७९-१८०)। विकलांगों और निम्नवर्णस्थों पर आक्षेप न करने का आदेश देता है(४.१४१)। जो सभी मनुष्यों-प्राणियों से अहिंसा का व्यवहार करने का नियम बना रहा है (''**अहिंसयैव भूतानां कार्यं अनुशासनम्**'' २.१५९), इन सबसे बढ़कर जो अहिंसा को स्वर्गप्राप्ति का साधन घोषित करता है (''**अहिंस्रः जयेत् स्वर्गम्**'' ४.२४६), वह व्यक्ति कभी किसी मानव के प्रति निर्दयी या क्रूर नहीं हो सकता। वह किसी भी मानव के लिए अत्याचार या अन्यायपूर्ण विधान नहीं कर सकता। वह मानवता के स्तर से कभी नहीं गिर सकता। इसलिए कोई भी अन्याय, अत्याचार का विधान मनु का नहीं हो सकता। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शूद्र सम्बन्धी अनुचित विधान भी मनुप्रोक्त नहीं हैं।

मनुस्मृति के अध्ययन से हमें जानकारी मिलती है कि मनु एक न्यायप्रिय, धर्मनिष्ठ और आध्यात्मिक राजर्षि थे। वे अन्याय और अधर्म के घोर निन्दक थे। यहां तक कि अन्याय करने वाले राजा की वह निन्दा करते हैं (८.१४,१५,१८,१२८, आदि)। ऐसा न्यायप्रिय व्यक्ति स्वयं किसी के साथ भी अन्याय और अधर्म का व्यवहार नहीं कर सकता। मनु इतना आध्यात्मिक धर्मशास्त्रकार है कि वह मन से दूसरे के अनिष्टचिन्तन को भी मानसिक पाप मानता है और कहता है कि ऐसा करने वाले को मानसिक क्लेश के रूप में उसका फल भुगतना पड़ेगा (१२.५,८)। इन सब उल्लेखों से मनु का व्यक्तित्व दयालु, धार्मिक, न्यायप्रिय, धर्मनिष्ठ एवं आध्यात्मिक सिद्ध होता है। महाभारत-पुराणों में भी 'प्राणिमात्र के प्रति हितैषिता' मनु की विशेषता बतलायी है—

''**मनुः विख्यातमंगलः.......सर्वभूतहितः सदा**''

(भागवत० ३.२२,३९)

अर्थात्—'मनु विख्यात कल्याणकारी थे और सब प्राणियों के

सदा हितैषी थे।' ऐसा महर्षि दासता की क्रूर प्रथा का समर्थक नहीं हो सकता।

निष्कर्ष यह है कि शूद्रों के नाम पर मनुस्मृति में पाये जाने वाले पक्षपातपूर्ण, अन्याय-अत्याचारयुक्त विधान मनु के मौलिक न होकर बाद के पक्षपाती व्यक्तियों द्वारा किये गये प्रक्षेप हैं।

(आ) शूद्रों के लिए दासता का विधान मनुकृत नहीं

मनु शूद्रों की दासता के पक्षधर या पोषक नहीं हैं। उन्होंने शुद्रों, सेवकों, स्त्री-कर्मचारियों आदि का वेतन, पद और स्थान के अनुरूप देने का आदेश दिया है—

(क) राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च।
प्रत्यहं कल्पयेद् वृत्तिं स्थानकर्मानुरूपतः॥ (७.१२५)

अर्थात्—'राजा काम पर लगाये जाने वाले श्रमिकों, सेवकों, स्त्रियों का प्रतिदिन का वेतन, काम, पद और स्थान के अनुरूप निर्धारित कर दे।' इसका स्पष्ट भाव यह है कि मनु के मतानुसार शूद्रों और स्त्रियों से दासता कराना वर्जित है।

(ख) निम्न श्लोक में विधान है कि रोग आदि होने पर यदि भृत्य दीर्घ अवकाश लेता है तो उसे वेतन मिलना चाहिए। इस विधान का आधार मानवीय है। दास के लिए कभी ऐसा विधान नहीं होता—

"**स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम्।**" (८.२१६)

अर्थ—यदि अवकाश से लौटने के बाद भृत्य अपने पूर्वनिर्धारित कार्य को पूर्ण कर देता है तो वह लम्बे अवकाश का वेतन पाने का अधिकारी है अर्थात् भृत्य का दीर्घ अवकाश होने पर भी वेतन दिया जाना चाहिए।

(ग) मनु ने १.९१ श्लोक में शूद्र के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए कहा है कि तीन द्विज वर्णों अथवा चारों वर्णों की सेवा करना (नौकरी करना) ही शूद्र का कर्त्तव्य है। यहां शूद्र को स्वतन्त्रता दी है कि वह किसी वर्ण के किसी भी व्यक्ति के पास नौकरी करे। यह शूद्र की इच्छा पर निर्भर है। स्वतन्त्रतापूर्वक सेवाकार्य करना दासता का लक्षण नहीं है। मनु की यह मौलिक व्यवस्था सिद्ध करती है कि मनु के मतानुसार शूद्र दास नहीं हो सकता।

(घ) मनुस्मृति २.६,७ [२.३१, ३२] में चारों वर्णों के नामकरण

का विधान है। वहां शूद्र का नाम **"शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्"** कहकर ऐसा रखने का विधान किया है जो सेवाभाव का द्योतक हो। व्याख्याकारों ने इसके उदाहरण दिये हैं—देवदास, धर्मदास, सुदास आदि। इससे कितनी सरलता से यह स्पष्ट हो रहा है कि वर्णव्यवस्था की विधि के अन्तर्गत 'दास' का अर्थ 'सेवक' है, गुलाम नहीं।

(ङ) मनु की वर्णव्यवस्था आर्यों की सामाजिक व्यवस्था थी। मुख्यत: आर्य परिवारों से ही बालक या व्यक्ति गुण, कर्म, योग्यता के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनते थे। यह अस्वाभाविक है और सामान्यत: संभव नहीं है कि अपने ही परिवारों के बालकों या व्यक्तियों को कोई दास बनाये और उनके परिवार और उनका समाज उनको स्वीकार कर ले। इससे ज्ञात होता है कि शूद्र दास अर्थात् गुलाम नहीं होते थे, केवल सेवक (नौकर या श्रमिक) होते थे, जिन्हें उस कार्य का उचित वेतन या भरण-पोषण मिलता था।

(इ) डॉ० अम्बेडकर द्वारा मनुमत का समर्थन

डॉ० अम्बेडकर वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत शूद्रों को दास के रूप में स्वीकार नहीं करते। उन्होंने प्रमाण के रूप में मनु के निम्नलिखित श्लोकार्थ उद्धृत किये हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि मनु के मतानुसार वेतन ओर जीविका पाने वाला नौकर या सेवक कभी दास नहीं होता। यदि इनके विरुद्ध वर्णन वाले श्लोक मनुस्मृति में पाये जाते हैं तो वे परस्परविरोधी होने से प्रक्षिप्त हैं। डॉ० अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत प्रमाण हैं—

(क) डॉ० अम्बेडकर मनुस्मृति की मौलिक व्यवस्थाओं में आये श्लोकों में पठित 'दास' शब्द का अर्थ सेवक ही करते हैं, जो सर्वथा सही है। पूर्व पंक्तियों में उद्धृत नामकरण संस्कार-सम्बन्धी श्लोक पर -**"शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम्"** (२.६-७[२.३१-३२]) में दास का अर्थ उन्होंने सेवक किया है-

"नाम दो भागों का होना चाहिए....शूद्रों के लिए दास **(सेवा)**।" तथा "शूद्र का (नाम) ऐसा हो जो **सेवा करने का भाव** सूचित करे।" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ६, पृ० ५८; खंड ७, पृ० २०१)

(ख) "ब्राह्मणों को चाहिए कि वे अपने परिवार (की संपत्ति)

में से उसे (शूद्र को) उसकी योग्यता, उसके परिश्रम तथा उन व्यक्तियों की संख्या के अनुसार, जिनका उसे (शूद्र को) भरण-पोषण करना है, **उचित जीविका निश्चित करें** (मनुस्मृति १०.१२४)।'' (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० ३१८)

(ग) ''(संन्यासी) मरने या जीने की चाह न करे किन्तु **नौकर जिस प्रकार वेतन की प्रतीक्षा करता है,** उसी प्रकार काल की प्रतीक्षा करता रहे (मनुस्मृति ६.४५)।'' (वही, खंड ८, पृ० २१४)

(घ) ''यह सत्य है कि ऋग्वेद में शूद्र का दस्यु या सेवक के अर्थ में उल्लेख हुआ है।......जब तक यह सिद्ध नहीं होता कि ये दोनों (शूद्र, दास) एक ही थे, तब तक ऐसा निर्णय करना कि शूद्र दास बनाए गए, मूर्खता होगी। यह ज्ञात तथ्यों के विरुद्ध भी होगा।'' (वही, खंड १३, पृ० ८६)

जब मनुस्मृति में इतने स्पष्ट वचन हैं जिनसे सिद्ध होता है कि शूद्र 'दास' नहीं थे, फिर केवल प्रक्षिप्त श्लोकों के आधार पर मनु का विरोध क्यों? डॉ० अम्बेडकर जब उक्त श्लोकार्थों को प्रमाण के रूप में उद्धृत कर रहे हैं तो उसका अभिप्राय है कि उनको वे प्रमाण मान्य हैं जिनमें शूद्रों के दास=गुलाम न होने का कथन है। एकमत होने पर भी मनु का विरोध क्यों? इसका उत्तर अपेक्षित है।

(४.५) मनु की वर्णव्यवस्था में शूद्रों को शिक्षा सम्बन्धी तथा धार्मिक अधिकार

सृष्टि के आरम्भिक युग में विश्व के लिए विद्याओं की अनेक विधाओं के द्वार खोलने वाले, धर्मविशेषज्ञ, महर्षि और राजर्षि मनु पर कुछ लोग यह आरोप लगाते हैं कि मनु ने शूद्रों और स्त्रियों को शिक्षा से वंचित करके उनको अज्ञानता के गर्त में डाल दिया। उनका कहना है कि मनु ने केवल ब्राह्मणों को शिक्षा का एकाधिकार प्रदान किया है।

मनु पर यह आरोप निराधार है, भले ही कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों के संदर्भ में सरसरी तौर पर यह ठीक लगता हो। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ऐसा कथन मनु की मूल भावना के ही विरुद्ध है। मनु तो आदियुग के सर्वशिक्षा समर्थक और सर्वप्रेरक शिक्षाप्रेमी राजर्षि

थे। उनके द्वारा द्विजातियों को अधिक महत्त्व दिए जाने और एकजाति (अशिक्षित) को कम महत्त्व देने के मूल में वस्तुतः शिक्षा को ही सम्मान और महत्त्व दिया गया है। आज भी तो यही है। सब जगह उच्चशिक्षितों और प्रशिक्षितों को ही महत्त्व और सम्मान मिल रहा है। सरकार उन्हीं को ऊँची नौकरी देती है।

(अ) मनु आदियुग के सर्वजनशिक्षासमर्थक व प्रेरक राजर्षि

मनु आदियुग के सर्वजन शिक्षा-समर्थक एवं प्रेरक थे, इस तथ्य की पुष्टि मनुस्मृति के एक अन्तःप्रमाण से हो जाती है। इस प्रमाण के समक्ष कोई दूसरा महान् प्रमाण नहीं हो सकता और न कोई विरोधी प्रमाण सामने टिक सकता है। पाठक तटस्थ भाव से इस प्रमाण पर चिन्तन करें और फिर देखें कि मनु शिक्षा के कितने पक्षधर थे। मनु बिना किसी भेदभाव के पृथ्वी के (विश्व के) सभी मानवों का शिक्षा प्राप्ति के लिए आह्वान करते हुए कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ (२.२०)

अर्थात्—'पृथिवी पर निवास करने वाले सभी मनुष्यो! आओ, और इस देश में उत्पन्न विद्वान् और सदाचारी ब्राह्मणों से अपने-अपने जीवनयोग्य कर्त्तव्यों एवं व्यवसायों की शिक्षा प्राप्त कर सुशिक्षित बनो, विद्वान् बनो।'

महर्षि मनु का यह आह्वान कितना महान् है!! इसमें न ब्राह्मण-शूद्र का प्रतिबन्ध है, न स्त्री-पुरुष का भेदभाव है, न आर्य-अनार्य का भेद है, न स्वदेशी-विदेशी का अन्तर है। वह सब मनुष्यों का समान भाव से आह्वान कर रहा है। क्योंकि वह शिक्षा के महत्त्व को समझता है कि शिक्षा के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं बन सकता, कोई उन्नति नहीं कर सकता, परिवार-समाज का कल्याण नहीं हो सकता, राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता, इसलिए मनु के मत में शिक्षा का सर्वोच्च महत्त्व था। उसकी ओर से किसी के लिए कोई बन्धन नहीं है। बस, शिक्षा प्राप्ति का इच्छुक होना चाहिए, चाहे वह पृथ्वी के किसी भाग का निवासी हो। शिक्षा के प्रति इतना उदार भाव रखने वाले राजर्षि से क्या यह आशा की जा सकती है कि वह किसी को शिक्षा से वंचित करेगा? कदापि नहीं। यदि शिक्षा से वंचित करने के

या प्रतिबन्ध डालने के वचन वर्तमान मनुस्मृति में पाये जाते हैं तो वे उक्त आह्वान करने वाले मनु स्वायंभुव के नहीं हो सकते। क्योंकि ऋषियों या विद्वानों के कथनों में परस्परविरोध नहीं होता। हाँ, वे किसी स्वार्थी और पक्षपाती के कथन हो सकते हैं, जो उसने स्वार्थपूर्ति के लिए अवसर पाकर प्रक्षिप्त कर दिये।

महर्षि मनु शिक्षा को सर्वोच्च महत्त्व देते थे और वर्णव्यवस्था में उसे आवश्यक मानते थे। इसका एक ठोस प्रमाण वह है। जहां शिक्षा प्राप्ति न करने वालों के लिए मनु ने कठोर विधान किया है। मनु कहते हैं कि अधिकतम निर्धारित आयुसीमा तक भी जो बालक या युवक शिक्षा प्राप्त्यर्थ उपनयन संस्कार नहीं करायेगा, वह आर्य वर्णव्यवस्था से बहिष्कृत हो जायेगा और वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत सुलभ उसके वैधानिक अधिकार नहीं रहेंगे (मनु० २.३८-४०)। यह सबके लिए अनिवार्य शिक्षा का संकेत है। ऐसा शिक्षाप्रेमी महर्षि किसी को शिक्षा से वंचित करने का विचार भी नहीं कर सकता।

सबके लिए शिक्षा की अनिवार्यता विषयक मनु के सिद्धान्त की पुष्टि कौषीतकि ब्राह्मण के उन निर्देशों से होती है जिनमें कहा गया है कि बालक-बालिका को आठ वर्ष की आयु तक पाठशाला में अवश्य भेज देना चाहिए, जो न भेजें वे माता-पिता, राजा द्वारा दण्डनीय होंगे (उपदेश मंजरी:स्वामी दयानन्द, उप० १०, पृ० ६६)।

वस्तुतः, प्राचीन ऋषियों द्वारा रचित जो आर्षशास्त्र हैं, उनमें कहीं भी किसी मनुष्य को किसी भी प्रकार के धर्मपालन या शिक्षा आदि के अधिकार से वंचित नहीं किया गया है। ये बातें उन नवीन ग्रन्थों में हैं जिनको जन्मना जाति-पांति के समर्थक रूढ़िवादी लोगों ने रचा है। उन्हें शास्त्र ही कहना अनुचित है।

(आ) वेदों में शूद्रों एवं स्त्रियों को धार्मिक अधिकार

महर्षि मनु ने अपनी स्मृति में यह प्रतिज्ञापूर्वक घोषणा की है कि धर्म का मूलस्रोत वेद हैं और मेरी स्मृति वेदों पर आधारित है। देखिए, कुछ प्रमाण—

(क) "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" (२.६)

अर्थात्—सम्पूर्ण वेद धर्म के मूलस्रोत हैं।

(ख) "प्रमाणं परमं श्रुतिः" (२.१३)

अर्थात्—धर्म निश्चय में सर्वोच्च प्रमाण वेद हैं। इसलिए—

"**श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै।**" (२.८)

अर्थात्—विद्वान् वेद को प्रमाण मानकर अपने धर्म का पालन करे।

इन घोषणाओं से स्पष्ट है कि मनु के धर्मवर्णन का आधार वेद हैं और वेद ही परमप्रमाण हैं। वेदों में शूद्रों और स्त्रियों के लिए संध्या, यज्ञ, वेदाध्ययन, उपनयन आदि धार्मिक अनुष्ठानों का स्पष्ट विधान है। उसके विरुद्ध मनु कभी नहीं जा सकते। फिर भी जो शूद्रों और स्त्रियों के वेदाध्ययन, संध्या, यज्ञ आदि निषेधक श्लोक मनुस्मृति में मिलते हैं, वे स्पष्टतः किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बाद में मिलाये गये हैं। मनु का तो वही मन्तव्य है जो वेदों में है। वेद में शूद्रों और स्त्रियों के लिए स्पष्ट विधान इस प्रकार हैं—

(ग) **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।**
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

(यजुर्वेद २६.२)

अर्थात्—परमात्मा कहता है कि मैंने इस कल्याणकारिणी वेद वाणी का उपदेश सभी मनुष्यों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, स्वाश्रित स्त्री-भृत्य आदि और अतिशूद्र आदि के लिए किया है।

(घ) यज्ञियासः पञ्चजनाः मम होत्रं जुषध्वम्। (ऋग्० १०.५३.४)

"**पञ्चजनाः=चत्वारो वर्णाः, निषादः पञ्चमः।**" (निरुक्त ३.८)

अर्थात्—'यज्ञ करने के पात्र पांच प्रकार के मनुष्य अग्निहोत्र किया करें।' निरुक्त शास्त्र में कहा है कि चार वर्ण और पांचवां निषाद, ये पञ्चजन कहलाते हैं।

(ङ) मनु की प्रतिज्ञा है कि उनकी मनुस्मृति वेदानुकूल है, अतः मनु की भी वेदोक्त मान्यताएं हैं। **यही कारण है कि उपनयन-प्रसंग में कहीं भी शूद्र के उपनयन का निषेध नहीं किया है,** क्योंकि शूद्र तो तब कहाता है, जब कोई उपनयन नहीं कराता अथवा उपनयन करने के बाद विधिवत् अध्ययन नहीं करता। वेद के बहुत स्पष्ट आदेश के बाद भी जो लोग शूद्रों के लिए वेदाध्ययन और धर्मपालन का निषेध करते हैं, वे वैदिक नहीं हैं, वेद विरोधी हैं और मानवताविरोधी हैं। वर्तमान मनुस्मृति में इस मत के विरुद्ध यदि कोई विधान पाये जाते हैं तो वे परस्परविरुद्ध होने से प्रक्षिप्त हैं।

(इ) आन्तरिक प्रमाणों में धर्म और शिक्षा का विधान

(क) विवाह में यज्ञ और मन्त्रोच्चारण—मनुस्मृति में चार वर्णों के लिए आठ विवाहों का वर्णन किया है जिनमें आर्यों के लिए चार विवाह श्रेष्ठ बताये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य (३.२०-४२)। ये चारों विवाह यज्ञीय विधि से वेदमन्त्रों के उच्चारणपूर्वक सम्पन्न होते हैं (**"मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः। प्रयुज्यते विवाहेषु"** (५.१५२)=यज्ञानुष्ठान और स्वस्तिवाचक मन्त्रों का पाठ विवाह में किया जाता है)। इस प्रकार शूद्र का विवाह भी यज्ञानुष्ठान और वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक सम्पन्न करना मनु मतानुसार अनिवार्य है। स्पष्ट है कि इस मौलिक विधि में शूद्रों के लिए धार्मिक अनुष्ठानों का विधान है। मनुस्मृति में इस मौलिक विधान और मूल-भावना के विरुद्ध जो श्लोक वर्णित मिलते हैं, वे परस्पर विरुद्ध होने प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं, जो कि बाद के लोगों ने मिलाये हैं।

(ख) मनु ने मनुस्मृति में शूद्रों को धर्म का अधिकार देते हुए कहा है—

"न धर्मात् प्रतिषेधनम्" (१०.१२६)

अर्थात्—'शूद्रों को धार्मिक कार्य करने का निषेध नहीं है' यह कहकर मनु ने शूद्र को धर्मपालन की स्वतन्त्रता दी है।

(ग) **शूद्र भी गुरु हो सकता है**—इस तथ्य का ज्ञान इस श्लोक से होता है जिसमें मनु ने कहा है कि 'शूद्र से भी उत्तम धर्म को ग्रहण कर लेना चाहिए।' देखिए, कितना स्पष्ट प्रमाण है—

"आददीत-अन्त्यादपि परं धर्मम्॥" (२.२३८)

यदि अन्त्य अर्थात् शूद्र को धर्मपालन का अधिकार नहीं होता तो उससे धर्म-ग्रहण करने का उल्लेख मनु क्यों करते? और कैसे उससे धर्म सीखा जा सकता था? इससे पाठक एक और अनुमान लगा सकते हैं कि आर्यों की वर्णव्यवस्था इतनी उदारतापूर्ण और ज्ञानपिपासु थी कि नवीन व उत्तम शिक्षा प्राप्त करते समय उनके समक्ष छोटा-बड़ा, ऊंच-नीच आदि कुछ भी आड़े नहीं आता था।

(ग) ब्राह्मणेतर भी गुरु होता है

यद्यपि व्यावसायिक दृष्टि से अध्यापन कार्य ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है किन्तु एकाधिकार नहीं। अन्य वर्णों के प्रशिक्षण के लिए या विशेष विद्या की प्राप्ति के लिए ब्राह्मणेतर भी गुरु हो सकता है। मनु कहते हैं—

अब्राह्मणादध्ययनम्, आपत्काले विधीयते॥ (२.२४१)

अर्थात्—'ब्राह्मणेतर वर्णस्थ गुरु भी हो सकता है किन्तु उससे आपत्काल अर्थात् ब्राह्मण द्वारा न पढ़ाने पर अथवा गुरु के अभाव में शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।' अध्यापन-कार्य ब्राह्मणों की आजीविका होने के कारण यह कथन है, सैद्धान्तिक दृष्टि से नहीं।

निष्कर्ष यह है कि शिक्षा तथा धर्मानुष्ठान का विधान शूद्रों के लिए भी है। किन्तु उनको वैधानिक शिक्षण तथा धर्मानुष्ठान का अधिकार इस कारण नहीं है क्योंकि वह विधिवत् शिक्षण एवं धर्मानुष्ठान का प्रशिक्षण नहीं लेता है। इसीलिए वह शूद्र कहाता है। इसे हम आज के डॉक्टरों के उदाहरण से समझ सकते हैं। सब डॉक्टर चिकित्सा तो कर सकते हैं किन्तु सब चिकित्सा प्रमाण पत्र देने के वैधानिक अधिकारी नहीं होते। शिक्षा आज भी सभी प्राप्त कर सकते हैं किन्तु सरकार केवल उन्हें ही नौकरी देती है जो विधिवत् शिक्षित-प्रशिक्षित होते हैं। यही नियम अन्य व्यवसायों पर लागू है। यही प्राचीन काल में शूद्र होने वालों पर लागू था।

(ई) शूद्रों के धर्माधिकारों की अनवरत प्राचीन परम्परा

पूर्व प्रदर्शित वेदोक्त मान्यता की परम्परा वेदों से लेकर पुराणकाल तक निरन्तर मिलती है, जिसमें शूद्रों के लिए सुस्पष्ट रूप से धर्मानुष्ठानों का विधान और वर्णन है। मनु इसी वैदिक कालावधि के राजर्षि हैं, अतः उनके द्वारा शूद्रों के यज्ञ आदि का निषेध संभव नहीं माना जा सकता। धर्मानुष्ठान में भेदभाव का कथन पुराणों और पुराणाधारित साहित्य की देन है। फिर भी पुराणों में भेदभाव रहित प्राचीन धर्मानुष्ठान—परम्परा का उल्लेख प्राचीन अंशों में कहीं-कहीं सुरक्षित है। यह इस तथ्य का संकेत है कि पुराणपूर्व काल में धर्मानुष्ठान के विषय में कोई भेदभाव नहीं था और इसका भी कि सभी पुराण शूद्रों के लिए वेद, यज्ञ आदि धार्मिक अधिकारों का निषेध नहीं मानते। यहां उस परम्परा का दिग्दर्शन संक्षेप में कराया जा रहा है जिससे कोई पौराणिक भी यह आग्रह न करे कि शूद्रों के लिए धर्माधिकार के निषेध की परम्परा प्राचीन और पुराणसम्मत है—

(क) शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ में सोमपान के प्रसंग में शूद्र के लिए भी विधान है—

"चत्वारो वै वर्णाः ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रः, न ह एतेषां एकश्चन भवति यः सोमं वमति। स यद् ह एतेषां एकश्चित् स्यात् ह एव प्रायश्चित्तिः।" (५.५.४.९)

अर्थ—वर्ण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमें कोई भी यज्ञ में सोम का त्याग नहीं करेगा। यदि एक भी कोई करेगा तो उसको प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

(ख) ऐतरेय ब्राह्मण में ऐतिहासिक उल्लेख आता है कि कवष ऐलूष नामक व्यक्ति एक शूद्रा का पुत्र था। वह वेदाध्ययन करके ऋषि बना। आज भी ऋग्वेद के १०.३०-३४ सूक्तों पर मन्त्रद्रष्टा के रूप में कवष ऐलूष का नाम मिलता है (२.२९)।

(ग) वाल्मीकीय रामायण में वर्णन है कि दशरथ ने जब अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था तो उसमें शूद्रों को भी बुलाया था। उस समय में वे यज्ञ में उपस्थित होते थे और अन्य वर्णों के साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करते थे (बालकाण्ड १३.१४, २०, २१)

इसी प्रकार पांडवों के अश्वमेघ यज्ञ में भी शूद्र जन आमन्त्रित किये गये थे। वहां भी यज्ञ-भोजन की भागीदारी में कोई भेदभाव नहीं था। (महाभारत, अश्वमेध पर्व ८८.२३; ८९.२६)

(घ) महाभारतकार कहता है कि कर्मभ्रष्ट होकर निम्न वर्ण को ग्रहण करने वालों के लिए यज्ञ, धर्मपालन, वेदाध्ययन का निषेध नहीं है—

धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते।
इत्येते चतुरो वर्णाः येषां ब्राह्मी सरस्वती॥

(शान्तिपर्व १८८.१५)

अर्थ—वर्णान्तर प्राप्त जनों के लिए यज्ञक्रिया और धर्मानुष्ठान का निषेध कदापि नहीं है। वेदवाणी भी चारों वर्ण वालों के लिए है।

(ङ) महाभारत में तो इससे भी आगे बढ़कर दस्युओं के लिए भी इन कर्मों का विधान किया है—

भूमिपानां च शुश्रूषा कर्त्तव्या सर्वदस्युभिः।
वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते॥

(शान्तिपर्व ६५.१८)

अर्थ—दस्युओं को राजाओं की सेवा पक्ष में युद्ध करके करनी चाहिए। वेदाध्ययन, यज्ञ आदि धर्मानुष्ठानों का पालन करना उनका भी विहित धर्म है।

(च) महाभारत में ही एक अन्य स्थान पर यज्ञ में चारों वर्णों की भागीदारी को स्वीकार किया गया है—

"चत्वारो वर्णाः यज्ञमिमं वहन्ति" (वनपर्व १३४.११)

अर्थात्—इस यज्ञ का सम्पादन चारों वर्ण कर रहे हैं।

(छ) भविष्यपुराण शूद्रों को मन्त्र-अध्यापन का आदेश देता है—

"ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः, तेषां मन्त्राः प्रदेयाः।"

(उ० पर्व १३.६२)

(ज) वेदोक्त प्राचीन परम्परा के आधार पर ही ऋषि दयानन्द ने शूद्रों-स्त्रियों को यज्ञ, वेद आदि के अधिकारों की घोषणा करके इनका अधिकार प्रदान किया। उन्होंने तो दस्यु को भी वेद पढ़ने का निर्देश दिया है (ऋग्वेदभाष्य, ७.७९.१, भावार्थ में)।

इस प्रकार शूद्रों द्वारा धर्मानुष्ठान तथा वेदाध्ययन की परम्परा आरम्भिक वैदिक काल से चलती आ रही है। उस काल में शूद्रों पर धार्मिक प्रतिबन्ध का विचार ही नहीं था। अतः उस कालावधि के धर्मप्रवक्ता मनु के वचनों में शूद्रों के धर्माधिकार के निषेध का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। वस्तुस्थिति यह है कि नितान्त नवीन संकीर्ण धारणा प्रक्षेप के रूप में मनु पर थोप दी गयी है।

(उ) शूद्रों के धर्माधिकार में मनुकालीन इतिहास और समाज — व्यवस्था के प्रमाण

जैसा कि प्रथम अध्याय में प्रमाण-सहित दर्शाया गया है कि मनु की वर्णव्यवस्था का प्रसार आदिकालीन विश्व में व्यापक स्तर पर था। मनु ने अपना प्रमुख राज्य अपने बड़े पुत्र प्रियव्रत को सौंपा था। उसने उसको अपने सात पुत्रों में सात विभाग करके बांट दिया। मनुकालीन उन सात द्वीपों अर्थात् देशों में मनु द्वारा निर्धारित समाज—व्यवस्था व्यवहार में थी। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में जो मनुकालीन इतिहास दिया है और सांस्कृतिक विवरण दिया है उसके अनुसार सभी छह देशों में चारों वर्णों को यज्ञानुष्ठान और धर्मपालन का अधिकार था तथा चारों वर्ण यज्ञ करते थे। प्रमाण सहित उसका वर्णन प्रस्तुत है।

पौराणिक जन इस विवरण को ध्यान से पढ़ें क्योंकि वही शूद्रों को यज्ञ आदि का निषेध करते हैं। ये पुराणों के ही प्रमाण हैं—

(क) कुशद्वीप में शूद्रों द्वारा यज्ञानुष्ठान—

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥
तत्र ते तु कुशद्वीपे........यजन्तः क्षपयन्ति ॥

(विष्णु पुराण २.४.३६, ३९)

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कुशद्वीप में रहते हुए यजन करते हैं और इस प्रकार अपनी दुर्भावनाओं को नष्ट करते हैं।

भागवतपुराण में वर्णन है कि चारों वर्णों के लोग परस्पर कहते रहते थे - "**यज्ञेन पुरुषं यज**" (५.२०.१७)= उस परम पुरुष का यज्ञ से यजन करो। वहां चारों वर्णों में यज्ञ बहुप्रचलित था। चारों वर्ण यज्ञप्रेमी थे।

(ख) शाकद्वीप में शूद्रों द्वारा यज्ञानुष्ठान—

शाकद्वीपे तु तैर्विष्णुः यथोक्तैरिज्यते सम्यक् ॥ ६४, ७० ॥

(विष्णुपुराण २.४.६४,७०)

अर्थ—शाकद्वीप में चारों वर्णों के लोग सर्वव्यापक ईश्वर का यज्ञ के द्वारा भलीभांति पूजन करते हैं।

भागवतपुराण में कहा है कि शाकद्वीप के चारों वर्णों के लोग "**भगवन्तम्.............परमसमाधिना यजन्ते**" (५.२०.२२)= परमात्मा की उत्तम समाधि द्वारा उपासना करते हैं।

(ग) प्लक्षद्वीप में शूद्रों द्वारा यज्ञानुष्ठान—

धर्माः पञ्चस्वथैतेषु वर्णाश्रमविभागजाः ॥ १५ ॥
इज्यते तत्र भगवान् तैर्वर्णैरार्यकादिभिः ॥ १९ ॥

(विष्णुपुराण २.४.७, १५, १९)

अर्थ—प्लक्ष द्वीप में वर्ण और आश्रमों के लिए विहित धर्मों का पालन किया जाता है। आर्यक (ब्राह्मण) आदि चारों वर्णों द्वारा यज्ञ करके भगवान् की उपासना की जाती है।

भागवतपुराणकार इससे भी आगे बढ़कर स्पष्ट कथन करता है कि "**त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते**" (५.२०.४) = 'प्लक्षद्वीप में चारों वर्ण उस सूर्य संज्ञक परमात्मा का जो स्वयं वेदरूप है, तीनों वेदों के मन्त्रों से उसका यजन करते हैं।'

यहां शूद्रों द्वारा मन्त्रोच्चारण तथा वेदों से यज्ञानुष्ठान का विधान अतिस्पष्ट है। पौराणिक इस पुराण के वचन को पढ़कर सदा के लिए याद रखें।

(घ) क्रौञ्च द्वीप में शूद्रों द्वारा यज्ञानुष्ठान—

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥ ५३ ॥
यागैः रुद्रस्वरूपश्च इज्यते यज्ञसन्निधौ ॥ ५६ ॥ (२.४.५३, ५६)

अर्थ—क्रौञ्च द्वीप में चार वर्ण हैं। वे रुद्रस्वरूप परमात्मा का अनेक यज्ञों के अनुष्ठानपूर्वक, यज्ञ के माध्यम से यजन करते हैं।

(ङ) जम्बू द्वीप में शूद्रों द्वारा यज्ञानुष्ठान—

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः मध्ये शूद्राश्च भागशः ॥ ९ ॥
पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बू द्वीपे सदेज्यते ॥ २१ ॥ (२.३.९, २१)

अर्थ—जम्बू द्वीप (भारत सहित एशिया) में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र साथ-साथ निवास करते हैं। उन चारों वर्णों के पुरुषों द्वारा परमात्मा का सदा यज्ञ के द्वारा यजन किया जाता है।

(च) शाल्मलिद्वीप में शूद्रों द्वारा यज्ञानुष्ठान—

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति ते ॥ ३० ॥
वायुभूतं मखश्रेष्ठैः यज्विनो यज्ञसंस्थितम् ॥ ३१ ॥

(विष्णुपुराण २.४.३०, ३१)

अर्थ—शाल्मलि द्वीप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी यज्ञशील हैं। वे चारों वर्ण यज्ञ-रूप वायु संज्ञक परमेश्वर की बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा उपासना करते हैं।

यहां अतिस्पष्ट शब्दों में शूद्रों द्वारा बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करना लिखा है। भागवतपुराण तो इस द्वीप की यज्ञ परम्परा का अनुष्ठान स्पष्टतः वेदों द्वारा किया जाना लिखता है। पुराणकार इस वचन के द्वारा निर्विवाद रूप से शूद्रों का वेदाधिकार मानता है —

''तद् वर्षपुरुषाः...भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते।''

(५.२०.११)

अर्थ—'शाल्मलि द्वीप के चारों वर्णों के लोग वेदों में वर्णित, आत्मा में व्यास, सोमस्वरूप भगवान् की उपासना वेदमन्त्रों से यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करके करते हैं।' यहां भी शूद्रों के वेदपाठ और वेद से यज्ञानुष्ठान का स्पष्ट वर्णन है।

यह मनुस्वायम्भुव और उसके पौत्रों के काल का इतिहास है। उस काल में शूद्र यज्ञ भी करते थे और वेदमन्त्रों का वाचन करते थे, यह उद्‌घाटन भागवतपुराणकार कर रहा है। यह इतिहास-प्रमाण यह स्पष्ट करता है कि जिस मनु के शासन में शूद्र यज्ञ और वेदाध्ययन करते थे, वही मनु अपनी स्मृति में उनका निषेध नहीं कर सकता। इससे यह भी संकेत मिलता है कि वर्तमान मनुस्मृति में जहां कहीं शूद्रों के लिए वेद या यज्ञ आदि का निषेध मिलता है, उनका मनु की शासनकालीन व्यवस्था से तालमेल नहीं है, अतः वे सभी श्लोक बाद के लोगों ने रचकर मनुस्मृति में मिलाये हैं।

(४.६) मनु की वर्णव्यवस्था में शूद्रों का सामाजिक सम्मान

(अ) सम्मान-व्यवस्था के आधार

वैदिक या मनु की सम्मान-व्यवस्था में गुणों का ही महत्त्व था। जन्म को बड़प्पन अथवा सम्मान का मानदण्ड कहीं नहीं माना गया है। महर्षि मनु लिखते हैं—

(क) वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद् यदुत्तरम्॥ (२.१३६)

अर्थ—धन, बन्धुपन, आयु, श्रेष्ठ कर्म, विद्वत्ता ये पांच सम्मान के मानदण्ड हैं। इनमें बाद-बाद वाला मानदण्ड अधिक महत्त्वपूर्ण है। अर्थात् सर्वाधिक मान्य विद्वान् है, उसके बाद क्रमशः श्रेष्ठ कर्म करने वाला, आयु में बड़ा, बन्धु-बान्धव, धनवान् हैं। यह सामूहिक सम्मान की मर्यादा है। यदि एक वर्ण वाले एकत्र हों तो वहां सम्मान-व्यवस्था इस प्रकार होगी —

(ख) **विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।**
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः॥ (२.१५५)

अर्थ—ब्राह्मणों में अधिक ज्ञान से, क्षत्रियों में अधिक बल से, वैश्यों में अधिक धन-धान्य से, शूद्रों में अधिक आयु से बड़प्पन और सम्मान होता है।

(आ) शूद्रों को सम्मान-व्यवस्था में छूट—

मनु का शूद्रों के प्रति सद्‌भावपूर्ण एवं मानवीय दृष्टिकोण देखिए कि द्विजवर्णों में अधिक गुणों के आधार पर सम्मान का विधान होते हुए भी उन्होंने शूद्र को विशेष छूट दी है कि यदि शूद्र नब्बे वर्ष

से अधिक आयु का हो तो उसे पहले सम्मान दें—

पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च।
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः, शूद्रोऽपि दशमीं गतः॥ (२.१३७)

अर्थ—तीन द्विज—वर्णों में समान गुण वाले अनेक हों तो जिसमें श्लोक २.१३६ में उक्त पांच गुणों में से अधिक गुण हों, वह पहले सम्माननीय है किन्तु शूद्र यदि नब्बे वर्ष से अधिक आयु का हो तो वह भी पहले सम्माननीय है।

देखिए, मनु के मन में शूद्र के प्रति कितनी उदारता एवं आदरभाव है कि वे अल्पगुणों वाला होते हुए भी शूद्र को ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों द्वारा पहले सम्मान दिलवा रहे हैं! क्या ऐसा उदार मनु शूद्रों के प्रति कठोर और अन्यायपूर्ण विधान कर सकता है? कदापि नहीं। यह एक ही तर्क यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि वर्तमान मनुस्मृति में जो शूद्र-विरोधी कठोर श्लोक मिलते हैं, स्पष्टतः वे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रक्षिप्त हैं। ऐसे उदार हृदय और मानवीय भाव रखने वाले महर्षि मनु का विरोध क्या उचित है?

(इ) शूद्रों का अद्भुत मानवीय सम्मान

शूद्रों के प्रति मनु का कितना अद्भुत मानवीय भाव था इसकी जानकारी हमें मनु के निम्न आदेश में मिलती है। मनु कहते हैं कि अपने भृत्यों (शूद्रों) को पहले भोजन कराने के बाद ही द्विज दम्पती भोजन करें—

भुक्तवत्सु-अथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुंजीयातां ततः पश्चात्-अवशिष्टं तु दम्पती॥ (३.११६)

अर्थ—द्विजों के भोजन कर लेने के बाद और अपने भृत्यों के (जो कि शूद्र होते थे) पहले भोजन कर लेने के बाद ही शेष बचे भोजन को द्विज दम्पती खाया करें।

क्या आज के वर्णरहित विश्व के किसी भी सभ्यमानी समाज में मनु जैसा उच्च मानवीय दृष्टिकोण है? क्या आज के किसी समाज में मनु जैसा उदार-अद्भुत आदेश है? ऐसे अनुपम आदेशों के होते हुए भी मनु पर शूद्र विरोध का आरोप लगाना निरी कृतघ्नता नहीं तो और क्या है? मनुस्मृति में डाले गये, शूद्र विरोधी सभी श्लोकों को प्रक्षिप्त सिद्ध करने के लिए, क्या यह अकेला ही श्लोक पर्याप्त नहीं

है? मनु द्वारा शूद्रों का अद्‌भुत सम्मान विहित करने के बाद भी मनु का विरोध क्यों?

(४.७) मनु की दण्डव्यवस्था और शूद्र

पाठकवृन्द! आइये, सबसे अधिक चर्चित मनुविहित दण्डव्यवस्था पर दृष्टिपात करते हैं। यह कहना नितान्त अनुचित है कि मनु ने शूद्रों के लिए कठोर दण्डों का विधान किया है और ब्राह्मणों को विशेषाधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्रदान की हैं। मनु की दण्डव्यवस्था के मानदण्ड हैं-गुण और दोष; और आधारभूत तत्व हैं-बौद्धिक स्तर, सामाजिक स्तर या पद और उस अपराध का प्रभाव। मनु की दण्डव्यवस्था यथायोग्य दण्डव्यवस्था है, जो मनोवैज्ञानिक है। यदि मनु गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर उच्च वर्णों को अधिक सम्मान और सामाजिक स्तर प्रदान करते हैं तो अपराध करने पर उतना ही अधिक दण्ड भी देते हैं।

(अ) शूद्रों को सबसे कम दण्ड का विधान

मनु की यथायोग्य दण्डव्यवस्था में शूद्र को सबसे कम दण्ड है, और ब्राह्मणों को सबसे अधिक; राजा को उससे भी अधिक। मनु की यह सर्वसामान्य दण्डव्यवस्था है, जो सैद्धान्तिक रूप में सभी दण्डनीय अवसरों पर लागू होती है—

अष्टापाद्यं तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम्
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च॥(८.३३७)
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वाऽपि शतं भवेत्।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिः, तद्दोषगुणविद्धि सः॥(८.३३८)

अर्थात्—किसी चोरी आदि के अपराध में शूद्र को आठ गुणा दण्ड दिया जाता है तो वैश्य को सोलहगुणा, क्षत्रिय को बत्तीसगुणा, ब्राह्मण को चौंसठगुणा, अपितु उसे सौगुणा अथवा एक सौ अट्ठाईसगुणा दण्ड देना चाहिए, क्योंकि उत्तरोत्तर वर्ण के व्यक्ति अपराध के गुण-दोषों और उनके परिणामों, प्रभावों आदि को भली-भांति समझने वाले हैं।

(आ) उच्च वर्णों को अधिक दण्ड

मनु की व्यवस्था में जो ज़ितना बड़ा है उसको उतना अधिक दण्ड विहित है—

पिताऽऽचार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।
नाऽदण्डयो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति॥ (८.३३५)
कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद् दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥ (८.३३६)

अर्थ—'जो भी अपने निर्धारित धर्म=कर्त्तव्य और विधान का पालन नहीं करता, वह अवश्य दण्डनीय है, चाहे वह पिता, माता, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र या पुरोहित ही क्यों न हो। जिस अपराध में सामान्य जन को एक पैसा दण्ड दिया जाये वहां राजा को एक हजार गुणा दण्ड देना चाहिए।' यहां **गुरु** और **पुरोहित** को भी अवश्य दण्ड का विधान है। अतः ब्राह्मण को दण्डरहित छोड़ने का जहां भी कथन है, वह इस मनुव्यवस्था के विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त है।

(इ) धन के लोभ में किसी को दण्ड दिये बिना न छोड़े

इसके साथ ही मनु ने राजा को आदेश दिया है कि उक्त दण्ड से किसी को छूट नहीं दी जानी चाहिए, चाहे वह आचार्य, पुरोहित और राजा के पिता-माता ही क्यों न हों। राजा दण्ड दिये बिना मित्र को भी न छोड़े और कोई समृद्ध व्यक्ति शारीरिक अपराधदण्ड के बदले में विशाल धनराशि देकर छूटना चाहे तो उसे भी न छोड़े।

न मित्रकारणाद् राजा विपुलाद् वा धनागमात्।
समुत्सृजेत् साहसिकान् सर्वभूतभयावहान्॥ (८.३४७)

अर्थ—राजा, प्रजाओं में भय उत्पन्न करने वाले अपराधियों को, अपराध के बदले दण्ड रूप में धन की प्राप्ति के लालच में या मित्र होने के कारण भी न छोड़े, अर्थात् उन्हें अवश्य दण्डित करे।

यह कहना नितान्त असत्य है कि मनु ने उच्चवर्णों को दण्ड में छूट दी है और शूद्र के लिए अधिक दण्ड विहित किया है। यहां किसी को भी दण्ड से छूट नहीं है तथा ब्राह्मणों और राजा को शूद्र से बहुत अधिक दण्ड देने का विधान है। मनु की यह दण्डनीति पूर्वापर प्रसंग से सम्बद्ध है और कारण-कथनपूर्वक वर्णित है, जो न्याययुक्त और तर्कसंगत है। इससे यह प्रकट होता है कि ये मौलिक श्लोक हैं और इनके विरुद्ध ब्राह्मण को दण्डनिषेध करने वाले श्लोक प्रक्षिप्त हैं, क्योंकि वे पक्षपात और अन्यायपूर्ण हैं।

(ई) डॉ० अम्बेडकर का मनु-समर्थक मत—

उपर्युक्त चारों श्लोक डॉ० अम्बेडकर ने अपने ग्रन्थों में अनेक

बार प्रमाण रूप में उद्धृत किये हैं और इनका अर्थ भी लगभग ठीक दिया है (द्रष्टव्य-डॉ० अम्बेडकर वाङ्मय, खण्ड ७, पृ० २५०)

इसका अर्थ यह हुआ कि डॉ० साहब इनको सही मानते हैं। यथायोग्य दण्डव्यवस्था में किसी को आपत्ति भी क्या हो सकती है? डॉ० अम्बेडकर को आपत्ति उन श्लोकों पर है जो पक्षपातपूर्ण दण्ड-व्यवस्था का विधान करते हैं। अब प्रश्न यह है कि इन यथायोग्य दण्डविधानों के होते हुए और उनको प्रमाणरूप में उद्धृत करने पर भी, इनके विरुद्ध श्लोकों को प्रमाण मानकर मनु का विरोध क्यों किया जा रहा है? तर्कसंगत सिद्धान्तों का विरोध करने का क्या औचित्य है? क्या यह डॉ० अम्बेडकर का परस्परविरोध नहीं है?

प्रश्न—मनु की न्याय और दण्डव्यवस्था से क्या आज की न्यायपद्धति और दण्डव्यवस्था अच्छी नहीं है? आज कानून की दृष्टि में सब बराबर हैं, यह कितना न्यायपूर्ण विधान है। मनु ने सबके लिए समान दण्ड क्यों नहीं रखा?

उत्तर—महर्षि मनु की न्याय और दण्ड-व्यवस्था आज की दण्ड और न्याय-व्यवस्था से उत्तम, यथायोग्य, और मनोवैज्ञानिक है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

मनु की दण्डव्यवस्था कितनी मनोवैज्ञानिक, न्यायपूर्ण, व्यावहारिक और श्रेष्ठप्रभावी है, इसकी तुलना आज की दण्डव्यवस्था से करके देखिए, दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। आज की दण्डव्यवस्था का सिद्धान्त है—'कानून की दृष्टि में सब समान हैं।' पहला परस्परविरोध यही हुआ कि पदस्तर और सामाजिक स्तर के अनुसार सुविधा एवं सम्मान-व्यवस्था तो पृथक्-पृथक् हैं और दण्ड एक जैसा। इसे न्याय नहीं कहा जा सकता। उच्च पद और उच्च स्तर पर बैठा व्यक्ति अधिक बौद्धिक विवेक रखता है अधिक सामाजिक सुविधाओं और सम्मान का उपभोग करता है। उसके द्वारा किये गये अपराध का दुष्प्रभाव भी उतना ही तीव्र एवं व्यापक होता है। इस आधार पर यथायोग्य दण्डव्यवस्था यह कहती है कि उसे दण्ड भी अधिक मिलना चाहिए। अधिक सुविधा और सम्मान है तो दण्ड कम क्यों? एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी और एक प्रथम श्रेणी अधिकारी या

शासक सम्मानप्राप्ति में बराबर नहीं तो दण्डप्राप्ति में बराबर कैसे माने जा सकते हैं?

दूसरा परस्परविरोध यह है कि 'समान दण्ड का सिद्धान्त' क्षमता (धन, बल, पद, प्रभाव) की दृष्टि से यथायोग्य दण्ड नहीं है। इसे भी न्याय नहीं माना जा सकता। इसे यों समझिए कि खेत चर जाने पर मेमने को भी एक डण्डा लगेगा, भैंसे, हाथी और शेर को भी। इसका प्रभाव क्या होगा? बेचारा मेमना डण्डे के प्रहार से मिमियाने लगेगा, भैंसे में कुछ हलचल होगी, हाथी और शेर उलटा मारने दौडेंगे। क्या यह वास्तव में समान दण्ड हुआ? नहीं!! समान दण्ड तो वह है, जो लोकव्यवहार में प्रचलित है। मेमने को डंडे से, भैंसे को लाठी से, हाथी को अंकुश से और शेर को हण्टर से वश में किया जाता है। दूसरा उदाहरण लीजिए-एक अत्यन्त गरीब एक हजार के दण्ड को कर्ज लेकर चुका पायेगा, मध्यवर्गीय थोड़ा कष्ट अनुभव करके चुकायेगा और समृद्ध-सम्पन्न जूती की नोंक पर रख देगा। यह समान दण्ड नहीं है। इसी अमनोवैज्ञानिक दण्डव्यवस्था का परिणाम है कि दण्ड की पतली रस्सी में आज गरीब तो फंसे रहते हैं, किन्तु धन-पद-सत्ता-सम्पन्न शक्तिशाली लोग उस रस्सी को तोड़ कर निकल भागते हैं। आंकड़े इकट्ठे करके देख लीजिए, स्वतंत्रता के बाद कितने गरीबों को सजा हुई है, और कितने धन-पद-सत्ता-सम्पन्न लोगों को! आर्थिक अपराधों में समृद्ध लोग अर्थदण्ड भरते रहते हैं और अपराध करते रहते हैं। मनु की यथायोग्य दण्ड-व्यवस्था में ऐसा असन्तुलन और दोष नहीं है।

मनु की दण्डव्यवस्था अपराध की प्रकृति, अपराधी का पद और अपराध के प्रभाव पर निर्भर है। वे गम्भीर अपराध में यदि कठोर दण्ड का विधान करते हैं तो चारों वर्णों को ही करते हैं और यदि सामान्य अपराध में सामान्य दण्ड का विधान करते हैं, तो वह भी चारों वर्णों के लिए सामान्य होता है। शूद्रों के लिए जो पक्षपातपूर्ण कठोर दण्डों का विधान मिलता है वह केवल प्रक्षिप्त श्लोकों में है। वे श्लोक मनुरचित नहीं है, बाद के लोगों द्वारा मिलाये गये हैं।

(४.८) मनु की वर्णव्यवस्था में सबको वर्णपरिवर्तन का अधिकार

(अ) शूद्रों को उच्चवर्ण की प्राप्ति के अवसर

मनु की कर्म पर आधारित वैदिक वर्णव्यवस्था की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि वे प्रत्येक वर्ण को जीवन भर वर्ण-परिवर्तन का अवसर देते हैं। जन्मना जातिवाद के समान जीवन भर एक ही जाति नहीं रहती। शूद्र कभी भी उच्चवर्ण की योग्यता प्राप्त कर उच्चवर्ण में स्थान पा सकता है। देखिये, मनु का कितना स्पष्ट मत है जिसको पढ़कर तनिक भी संदेह नहीं रहता—

(क) शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षतियात् जातमेवं तु विद्यात् वैश्यात् तथैव च॥ (१०.६५)

अर्थ—'शूद्र वर्ण का व्यक्ति ब्राह्मण वर्ण के गुण, कर्म, योग्यता को अर्जित कर ब्राह्मण बन सकता है और ब्राह्मण, गुण, कर्म, योग्यता से हीन होने पर शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में उत्पन्न सन्तानों का भी वर्णपरिवर्तन हो जाता है।'

(ख) शूद्र द्वारा उत्तम वर्ण की प्राप्ति का निर्देश तथा उत्तम वर्णों की प्राप्ति के उपायों का वर्णन मनु ने इस श्लोक में भी किया है—

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुः मदुवागनहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥ (९.३३५)

अर्थ—'सदा शुद्ध-पवित्र रहने वाला, अपने से उत्तम जनों या वर्णों की संगति में रहने वाला, मृदुभाषी, अहंकाररहित, ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों के सेवा कार्य में संलग्न रहने वाला शूद्र अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त कर लेता है।' अर्थात् वह वर्णपरिवर्तन की योग्यता अर्जित करके उत्तम वर्ण को प्राप्त करके द्विजाति वर्ण का हो जाता है।

(शूद्रों द्वारा वर्णपरिवर्तन के ऐतिहासिक उदाहरण 'वर्णव्यवस्था में वर्णपरिवर्तन' शीर्षक में पृ० १०४-१०८ पर द्रष्टव्य हैं)

(आ) डॉ० अम्बेडकर द्वारा मनुप्रोक्त वर्णपरिवर्तन का समर्थन

डॉ० अम्बेडकर ने कई स्थलों पर प्राचीन काल में वर्णपरिवर्तन के अवसरों के अस्तित्व को स्वीकार किया है। वर्णपरिवर्तन का स्पष्ट अभिप्राय है कर्मणा वर्णव्यवस्था, और कर्मणा वर्णव्यवस्था का अभिप्राय है जन्मना जातिवाद का अस्तित्व न होना। इस प्रकार वैदिक और मनु की वर्णव्यवस्था में कहीं भी आपत्ति करने की गुंजाइश नहीं रहती है। वे लिखते हैं—

(क) "इस प्रक्रिया में यह होता था कि जो लोग पिछली बार केवल शूद्र होने के योग्य बच जाते थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य होने के लिए चुन लिए जाते थे, जबकि पिछली बार जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने के लिए चुने गए होते थे, वे केवल शूद्र होने के योग्य होने के कारण रह जाते थे। इस प्रकार वर्ण के व्यक्ति बदलते रहते थे।" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० १७०)

इस सन्दर्भ के अतिरिक्त डॉ० अम्बेडकर ने ऊपर तथा अन्य उन उद्धृत श्लोकों के अर्थों को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया है जिनमें मनु ने वर्णपरिवर्तन का विधान किया है। इसका अभिप्राय यह निकला कि वे श्लोक डॉ० अम्बेडकर को सिद्धान्त रूप में मान्य हैं—

(ख) "जिस प्रकार कोई शूद्र ब्राह्मणत्व को और कोई ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त होता है, उसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न भी प्राप्त होता है।" (मनुस्मृति १०.६५) (वही, खंड १३, पृ० ८५)

(ग) "प्रत्येक शूद्र जो शुचिपूर्ण है, जो अपने से उत्कृष्टों का सेवक है, मृदुभाषी है, अहंकाररहित है, और सदा ब्राह्मणों के आश्रित रहता है, वह उच्चतर जाति प्राप्त करता है।" (मनुस्मृति ९.३३५)(वही, खंड ९, पृ० ११७)

मनु की वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत शूद्र वर्णपरिवर्तन करके उच्च वर्ण प्राप्त कर सकते थे, मनु के इस सिद्धान्त का डॉ० अम्बेडकर स्पष्ट समर्थन कर रहे हैं। मनु आपत्तिरहित सिद्धान्त के प्रदाता हैं, फिर भी मनु का विरोध क्यों? अपने इस परस्परविरोध का उत्तर डॉ० अम्बेडकर को देना चाहिए था किन्तु उन्होंने कहीं नहीं दिया क्या अब डॉ० साहब के अनुयायी या अन्य मनुविरोधी, शूद्र-सम्बन्धी परस्परविरोधों का उत्तर देने का साहस करेंगे?

* * *

पंचम अध्याय

मनुस्मृति में नारी की यथार्थ स्थिति

(५.१) नारी का सामाजिक सम्मान

(अ) नारियों को सर्वोच्च सम्मानदाता मनु

वैदिक परम्परा में 'माता' को प्रथम गुरु मानकर सम्मान दिया जाता था। मनु उसी परम्परा के हैं। महर्षि मनु विश्व के वे प्रथम महापुरुष हैं जिन्होंने नारी के विषय में सर्वप्रथम ऐसा सर्वोच्च आदर्श उद्घोष दिया है, जो नारी की गरिमा, महिमा और सम्मान को सर्वोच्चता प्रदान करता है। संसार के किसी पुरुष ने नारी को इतना गौरव और सम्मान नहीं दिया। मनु का विख्यात श्लोक है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैताः तु न पूज्यन्ते सर्वाः तत्राफला क्रियाः॥ (३.५६)

अर्थ-इसका सही अर्थ है- 'जिस समाज या परिवार में नारियों का आदर-सम्मान होता है, वहां देवता अर्थात् दिव्य गुण, दिव्य सन्तान, दिव्य लाभ आदि प्राप्त होते हैं और जहां इनका आदर-सम्मान नहीं होता, वहां अनादर करने वालों की सब गृह-सम्बन्धी क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं।'

नारियों के प्रति मनु की भावना का बोध कराने वाले, स्त्रियों के लिए प्रयुक्त सम्मानजनक एवं सुन्दर विशेषणों से बढ़कर और कोई प्रमाण नहीं हो सकते। वे कहते हैं कि नारियां घर का भाग्योदय करने वाली, आदर के योग्य, घर की ज्योति, गृहशोभा, गृहलक्ष्मी, गृहसंचालिका एवं गृहस्वामिनी, घर का स्वर्ग और संसारयात्रा की आधार होती हैं—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हाः गृहदीप्तयः।
स्त्रियःश्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥ (मनु० ९.२६)

अर्थात्- 'सन्तान उत्पत्ति करके घर का भाग्योदय करने वाली, आदर-सम्मान के योग्य, गृहज्योति होती हैं स्त्रियां। शोभा, लक्ष्मी और स्त्री में कोई अन्तर नहीं है, वे घर की प्रत्यक्ष शोभा हैं।'

(आ) स्त्रियों को सम्मान में प्राथमिकता—

'लेडीज फस्ट' की सभ्यता के प्रशंसकों को यह पढ़कर और अधिक प्रसन्नता होनी चाहिए कि महर्षि मनु ने सभी को यह निर्देश दिया है कि 'स्त्रियों के लिए पहले रास्ता छोड़ दें। और नवविवाहिताओं, कुमारियों, रोगिणी, गर्भिणी, वृद्धा आदि स्त्रियों को पहले भोजन कराने के बाद फिर पति-पत्नी को साथ भोजन करना चाहिए।' मनु के ये सब विधान स्त्रियों के प्रति सम्मान और स्नेह के द्योतक हैं।' कुछ श्लोक देखिए —

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः।
स्नातकस्य च राज्ञश्च पंथा देयो वरस्य च॥ (२.१३८)
सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणी गर्भिणी स्त्रियः।
अतिथिभ्योऽग्र एवैतान् भोजयेदविचारयन्॥ (३.११४)

अर्थ—'स्त्रियों, रोगियों, भारवाहकों, नब्बे वर्ष से अधिक आयु वालों, गाड़ी वालों, स्नातकों, वर और राजा को पहले रास्ता देना चाहिए।'

'नवविवाहिताओं, अल्पवय कन्याओं, रोगी और गर्भिणी स्त्रियों को, आये हुए अतिथियों से भी पहले भोजन करायें। फिर अतिथियों और भृत्यों को भोजन कराके द्विज-दम्पती स्वयं भोजन करें।'

सम्मान और शिष्टाचार का परिचय ऐसे ही अवसरों पर मिलता है। मनु ने नारी के प्रति शिष्टाचार को बनाये रखा है।

(५.२) नारी का परिवार में महत्त्व

महर्षि मनु के अनुसार नारी का परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान है। महर्षि मनु परिवार में पत्नी को पति से भी अधिक महत्त्व देते हैं। वे पति-पत्नी को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से एक दूसरे को संतुष्ट रखने का दायित्व सौंपते हैं। इसी स्थिति में वे परिवार का निश्चित कल्याण मानते हैं। मनु के कुछ मन्तव्य इस प्रकार हैं—

(अ) पति-पत्नी की पारस्परिक संतुष्टि से ही कुल का कल्याण

संतुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ (३.६०)

अर्थ—'जिस कुल में भार्या=पत्नी के व्यवहार से पति संतुष्ट रहता है और पति के व्यवहार से पत्नी सन्तुष्ट रहती है, उस परिवार का निश्चय ही कल्याण होता है।'

(आ) नारी की प्रसन्नता में परिवार की प्रसन्नता निहित है—

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥ (३.६२)
तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैः नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥ (३.५९)
पितृभिः भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्याः भूषयितव्याश्च बहुकल्याणभीप्सुभिः॥ (३.५५)

अर्थ—'स्त्री के प्रसन्न रहने पर ही सारा कुल प्रसन्न रह सकता है। उसके अप्रसन्न रहने पर सारा परिवार प्रसन्नता-विहीन हो जाता है।'

'इस कारण अपना और अपने परिवार का कल्याण चाहने वालों का कर्त्तव्य है कि वे सत्कार के अवसर पर और खुशियों के अवसर पर स्त्रियों का आभूषण, वस्त्र, खान-पान आदि के द्वारा सदा सत्कार व आदर किया करें।'

'अपना और अपने परिवार का अधिक कल्याण चाहने वाले पिता आदि बड़ों, भाइयों, पति और देवरों का यह कर्त्तव्य है कि वे नारियों का सदा आदर करें और आभूषण, वस्त्र आदि द्वारा उनको सुशोभित रखें।'

(इ) पत्नी के शोकग्रस्त होने से कुल नाश—

शोचन्ति जामयो यत्र विनशत्याशु तद्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैताः वर्धते तद्धि सर्वदा॥ (३.५७)
जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥ (३.५८)

अर्थ—'पत्नियों का आदर क्यों चाहिए? क्योंकि जिन कुलों में अनादरपूर्ण व्यवहार से पत्नियां शोकग्रस्त रहती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। जहां शोकग्रस्त नहीं रहती अर्थात् प्रसन्न रहती हैं वह कुल उत्तरोत्तर उन्नति करता जाता है।'

'अनादर के कारण शोकपीड़ित रहने वाली स्त्रियां जिन घरों को अभिशाप देती हैं अर्थात् कोसती हैं यह समझो कि वह परिवार इस प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे किसी घातक विपदा से लोग नष्ट हो जाते हैं। उस परिवार का चहुंमुखी पतन हो जाता है।'

(ई) पत्नी परिवार के सुख का आधार—

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषारतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह॥ (९.२८)

अर्थ—'सन्तानोत्पत्ति, धर्म कार्यों का अनुष्ठान, उत्तम सेवा, उत्तम रतिसुख, अपना तथा घर के बड़े-बुजुर्गों का सुख और सेवा, निश्चय ही ये सब पत्नी के अधीन हैं अर्थात् पत्नी से ही संभव हैं।

(उ) माता, बहन, पुत्री, भार्या से कलह न करें—

नारियों के सम्मान की रक्षा करते हुए मनु ने परिवार में उनकी स्थिति को सुरक्षित एवं सभ्यतापूर्ण बनाया है। उनके साथ मारपीट की बात तो दूर है, उनके साथ विवाद=कलह अथवा व्यर्थ की बहस भी करने का निषेध किया है—

''माता पितृभ्यां......भार्यया, दुहित्रा विवादं न समाचरेत्।'' (४.१८०)

अर्थ—'माता, पिता, पत्नी पुत्री आदि के साथ कलह न करें। उन पर कोई आरोप न लगायें।' ऐसा करने पर पुरुषों को दण्डित करने का आदेश मनु ने दिया है—

''मातरं पितरं जायाम्......आक्षारयन् शतं दण्ड्यः।'' (८.१८०)

अर्थ-'माता,पिता, पत्नी पर मिथ्या आरोप लगाने वालों को एक सौ पण का दण्ड दिया जाना चाहिए।'

(ऊ) माता, स्त्री आदि का त्याग नहीं किया जा सकता

समाज में स्वार्थी, लोभी मनुष्य भी रहते हैं। वे कभी-कभी स्वार्थ और लोभ से प्रेरित होकर माता, पिता, पत्नी आदि को छोड़ देते हैं। सेवा-संभाल न करनी पड़े, कभी इस कारण उनको अपने से पृथक् कर देते हैं। मनु का यह आदेश है कि माता आदि को किसी भी रूप में नहीं छोड़ा जा सकता। छोड़ने वाला व्यक्ति दण्डनीय होगा। उनके जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए मनु का यह आदेश है—

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति।
त्यजन्-अपतितान् एतान् राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्॥ (८.३८९)

अर्थ—बिना गम्भीर अपराध के माता, पिता, पत्नी, पुत्र का त्याग नहीं किया जा सकता। इनको छोड़ने वाला व्यक्ति राजा द्वारा छह सौ पण के द्वारा दण्डनीय होगा और त्यागे हुए परिजनों को पुनः साथ रखकर उनकी सेवा-संभाल करनी होगी।

(५.३) पुत्र-पुत्री में भेदभाव नहीं

मनुमत से अनभिज्ञ पाठकों को यह जानकर सुखद आश्चर्य होना चाहिये कि मनु ही सबसे पहले वह संविधान-निर्माता हैं जिन्होंने पुत्र-पुत्री की समानता को घोषित करके उसे वैधानिक रूप दिया है—

"यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा" (मनु० ९.१३०)

अर्थात्—"पुत्री, पुत्र के समान होती है क्योंकि वह भी पुत्र के समान आत्मारूप है। इस प्रकार पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं है। अतः उसके साथ कोई भेदभाव भी नहीं किया जाना चाहिए।"

(५.४) युवतियों को वैवाहिक स्वतन्त्रता

(अ) स्वयम्वर विवाह का अधिकार

महर्षि मनु, युवतियों को वैवाहिक स्वतन्त्रता का अधिकार देते हैं। विवाह के विषय में मनु के विचार आदर्श हैं। वे कन्याओं के लिए सोलह वर्ष से अधिक आयु को विवाह-योग्य मानते हैं और सहमतिपूर्वक विवाह को उत्तम मानते हैं। मनु ने कन्याओं को योग्य पति का स्वयं वरण करने का निर्देश देकर स्वयम्वर विवाह का अधिकार एवं उसकी स्वतन्त्रता दी है (९.९०-९१)। विधवा को पुनर्विवाह का भी अधिकार दिया है तथा साथ ही सन्तानप्राप्ति के लिए नियोग की भी छूट है (९.१७६, ९.५६-६३)। उन्होंने विवाह को कन्याओं के आदर-स्नेह का प्रतीक बताया है, अतः विवाह में किसी भी प्रकार के लेन-देन को अनुचित बताते हुए बल देकर उसका निषेध किया है (३.५१-५४)। स्त्रियों के सुखी-जीवन की कामना से उनका सुझाव है कि जीवनपर्यन्त अविवाहित रहना श्रेयस्कर है, किन्तु गुणहीन और दुष्ट पुरुष से विवाह नहीं करना चाहिए (९.८९)। कुछ प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्मात् विन्देत सदृशं पतिम्॥ (९-९०)
अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद् यदि स्वयम्।
नैनः किंचिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति॥ (९-९१)

अर्थ—विवाह करने की इच्छुक कन्या स्वयम्वर विवाह कर सकती है। ऋतुमती होने के तीन वर्ष बाद तक वह विवाह की

प्रतीक्षा करे। उसके बाद उसे स्वयं पति का वरण करके विवाह करने का वैधानिक अधिकार है।

उस अवस्था में यदि वह विधिवत् स्वयम्वर विवाह करती है तो न तो उस कन्या को दोषी माना जायेगा और न पति को दोषी माना जायेगा।

(आ) गुणहीन पुरुष से विवाह नहीं—

महर्षि मनु पुरुष-पक्षपाती और अन्धश्रद्धा पर आधारित आदेश-निर्देश देने वाले विधिदाता नहीं हैं। वे दुष्ट पति को भी पति-परमेश्वर मानने के पक्षधर बिल्कुल नहीं है। उनके आदेश यथायोग्य न्याय पर आधारित होते हैं। मनु का आदेश है कि कन्या चाहे आजीवन कुंवारी रह जाये किन्तु उसे गुणहीन पुरुष से न तो विवाह करना चाहिए और न ऐसे पुरुष को पति स्वीकारना चाहिए—

काममामरणात्तिष्ठेत् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवेनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥ (९.८९)

अर्थ—ऋतुमती होने के बाद तीन वर्ष बीत जाने पर भी चाहे कन्या आजीवन कुंवारी रही रहे किन्तु गुणहीन पुरुष से उसको विवाह कदापि नहीं करना चाहिए।

(५.५) दायभाग में पुत्र-पुत्री का समान अधिकार—

संसार के प्रथम विधिनिर्माता महर्षि मनु ने पैतृक सम्पत्ति में पुत्र-पुत्री को समान अधिकारी माना है। उनका यह मत मनुस्मृति के ९.१३०, १९२ में वर्णित है। मनु के उस मत को प्रमाण मानकर आचार्य यास्क ने निरुक्त में इस प्रकार उद्धृत किया गया है—

(क) **अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः।**
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ (३.४)

अर्थात्—'सृष्टि के प्रारम्भ में स्वायम्भुव मनु ने यह विधान किया है कि धर्म अर्थात् कानून के अनुसार दायभाग = पैतृक सम्पत्ति में पुत्र-पुत्री का समान अधिकार होता है।' इसी प्रकार मातृधन में केवल कन्याओं का अधिकार विहित करके मनु ने परिवार में कन्याओं के महत्त्व में अभिवृद्धि की है (९.१३१)। इस विषय में महर्षि मनु का स्पष्ट मत यह है—

(ख) **यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।**
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्॥ (९.१२९)

अर्थ—'पुत्र अपने आत्मा का ही एक रूप होता है, उस पुत्र के समान ही पुत्री भी आत्मारूप होती है, उनमें कोई भेद नहीं। जब तक आत्मारूप पुत्र और पुत्री जीवित हैं तब तक माता-पिता का धन उन्हें ही मिलेगा, अन्य कोई उसका अधिकारी नहीं है।'

(ग) एक अन्य धन-विभाजन में माता और भाई के धन में क्रमशः पुत्र-पुत्रियों और भाई-बहनों का समान भाग वर्णित किया है —

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः।
भजेरन् मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः॥ (९.१९२)
सोदर्या विभजेरन् तं समेत्य सहिता समम्।
भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः॥ (९.२१२)

अर्थ—'माता के देहान्त के पश्चात् सभी सगे भाई और सगी बहनें मातृधन को बराबर बांट लें।'

'इसी प्रकार किसी अविवाहित भाई के मर जाने पर सभी सगे भाई व बहनें मिलकर उसके धन को बराबर बांट लें।'

इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि मनु ऐसे पहले संविधान-निर्माता हैं जिन्होंने बिना किसी भेदभाव के पुत्र-पुत्री को समान माना है और बराबर दायभाग प्रदान किया है।

(५.६) स्त्रियों की सुरक्षा के विशेष नियम

(अ) स्त्रियों के धन की सुरक्षा के विशेष निर्देश

स्त्रियों को अबला समझकर कोई भी, चाहे वह बन्धु-बान्धव ही क्यों न हों, यदि स्त्रियों के धन पर अधिकार कर लें, तो मनु ने उन्हें चोर सदृश दण्ड से दण्डित करने का आदेश दिया है (९.२१२; ३.५२; ८.२८; ८.२९)। कुछ प्रमाण प्रस्तुत हैं—

वन्ध्याऽपुत्रासु चैवं स्याद् रक्षणं निष्कुलासु च।
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च॥ (८.२८)
जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबान्धवाः।
तान् शिष्यात् चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः॥ (८.२९)

अर्थ—'सन्तानहीन, पुत्रहीन, जिसके कुल में कोई पुरुष न बचा हो, पतिव्रत धर्म पर स्थिर, विधवा और रोगिणी, इन स्त्रियों के धन की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य है।'

'यदि जीते-जी इनके धन को इनके परिजन या सगे-सम्बन्धी ले लें तो उनको धार्मिक राजा चोर के समान मानकर उसी दण्ड से दण्डित करे और उक्त स्त्रियों का धन दिलवाये।'

(आ) नारियों के प्रति किये अपराधों में कठोर दण्ड

स्त्रियों की सुरक्षा के दृष्टिगत नारियों की हत्या और उनका अपहरण करने वालों के लिए मृत्युदण्ड का विधान करके तथा बलात्कारियों के लिए यातनापूर्ण दण्ड देने के बाद देश-निकाला का आदेश देकर मनु ने नारियों की सुरक्षा को सुनिश्चित बनाने का यत्न किया है। नारियों के जीवन में आने वाली प्रत्येक छोटी-बड़ी कठिनाई का ध्यान रखते हुए मनु ने उनके निराकरण हेतु स्पष्ट निर्देश दिये हैं। पुरुषों को निर्देश है कि वे माता, पत्नी और पुत्री के साथ झगड़ा न करें (४.१८०)। नारियों पर मिथ्या दोषारोपण करने वालों, नारियों को निर्दोष होते हुए त्यागने वालों, पत्नी के प्रति वैवाहिक दायित्व न निभाने वालों के लिए दण्ड का विधान है।

(क) स्त्रियों के अपहरण पर दण्ड—

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति॥ (८.३२३)

अर्थ—'स्त्रियों का विशेष रूप से तथा कुलीन पुरुषों का अपहरण करने पर अपराधी को मृत्युदण्ड देना चाहिए। इसी प्रकार रत्न आदि प्रमुख पदार्थों की चोरी-डकैती के अपराध में भी मृत्युदण्ड होना चाहिए।'

(ख) स्त्रियों से बलात्कार करने पर यातनापूर्ण दण्ड—

परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान् नृन् महीपतिः।
उद्वेजनकरैः दण्डैः छिन्नयित्वा प्रवासयेत्॥ (८.३५२)

अर्थ—'राजा, स्त्रियों से बलात्कार और व्याभिचार में संलग्न लोगों के हाथ, पैर काटना आदि यातनापूर्ण दण्ड देकर उन्हें अपने देश से निकाल दे।'

(ग) स्त्रियों की हत्या करने पर दण्ड—

"स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद् द्विट्सेविनस्तथा।" (९.२३२)

अर्थ—'स्त्रियों, बालकों, सदाचारी ब्राह्मणविद्वानों की हत्या करने वालों और शत्रुओं के सहयोगी लोगों को राजा मृत्युदण्ड से दण्डित करे।'

(५.७) मनुस्मृति में पति-पत्नी को त्यागने की परिस्थितियों का वर्णन

(अ) मुख्यतः मनु का यही आदेश है कि विवाह सोच-विचार कर तथा पारस्परिक प्रसन्नता से समान, योग्य युवक और युवती से करें। विवाह के पश्चात् यह आदेश है कि पति पत्नी को और पत्नी पति को संतुष्ट और प्रसन्न रखे। इस प्रकार रहते हुए उन्हें निर्देश है कि वे सदा यह प्रयास रखें कि आजीवन एक-दूसरे से बिछुड़ने का अवसर न आये। मनु का यह प्रथम सिद्धान्त है—

(क) अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एषः धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥ (९.१०१)

(ख) तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ।
यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तौ इतरेतरम्॥ (१०२)

अर्थ—'पति और पत्नी का संक्षेप में सबसे प्रमुख धर्म यह है कि दोनों सदा यह प्रयत्न करें कि मृत्युपर्यन्त दोनों का मर्यादा-अतिक्रमण और पार्थक्य (तलाक) न हो।'

'विवाह करने के बाद स्त्री और पुरुष सदा ऐसा यत्न करें जिससे वे एक-दूसरे से पृथक् न हों और ऐसे कार्य तथा व्यवहार करें जिससे घर में पृथकता का वातावरण ही न बने।'

(आ) किन्तु इन्हीं श्लोकों की भाषा से यह ध्वनित होता है कि किन्हीं विशेष कारणों से अलग होने का अवसर भी अपवाद रूप में होता था। कुछ स्थितियां मनुस्मृति में वर्णित भी हैं जब पति या पत्नी एक दूसरे को छोड़ सकते हैं—

(क) पत्नी को निम्न स्थितियों में छोड़ा जा सकता है—
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥ (९.८१)

अर्थात्—'स्त्री वन्ध्या हो तो आठ वर्ष पश्चात्, स्त्री को सन्तान होकर मर जाती हों तो दश वर्ष पश्चात्, और पत्नी कटुवचन बोलने वाली हो तो उसको शीघ्र ही छोड़ा जा सकता है।'

(ख) पति को निम्न स्थितियों में छोड़ा जा सकता है
प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥ (९.७६)

अर्थात्—'यदि पति परदेस जाकर निम्नलिखित अवधि तक न लौटे तो पत्नी को दूसरा पति करने का अधिकार है—धर्मकार्य के लिए आठ वर्ष तक, विद्याप्राप्ति अथवा प्रसिद्धि प्राप्ति के लिए छह वर्ष तक, धन प्राप्ति के लिए तीन वर्ष तक।'

(इ) किन्तु निर्दोष अवस्था में एक-दूसरे को त्यागने पर दोषी व्यक्ति राजा द्वारा दण्डनीय है—

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति।
त्यजन्नपतितानेतान्, राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्॥ (८.३८९)

अर्थ—'बिना गम्भीर अपराध के माता, पिता, पत्नी, पुत्र का त्याग नहीं किया जा सकता। ऐसा करने पर राजा द्वारा त्यागकर्त्ता को छह सौ पण दण्ड देना चाहिए और त्यक्त परिजनों को साथ रखने का आदेश देना चाहिये।'

(५.८) स्त्रियों के प्रति मनु के दृष्टिकोण की समीक्षा

यहां प्रसंगवश यह स्पष्ट कर देना उपयोगी रहेगा कि मनु गुणों के प्रशंसक हैं और अवगुणों के निन्दक। गुणियों को सम्मानदाता हैं, अवगुणियों को दण्डदाता। यदि उन्होंने गुणवती स्त्रियों को पर्याप्त सम्मान दिया है, तो अवगुणवती स्त्रियों की निन्दा की है और दण्ड का विधान किया है। मनु की एक विशेषता और है, वह यह कि वे नारी की असुरक्षित तथा अमर्यादित स्वतन्त्रता के पक्षधर नहीं हैं, और न उन बातों का समर्थन करते हैं जो परिणाम में अहितकार हैं। इसीलिए उन्होंने स्त्रियों को चेतावनी देते हुए सचेत किया है कि वे स्वयं को पिता, पति, पुत्र आदि की सुरक्षा से अलग न करें, क्योंकि एकाकी रहने से दो कुलों की बदनामी होने की आशंका रहती है (५.१४९; ९.५-६)। देखिए एक प्रमाण—

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद् विरहमात्मनः।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले॥ (५.१४९)

अर्थ—'किसी भी स्त्री को अपने पिता, पति या पुत्र के संरक्षण से रहित अपने आपको एकाकी रखने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि इनसे पृथक् एकाकी रहने से दो कुलों के (अपने और पति के) अपयश की आशंका बनी रहती है।' कारण यह है कि एकाकी रूप में रहते हुए स्त्री अपराधियों से अपनी रक्षा नहीं कर सकती।

किसी स्त्री को पुरुष—संरक्षण के बिना एकाकी रहते देखकर अपराधी उसकी ओर कुदृष्टि रखने लगते हैं।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मनु स्त्रियों की स्वतन्त्रता के विरोधी हैं। इसका निहितार्थ यह है कि नारी की सर्वप्रथम सामाजिक आवश्यकता सुरक्षा की है। वह सुरक्षा उसे, चाहे शासन-कानून प्रदान करे अथवा कोई पुरुष या स्वयं का सामर्थ्य। भोगवादी आपराधिक प्रवृत्तियां उसके स्वयं के सामर्थ्य को सफल नहीं होने देतीं। उदाहरणों से पता चलता है और यह व्यावहारिक सच्चाई है कि शस्त्रधारिणी डाकू स्त्रियों तक को भी पुरुष-सुरक्षा की आवश्यकता रहती है। मनु के उक्त कथन को आज की राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखना सही नहीं है। आज देश में एक शासन है और कानून उसका रक्षक है। फिर भी हजारों नारियां अपराधों की शिकार होकर जीवन की बर्बादी की राह पर चलने को विवश हैं। प्रतिदिन बलात्कार, अपहरण, नारी-हत्या जैसे जघन्य अपराधों की अनेक घटनाएं होती हैं। जब राजतन्त्र में उथल-पुथल होती है, कानून शिथिल पड़ जाते हैं, तब क्या परिणाम होगा, उस स्थिति में मनु के वचनों का मूल्यांकन करके देखना चाहिये। तब यह मानना पड़ेगा कि वे शतप्रतिशत सही हैं।

(५.९) मनुस्मृति में स्त्रियों के शैक्षिक एवं धार्मिक अधिकार

अपनी स्मृति में वेद को परम प्रमाण मानने वाले महर्षि मनु का मन्तव्य वेदोक्त ही है। विश्व के सभी धर्मों में से केवल वैदिक धर्म में और सभी देशों में से भारतवर्ष में स्त्रियों को पुरुष के कार्यों में जो सहभागिता प्राप्त है वह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलती। यहां का कोई भी धार्मिक, सामाजिक या पारिवारिक आयोजन-अनुष्ठान स्त्री को साथ लिए बिना सम्पन्न नहीं होता। यही मनु की मान्यता है। इसलिए उन्होंने प्रत्येक गृह-आयोजन और धर्मानुष्ठान के प्रबन्ध का दायित्व स्त्री को सौंपा है और उसकी सहभागिता से ही प्रत्येक अनुष्ठान करने का निर्देश दिया है। वैदिक-काल में स्त्रियों को वेदाध्ययन, यज्ञोपवीत, यज्ञ आदि के सभी अधिकार प्राप्त थे। वे ब्रह्मा के पद को सुशोभित करती थीं। उच्च शिक्षा प्राप्त करके मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाएं बनती

थीं। वेदों को धर्म में परम—प्रमाण मानने वाले महर्षि मनु वेदानुसार स्त्रियों के सभी धार्मिक तथा उच्च शिक्षा के अधिकारों के समर्थक थे। तभी उन्होंने स्त्रियों के अनुष्ठान मन्त्रपूर्वक करना और धर्मकार्यों का अनुष्ठान स्त्रियों के अधीन रखना, घोषित किया है। प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

(अ) वेदों में स्त्रियों के धार्मिक अधिकार

वेदों के मन्त्रों पर लगभग २६ महिलाओं के नाम का उल्लेख ऋषिका के रूप में मिलता है जो इस तथ्य की जानकारी देता है कि अपनी विद्वत्ता से उन ऋषिकाओं ने उन-उन मन्त्रों का भाष्य अथवा प्रवचन किया था, अतः उनका नाम वहां उल्लिखित है। वे हैं—

घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया (जुहू) अगस्त्यभगिनी, अदिति, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, नदी, यमी, शाश्वती, श्री, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्रि, सूर्या, सावित्री, अदिति (बृहद्देवता २.८२-८४)। इनके अतिरिक्त ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों और महाभारत में दर्जनों वेदविदुषियों का वर्णन है। वेद तो स्पष्ट आदेश देता है —

''**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्**'' (अथर्ववेद ३.५.१८)

अर्थात्—'कन्या ब्रह्मचर्यपूर्वक वेद-शास्त्रों का अध्ययन कर, विदुषी बनकर अपने सदृश पति का वरण करती है, अर्थात् करे।' वह परिवार फिर विद्वानों का, सुशिक्षितों का परिवार बनता है। फिर उस परिवार में शिक्षित, सभ्य, उन्नत सन्तान होती है।

(आ) मनुस्मृति में स्त्रियों के धार्मिक अधिकार

मनु भी वैदिक परम्परा के प्रवर्तक एवं संवाहक हैं। वैदिक परम्परा के अनुसार, मनु ने भी स्त्रियों को धर्मानुष्ठान का अधिकार सौंपा है। घर में आयोजित होने वाले सभी धर्मानुष्ठानों का मुख्य दायित्व पत्नी को ही दिया है। स्पष्ट है कि उन दायित्वों को विदुषी पत्नी ही सम्पन्न कर सकती है, अशिक्षित पत्नी नहीं। अतः नारियों का शैक्षिक एवं धार्मिक अधिकार स्वतः सिद्ध है। मनु का विधान है—

(क) ''अपत्यं धर्मकार्याणि.........दाराधीनः'' (९.२८)

अर्थ—'सन्तानोत्पत्ति और धर्मकार्यों का अनुष्ठान पत्नी के दायित्व के अन्तर्गत आता है। वही इन कार्यों की स्वामिनी है।'

(ख) "शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां परिणाह्यस्य वेक्षणे।" (९.११)

अर्थ—'घर की सजावट-स्वच्छता, धर्मानुष्ठानों का आयोजन, भोजन-पाक, घर की संभाल-निरीक्षण, इन कार्यों को पत्नी के अधिकार में रखे।'

(ग) "तस्मात् साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः" (९.९६)

अर्थ—'वेदशास्त्रों में साधारण से साधारण कर्त्तव्य और धर्मपालन पत्नी को सहभागी बनाकर करने का आदेश दिया है। पत्नी के बिना धर्मानुष्ठान अधूरा है।'

मनु यहां वेद को प्रमाण रूप में घोषित कर रहे हैं और वेद में स्त्रियों के लिए शिक्षा व धर्म का अधिकार विहित है, अतः वेद का विधान ही मनु द्वारा स्वीकृत विधान है।

(घ) इसी प्रकार स्त्रियों की विवाहविधि बिना यज्ञानुष्ठान के सम्पन्न नहीं मानी जाती। यज्ञ में वेदमन्त्रोच्चारण पूर्वक भागीदारी का होना उनके यज्ञाधिकार का साधक है। दैवविवाह तो होता ही यज्ञ-क्रिया-पूर्वक है (३.२८)। एक अन्य स्थान पर मनु कहते हैं कि बिना यज्ञ और वेदमन्त्र-पाठ के विवाहविधि सम्पन्न ही नहीं होती। उसके बिना पत्नी पर पति का 'पतित्व' अधिकार नहीं बनता—

मंगलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः।
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम्॥ (५.१५२)

अर्थ—'विवाह काल में स्वस्ति—परक मन्त्रों का पाठ और वैवाहिक यज्ञ का अनुष्ठान इन स्त्रियों के मंगल के लिए ही किया जाता है। उस यज्ञ में कन्यादान करने पर ही स्त्रियों पर पति का अधिकार बनता है, अन्यथा नहीं।'

(ङ) स्त्रियों की शिक्षा तथा धार्मिक अनुष्ठान की वैदिक परम्परा

(क) मनु वैदिक काल और परम्परा के राजर्षि हैं। स्त्रियों के लिए शिक्षा तथा धार्मिक अनुष्ठानों का निषेध उस काल में नहीं था। अतः स्त्रियों के शिक्षा-निषेधपरक विधान मनुस्मृति के मौलिक विधान नहीं हो सकते। ये प्रक्षेप पौराणिक काल के हैं।

स्त्रियों की शिक्षा और धार्मिक अधिकारों की परम्परा महाभारत काल के भी बहुत बाद तक मिलती है। आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में **"पत्युर्नो यज्ञ संयोगे"** (४.१.३३) सूत्र के द्वारा बतलाया है कि

यज्ञानुष्ठान के द्वारा विवाह होने पर ही कोई स्त्री 'पत्नी' कहलाती है। स्पष्ट है कि वह वैवाहिक यज्ञ के अनुष्ठान में भागीदारी करती है।

(ख) ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में निर्देश दिया है कि गृहस्थ को पत्नी के साथ मिलकर ही यज्ञ करना चाहिए, अकेले नहीं। गृहस्थ होने के उपरान्त व्यक्ति अकेला यज्ञ करता है तो वह यज्ञ पूर्ण नहीं माना जाता —

"अयज्ञियो वैष योऽपत्नीकः" (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३.३.३.१)

अर्थ—'पत्नी के बिना यज्ञ करने वाला गृहस्थ यज्ञ के अयोग्य है।' **"यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तत् मिथुनम्"**

(तैत्तिरीय संहिता ६.२.१.१)

अर्थ—'पत्नी यज्ञ में जो अनुष्ठान करती है वह दोनों के (पति-पत्नी के) लिए है।' इससे बढ़कर पत्नी द्वारा यज्ञ करने का स्पष्ट वर्णन क्या हो सकता है?

(ग) इसका कारण यह है कि विवाह होने के बाद पति-पत्नी एक इकाई बन जाते हैं, उन्हें कोई भी कार्य मिलकर करना चाहिए। एक-दूसरे की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। तैत्तिरीय ब्राह्मण इसलिए घोषणा करता है —

"अर्धो वा एष आत्मनः यत्पत्नी" (३.३.३.५)

अर्थ—'पत्नी पति का आधा भाग है।' जैसे शरीर के आधे भाग की उपेक्षा नहीं की जाती, उसी प्रकार पत्नी की भी सर्वत्र बराबर भागीदारी होती है।

(घ) इसी आधार पर वैदिक परम्परा में अकेला पति यजमान भी नहीं हो सकता। पत्नी के साथ मिलकर ही गृहस्थ यजमान की पूर्णता होती है—

"अर्धात्मा वा एष यजमानस्य यत् पत्नी" (जैमिनीय ब्रा० १.८६)

अर्थ—'पत्नी, यजमान पति का आधा भाग है। पूर्ण यजमान पति-पत्नी के संयुक्त रूप में कहाता है।' इसी प्रकार पत्नी के बिना गृहस्थ का कोई भी धर्मानुष्ठान पूर्ण नहीं होता।

(ङ) यज्ञ में पत्नी का महत्त्व इतना अधिक है कि शास्त्र पत्नी को ही यज्ञ का आधा भाग घोषित करते हैं—

"पूर्वार्धो वै यज्ञस्याध्वर्युः, जघनार्धः पत्नी" (शतपथ० १.९.२.३)

"जघनार्धो वा एष यज्ञस्य यत्पत्नी" (शतपथ १.३.१.१२)

अर्थ—दोनों वाक्यों का एक ही भाव है कि 'यज्ञ का पूर्व भाग पति है तो उत्तर भाग पत्नी है।' यज्ञ न केवल पति-पत्नी का संयुक्त कर्त्तव्य है अपितु वह दोनों के ऐक्य का प्रतीक है।

(ग) इस प्रसंग में एक ऐतिहासिक सन्दर्भ का उल्लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है, जो मनुपत्नी द्वारा वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान और यज्ञ में सस्वर वेदपाठ करने का प्रमाण देता है। सातवें मनु राजर्षि मनु वैवस्वत (मनु श्रद्धादेव) एक बार अपने महल में पहुंचे तो देखते हैं कि उनकी पत्नी यज्ञानुष्ठान कर रही है और उसमें उच्च स्वर से यजुर्वेद के मन्त्रों का पाठ कर रही है। काठक ब्राह्मण इस घटना का उल्लेख इस प्रकार करता है—

''तत् पत्नीं यजुर्वदन्तीं प्रत्यपद्यत। तस्याः वाग् द्यां आतिष्ठत्।''

(३.३०.१)

अर्थात्—'मनु जब महल में पहुंचे तो उनकी पत्नी यज्ञ में यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ कर रही थी। उसकी वाणी आकाश में व्याप्त हो रही थी।'

यह मनुओं की परम्परा थी। जो सातवें मनु तक स्पष्ट शब्दों में प्राप्त है। प्रथम मनु स्वायंभुव के समय तो ऐसी वैदिक परम्पराएं और भी सुदृढ़ रूप में रही होंगी। ऐसी परम्परा का प्रारम्भकर्त्ता राजर्षि मनु स्त्रियों के लिए शिक्षा तथा धार्मिक अधिकारों का निषेध विहित नहीं कर सकता, जो स्वयं वेदानुयायी हो और यज्ञप्रवर्तक हो।

(घ) बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्मविद्या की ज्ञाता गार्गी वाचक्नवी नामक विदुषी का उल्लेख है। उसने ब्रह्मविद्या के सर्वोच्च ज्ञाता ऋषि याज्ञवल्क्य से संवाद किया था (३.६.२;३.८.१)। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी भी ब्रह्मवादिनी थी (२.४.२; ४.५.२)।

(ङ) महाभारत में गार्गी सहित एक दर्जन से अधिक विदुषियों का वर्णन आता है। उनमें सुलभा का विशेष महत्त्व है। अन्य विदुषियां थीं शिवा, सिद्धा, श्रुतावली, विदुला आदि (शान्ति ३२०.८२; उद्योग० १०९.१८; शल्य० ५४.६; उद्योग० १३३ आदि)

(च) आचार्य पाणिनि ने विदुषियों की अनेक उपाधियों का उल्लेख अष्टाध्यायी में किया है जो यह जानकारी उपलब्ध कराता है कि तब तक उस स्तर की विदुषियां होती थीं। मीमांसा दर्शन की काशकृत्स्नि व्याख्या की विशेषज्ञा महिलाओं को 'काशकृत्स्ना' कहा

जाता था। गुरुकुलों में 'आचार्या' और 'उपाध्याया' पदवीधारी अध्यापिकाएं हुआ करती थीं (४.१.४९)। वेदों की शाखा-विशेष का अध्ययन करने के अनुसार कोई 'कठी' तो कोई 'बह्वृची' कहलाती थी (४.१.६३)। युद्ध विद्या में पारंगत क्षत्रिया विदुषियों का उल्लेख भी पाणिनि ने किया है। 'शक्ति' नामक अस्त्र में प्रवीण 'शाक्तिकी' और लाठी चलाने में प्रवीण स्त्री को 'याष्टिकी' कहा गया है। गुरुकुलों के छात्रावास में रहकर अध्ययन करनेवाली छात्राओं के निवास को 'छात्रिशाला' कहा जाता था (६.२.८६)।

(छ) यम स्मृति में कन्याओं के उपनयन और वेदाध्ययन का उल्लेख है—

"पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥"

(ज) हारीत स्मृति में विदुषी महिलाओं के 'ब्रह्मवादिनी' वर्ग का वर्णन आता है (२१.२३)। वे वेदादिशास्त्रों का गम्भीर अध्ययन करके ही ब्रह्मवादिनी बनती थीं।

(झ) स्त्रियों के अध्ययन की परम्परा तो बहुत अर्वाचीन काल तक चली है। शंकराचार्य प्रथम (लगभग २५०० वर्ष पूर्व) के समय मंडन मिश्र की पत्नी भारती ने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया था। राजशेखर की पत्नी अवंतीसुन्दरी प्रसिद्ध विदुषी हुई है। कर्नाटक प्रदेश की राजकुमारी बिज्जिका वैदर्भी काव्यरीति की प्रसिद्ध विदुषी मानी गयी है, जिसका 'कौमुदी महोत्सव' नाटक सुविख्यात है। पांचाली काव्यरीति की विदुषी भट्टारिका का नाम तथा लाटी काव्यरीति के लिए देवी नामक विदुषी का नाम प्रसिद्ध है।

* * *

अध्याय छह

क्या मनुस्मृति में प्रक्षेप हैं?

प्राचीन भारतीय साहित्य की यह एक प्रमाणित ऐतिहासिक सच्चाई है कि उसमें समय-समय पर प्रक्षेप होते रहे हैं। इस विषयक प्रमाण पांडुलिपियों पर आधारित पाठान्तर और लिखित साक्ष्य के रूप में उपलब्ध हैं। अतः अब यह विषय विवाद का नहीं रह गया है। मनुस्मृति के प्रक्षेपों पर विचार करने से पूर्व अन्य संस्कृत साहित्य के प्रक्षेप-विषयक इतिहास पर एक दृष्टिपात किया जाता है जिससे पाठकों को प्रक्षिप्तता की अनवरत प्रवृत्ति का ज्ञान हो सके।

(अ) वाल्मीकीय रामायण—वाल्मीकीय रामायण के आज तीन संस्करण मिलते हैं—१. दाक्षिणात्य, २. पश्चिमोत्तरीय, ३. गौडीय या पूर्वीय। इन तीनों संस्करणों में अनेक सर्गों और श्लोकों का अन्तर है। गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित दाक्षिणात्य संस्करण में अभी भी अनेक ऐसे सर्ग समाविष्ट हैं, जो मूलपाठ के साथ घुल-मिल नहीं पाये, अतः अभी तक उन पर "प्रक्षिप्त सर्ग" लिखा मिलता है (उदाहरणार्थ द्रष्टव्य, उत्तरकाण्ड के ५९ सर्ग के पश्चात् दो सर्ग)।

नेपाल में, काठमांडू स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार में नेवारी लिपि में वाल्मीकीय रामायण की एक पांडुलिपि सुरक्षित है जो लगभग एक हजार वर्ष पुरानी है। उसमें वर्तमान संस्करणों से सैकड़ों श्लोक कम हैं। स्पष्टतः वे एक हजार वर्ष की अवधि में मिलाये गये हैं। समीक्षकों का मत है कि वर्तमान रामायण में प्राप्त बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड के अधिकांश भाग प्रक्षिप्त हैं। आज भी रामायण के आरम्भ में तीन अनुक्रमणिकाएं प्राप्त हैं, जो समयानुसार परिवर्धन का प्रमाण हैं। उनमें से एक में तो स्पष्टतः 'षट्काण्डानि' कहा है (५.२)। अवतारविषयक श्लोक अवतार की धारणा पनपने के उपरान्त प्रक्षिप्त हुए।

इस संदर्भ में एक बौद्ध ग्रन्थ का प्रमाण उल्लेखनीय है। बौद्ध साहित्य में एक 'अभिधर्म महाविभाषा' ग्रन्थ मिलता था। इसका तीसरी शताब्दी का चीनी अनुवाद उपलब्ध है। उसमें एक स्थान पर उल्लेख है कि "रामायण में बारह हजार श्लोक हैं"(डॉ० फादर कामिल

बुल्के, 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास'', पृ० ९४)। आज उसमें पच्चीस हजार श्लोक पाये जाते हैं। यह एक संक्षिप्त जानकारी है कि प्राचीन ग्रन्थों में किस प्रकार प्रक्षेप होते रहे हैं।

(आ) महाभारत

अब मैं महाभारत के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण उद्धृत करने जा रहा हूँ। यह इस तथ्य की जानकारी दे रहा है कि लगभग दो हजार वर्ष पूर्व महाभारत में होने वाले प्रक्षेपों के विरुद्ध तत्कालीन साहित्य में आवाज उठी थी। यह प्रमाण इस बात का भी ज्वलन्त प्राचीन साक्ष्य है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेप बहुत पहले से होते आ रहे हैं। गरुड़ पुराण (तीसरी शती) का निम्नलिखित श्लोक अमूल्य प्रमाण है जो यह बताता है कि दूसरी संस्कृति के जो लोग वैदिक संस्कृति में सम्मिलित हुए, उन्होंने अपने स्वार्थ-साधन के लिए भारतीय ग्रन्थों में प्रक्षेप किये हैं—

दैत्याः सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा,
कलौ युगे भारते षट्सहस्र्याम्।
निष्कास्य कांश्चित्, नवनिर्मितानां
निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम्॥

(ब्रह्मकाण्ड १.५९)

अर्थात्—'कलियुग के इस समय में महाभारत में परिवर्तन-परिवर्धन किया जा रहा है। दैत्यवंशी लोग स्वयं को ब्राह्मणकुल का बताकर कुछ श्लोकों को निकाल रहे हैं और उनके स्थान पर नये-नये श्लोक स्वयं रचकर निरन्तर डाल रहे हैं।'

इसी प्रकार की एक जानकारी महाभारत में दी गयी है कि स्वार्थी लोगों ने वैदिक-परम्पराओं को विकृत कर दिया है और उसके लिए उन्होंने ग्रन्थों से छेड़छाड़ की है। महाभारतकार की पीड़ा देखिए —

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसम्, आसवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे नैतद् वेदेषु विद्यते॥
अव्यवस्थितमर्यादैः विमूढैर्नास्तिकैः नरैः।
संशयात्मभिरव्यक्तैः हिंसा समनुवर्णिता॥

(शान्तिपर्व २६५.९,४)

अर्थात्—'मदिरा-सेवन, मत्स्य-भोजन, पशुमांस-भक्षण और उसकी आहुति, आसव-सेवन, लवणान्न की आहुति, इनका विधान वेदों में (वैदिक संस्कृति में) नहीं है। यह सब धूर्त लोगों ने प्रचलित किया है। मर्यादाहीन, मद्य-मांसादिलोलुप, नास्तिक, आत्मा-परमात्मा के प्रति संशयग्रस्त लोगों ने गुपचुप तरीके से वैदिक ग्रन्थों में हिंसा-सम्बन्धी वर्णन मिला दिये हैं।'

महाभारत-महाकाव्य की कलेवर-वृद्धि का इतिहास स्वयं वर्तमान महाभारत में भी दिया गया है। महाभारत युद्ध के बाद महर्षि व्यास ने जो काव्य लिखा उसका नाम 'जयकाव्य' था **''जयो नामेतिहासोऽयम्''** (आदि० १.१; ६२.२०) और उसमें छह या आठ हजार श्लोक थे—**''अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च''** व्यासशिष्य वैशम्पायन ने उसको बढ़ाकर २४००० श्लोक का काव्य बना दिया और उसका नाम 'भारत संहिता' रख दिया—**''चतुर्विंशती साहस्त्रीं चक्रे भारतसंहिताम्''** (आदि० १.१०२)। सौति ने इसमें परिवर्धन करके इसे एक लाख श्लोकों का बना दिया और इसका नाम 'महाभारत' रखा- **''शतसाहस्रमिदं काव्यं मयोक्तं श्रूयतां हि वः''** (आदि० १.१०९)। यह 'जय' से महाभारत बनने की महाभारत में वर्णित कथा है। लोग अपना पृथक् काव्य बनाने के बजाय उसी में वृद्धि करते गये। इससे उसकी प्रामणिकता का ह्रास हुआ, और ऐतिहासिकता विनष्ट हो गयी।

(इ) गीता—गीता महाभारत का ही अंश है। उसकी वर्तमान विशालता व्यावहारिक नहीं है। युद्धभूमि में कुछ मिनटों के लिए दिया गया उपदेश न तो इतना विस्तृत हो सकता है और न प्रकरण के अनुकूल। यदि उसको 'संक्षेप का विस्तार' कहा जायेगा तो वह व्यास या कृष्णप्रोक्त नहीं रह जायेगा। प्रत्येक दृष्टि से वह परिवर्धित अर्थात् प्रक्षिप्त रूप है।

(ई) निरुक्त—आचार्य यास्ककृत निरुक्त के १३-१४ अध्यायों के विषय में समीक्षकों का यह मत है कि वे अभाव की पूर्ति के लिए बाद में जोड़े गये हैं। उन सहित निरुक्त परिवर्धित संस्करण है।

(उ) चरकसंहिता - महर्षि अग्निवेश प्रणीत चरकसंहिता में भी उनके शिष्यों ने अन्तिम अध्यायों का कुछ भाग अभाव की पूर्ति की

दृष्टि से संयुक्त किया है। किन्तु वहां यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि यह भाग अमुक का है। फिर भी उससे परिवर्धन की प्रवृत्ति और इतिहास की जानकारी मिलती है।

(ऊ) मनुस्मृति—इसी प्रकार मनुस्मृति में भी समय-समय पर प्रक्षेप हुए हैं। अपितु, मनुस्मृति में अधिक प्रक्षेप हुए हैं क्योंकि उसका सम्बन्ध हमारी दैनंदिन जीवनचर्या से था और उससे जीवन व समाज सीधा प्रभावित होता था, अत: उसमें परिवर्तन भी किया जाना स्वाभाविक था। जैसे भारत के संविधान में छियासी के लगभग संशोधन आवश्यकता के नाम पर आधी शती में हो चुके हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति में निम्नलिखित प्रमुख कारणों के आधार पर परिवर्तन-परिवर्धन किये जाते रहे—

१. अभाव की पूर्ति के लिए
२. स्वार्थ की पूर्ति के लिए
३. गौरव-वृद्धि के लिए
४. विकृति उत्पन्न करने के लिए

ये प्रक्षेप (परिवर्तन या परिवर्धन) अधिकांश में स्पष्ट दीख जाते हैं। महर्षि मनु सदृश धर्मज्ञ और विधिप्रदाता की रचना में रचनादोष नहीं हो सकते, किन्तु प्रक्षिप्तों के कारण आ गये हैं। वे प्रक्षिप्त कहीं विषयविरुद्ध, कहीं प्रसंगविरुद्ध, कहीं परस्परविरुद्ध, कहीं शैलीविरुद्ध रूप में दीख रहे हैं। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली-६ से प्रकाशित मेरे शोध और भाष्ययुक्त 'सम्पूर्ण मनुस्मृति' संस्करण में मैंने उनकी पहचान निम्नलिखित सात साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर की है। वे हैं—

१. विषयविरोध
२. प्रसंगविरोध
३. अवान्तरविरोध
४. पुनरुक्ति
५. शैलीविरोध
६. वेदविरोध

प्रक्षिप्तानुसन्धान के इन साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर मनुस्मृति के उपलब्ध २६८५ श्लोकों में से १४७१ प्रक्षिप्त सिद्ध हुए हैं

और १२१४ मौलिक। विस्तृत समीक्षा के लिए मनुस्मृति का उक्त संस्करण पठनीय है। उसमें प्रत्येक प्रक्षिप्त—सिद्ध श्लोक पर समीक्षा में उपर्युक्त तटस्थ मानदण्डों के आधार पर प्रक्षेप का कारण दर्शाया गया है।

मनुस्मृति में प्रक्षेप होने की पुष्टि अधोलिखित प्रमाण भी करते हैं और प्रायः सभी वर्गों के विद्वान् भी करते हैं—

(क) मनुस्मृति-भाष्यकार मेधातिथि (९वीं शताब्दी) की तुलना में कूल्लूक भट्ट (१२वीं शताब्दी) के संस्करण में एक सौ सत्तर श्लोक अधिक उपलब्ध हैं। वे तब तक मूल पाठ के साथ घुल-मिल नहीं पाये थे, अतः उनको बृहत् कोष्ठक में दर्शाया गया है। अन्य टीकाओं में भी कुछ-कुछ श्लोकों का अन्तर है।

(ख) मेधातिथि के भाष्य के अन्त में एक श्लोक मिलता है, जिससे यह जानकारी मिलती है कि मनुस्मृति और उसका मेधातिथि भाष्य लुप्तप्रायः था। उसको विभिन्न संस्करणों की सहायता से सहारण राजा के पुत्र राजा मदन ने पुनः संकलित कराया। ऐसी स्थिति में श्लोकों में क्रमविरोध, स्वल्प—आधिक्य होना सामान्य बात है—

मान्या कापि मनुस्मृतिस्तदुचिता व्याख्यापि मेधातिथेः।
सा लुप्तैव विधेर्वशात् क्वचिदपि प्राप्यं न तत्पुस्तकम्।
क्षोणीन्द्रो मदनः सहारणसुतो देशान्तरादाहृतैः,
जीर्णोद्धारमचीकरत्तत इतस्तत्पुस्तकैः लेखितैः॥

(उपोद्घात, मेधातिथिभाष्य, गंगानाथ झा खण्ड ३, पृ० १)

अर्थात्—'समाज में मान्य कोई मनुस्मृति थी, उस पर मेधातिथि का भाष्य भी था किन्तु वह दुर्भाग्य से लुप्त हो गयी। वह कहीं उपलब्ध नहीं हुई। सहारण के पुत्र राजा मदन ने विभिन्न देशों से उसके संस्करण मंगाकर उसका जीर्णोद्धार कराया और विभिन्न पुस्तकों से मिलान कराके यह भाष्य तैयार कराया।

मनुस्मृति के स्वरूप में परिवर्तन का यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

(ग) आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में गत शती में सर्वप्रथम यह सुस्पष्ट घोषणा की थी कि मनुस्मृति में अनेक प्रक्षेप ऐसे किये गये हैं, जैसे कि ग्वाले दूध में पानी की

मिलावट करते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों में कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों का कारणपूर्वक दिग्दर्शन भी कराया है। उन्होंने घोषणा की थी कि मैं प्रक्षेपरहित मनुस्मृति को ही प्रमाण मानता हूं (ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ग्रन्थप्रामाण्य विषय)

(घ) सम्पूर्ण भारतीय प्राचीन साहित्य में प्रक्षिप्तों के होने के यथार्थ को सुप्रसिद्ध सनातनी आचार्य स्वामी आनन्दतीर्थ 'महाभारत तात्पयार्थ—निर्णय' में स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं—

क्वचिद् ग्रन्थान् प्रक्षिपन्ति क्वचिदन्तरितानपि,
कुर्युः क्वचिच्च व्यत्यासं प्रमादात् क्वचिदन्यथा।
अनुत्सन्नाः अपि ग्रन्थाः व्याकुलाः सन्ति सर्वशः,
उत्सन्नाः प्रायशः सर्वे, कोट्यंशोऽपि न वर्तते॥ (अ०२)

अर्थ—'कहीं ग्रन्थों में प्रक्षेप किया जा रहा है, कहीं मूल पाठों को बदला जा रहा है, कहीं आगे-पीछे किया जा रहा है, कहीं प्रमादवश अन्यथा लेखन किया जा रहा है, जो ग्रन्थ नष्ट होने से बच गये हैं वे इन पीड़ाओं से व्याकुल हैं (=क्षत-विक्षत हैं)। अधिकांश ग्रन्थों को नष्ट किया जा चुका है। अब तो साहित्य का करोड़वां भाग भी विशुद्ध नहीं बचा है।'

यही क्षत-विक्षत स्थिति मनुस्मृति की हुई है।

(ङ) प्रथम अध्याय में पृ० १२ पर चीन की दीवार से प्राप्त जिस चीनी भाषा के ग्रन्थ की जानकारी दी गयी है। उसमें कहा गया है कि मनुस्मृति में ६८० श्लोक हैं। यह अत्यन्त प्राचीन सूचना है। यदि इसको सही मानें तो अभी मनुस्मृति के प्रक्षेपानुसन्धान की और आवश्यकता है।

(च) पाश्चात्य शोधकर्त्ता वूलर, जे. जौली, कीथ, मैकडानल आदि ने मनुस्मृति-सहित प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेपों का होना सिद्धान्ततः स्वीकार किया है। जे. जौली ने कुछ प्रक्षेप दर्शाये भी हैं।

(छ) मनुस्मृति के कुछ भाष्यकारों एवं समीक्षकों ने प्रक्षिप्त श्लोकों की संख्या इस प्रकार मानी है—

विश्वनाथ नारायण माण्डलीक	१४८
हरगोविन्द शास्त्री	१५३
जगन्नाथ रघुनाथ धारपुरे	१००
जयन्तकृष्ण हरिकृष्णदेव	५९

(ज) मनुस्मृति के प्रथम पाश्चात्त्य समीक्षक न्यायाधीश सर विलियम जोन्स उपलब्ध २६८५ श्लोकों में से २००५ श्लोकों को प्रक्षिप्त घोषित करते हैं। उनके मतानुसार ६८० श्लोक ही मूल मनुस्मृति में थे।

(झ) महात्मा गांधी ने अपनी 'वर्णव्यवस्था' नामक पुस्तक में स्वीकार किया है कि वर्तमान मनुस्मृति में पायी जाने वाली आपत्तिजनक बातें बाद में की गयी मिलावटें हैं।

(झ) भारत के पूर्व राष्ट्रपति और दार्शनिक विद्वान् डॉ० राधाकृष्णन्, श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि भी मनुस्मृति में प्रक्षेपों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

(ए) डॉ० अम्बेडकर और प्रक्षेप

मैंने पहले दिखाया है कि डॉ० अम्बेडकर ने अपने ग्रन्थों में मनुस्मृति के श्लोकार्थ प्रमाण रूप में उद्धृत किये हैं उनमें बहुत सारे परस्परविरोधी विधान वाले हैं (द्रष्टव्य 'डॉ० अम्बेडकर के लेखन में परस्परविरोध' शीर्षक अध्याय ९)। आश्चर्य है कि फिर भी उन्होंने मनुस्मृति में परस्परविरोध नहीं माना। यदि वे मनुस्मृति में परस्पर — विरोध मान लेते तो उन्हें दो में से किसी एक श्लोक को प्रक्षिप्त मानना पड़ता। उस स्थिति में मनुस्मृति में प्रक्षेपों का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता। प्रक्षेपों की स्वीकृति से मनुस्मृति की विशुद्ध प्राचीन मान्यताएं स्पष्ट हो जातीं। तब न उग्र विरोध का अवसर आता और न विरोध का बवंडर उठता। किन्तु विडम्बना तो यह है कि डॉ० अम्बेडकर ने प्रक्षेपों के अस्तित्व की चर्चा भी नहीं की। प्रश्न उठता है कि क्या उन्हें प्रक्षेपों की पहचान नहीं हो पायी ?

यह विश्वसनीय नहीं है कि उन्हें परस्परविरोधी प्रक्षेपों का ज्ञान न हो, क्योंकि उन्होंने तो वेद से लेकर पुराणों तक प्रायः सभी ग्रन्थों में प्रक्षेप के अस्तित्व को स्वीकार किया है और उन पर दीर्घ चर्चा की है। देखिए—

(क) वेदों में प्रक्षेप मानना

"पुरुष सूक्त के विश्लेषण से क्या निष्कर्ष निकलता है ? पुरुष सूक्त ऋग्वेद में एक क्षेपक है।" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड.१३, पृ० ११२)

"ऐसा प्रतीत होता है कि वे दो मन्त्र (११ और १२) बाद में सूक्त के बीच जोड़ दिए गए। अतएव केवल पुरुष सूक्त ही बाद में नहीं जोड़ा गया, उसमें समय-समय पर और मन्त्र भी जुड़ते रहे। कुछ विद्वानों का तो यह भी मत है कि पुरुषसूक्त तो क्षेपक है ही, उसके कुछ मन्त्र और भी बाद में इसमें जोड़े गए।" (वही, खंड १३, पृ०१११)

वेदों में प्रक्षेप मानने की अवधारणा इस कारण गलत है क्योंकि बहुत प्राचीन काल से वेदव्याख्या ग्रन्थों में वेदों के एक-एक सूक्त, अनुवाक, पद और अक्षर की गणना की हुई है, जो लिपिबद्ध है। कुछ भी छेड़छाड़ होते ही उससे पता चल जायेगा। इसी प्रकार जटापाठ, घनपाठ आदि अनेक पाठों की पद्धति आविष्कृत है जिनसे वेदमन्त्रों का स्वरूप सुरक्षित बना हुआ है।

(ख) वाल्मीकीय रामायण में क्षेपक मानना

"महाभारत की तरह रामायण की कथा वस्तु में भी कालान्तर में क्षेपक जुड़ते गए।" (अंबेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० १२० तथा पृ० १३०)

(ग) महाभारत में क्षेपक मानना

"व्यास के 'जय' नामक लघु काव्यग्रन्थ में ८,८०० से अधिक श्लोक नहीं थे। वैशम्पायन के 'भारत' में यह संख्या बढ़कर २४००० हो गई। सौति ने श्लोकों की संख्या में विस्तार किया और इस तरह महाभारत में श्लोकों की संख्या बढ़कर ९६,८३६ हो गई।" (वही, खंड ७, पृ० १२७)

(घ) गीता में क्षेपक मानना

"मूल भगवद्गीता में प्रथम क्षेपक उसी अंश का एक भाग है जिसमें कृष्ण को ईश्वर कहा गया है। ..... दूसरा क्षेपक वह भाग है जहां उसमें पूर्व मीमांसा के सिद्धान्तों की पुष्टि के रूप में सांख्य और वेदान्तदर्शन का वर्णन है, जो उनमें पहले नहीं था।.........तीसरे क्षेपक में वे श्लोक आते हैं, जिनमें कृष्ण को ईश्वर के स्तर से परमेश्वर के स्तर पर पहुंचा दिया गया है।"(वही,खंड ७, पृ०२७५)

(ङ) पुराणों में क्षेपक मानना

"ब्राह्मणों ने परम्परा से प्राप्त पुराणों में अनेक नए अध्याय जोड़ दिए, पुराने अध्यायों को बदलकर नए अध्याय लिख दिए और पुराने नामों से ही अध्याय रच दिये। इस तरह इस प्रक्रिया से कुछ पुराणों की पहले वाली सामग्री ज्यों की त्यों रही, कुछ की पहले वाली सामग्री लुप्त हो गई, कुछ में नई सामग्री जुड़ गई तो कुछ नई रचनाओं में ही परिवर्तित हो गए।" (वही खंड ७, पृ० १३३)

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि डॉ० अम्बेडकर प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रक्षेपों की स्थिति को समझते थे। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि उन्होंने जानबूझकर मनुस्मृति में प्रक्षेप नहीं माने।

अब यह नया प्रश्न उत्पन्न होता है कि उन्होंने जानबूझकर प्रक्षेप क्यों नहीं माने? उसमें क्या रहस्य हो सकता है?

इसका उत्तर कठोर अवश्य है, किन्तु है सत्य। उन्होंने मनुस्मृति में प्रक्षेप इस कारण स्वीकार नहीं किये क्योंकि उसके स्वीकार करने पर उनका 'विरोध के लिए विरोध' का आन्दोलन समाप्त हो जाता। वे दलितों के सामाजिक और राजनीतिक नेता के रूप में स्वयं को स्थापित कर रहे थे। इसके लिए मनु और मनुस्मृति-विरोध का अस्त्र सफलता की गारंटी था। वे इसका किसी भी कीमत पर त्याग नहीं करना चाहते थे। मनु, मनुस्मृति और आर्य (हिन्दू) धर्म का विरोध दलितों का प्रिय विषय बन गया था क्योंकि दलित जन पौराणिक हिन्दू समुदाय के पक्षपातों और अत्याचारों से पीड़ित और क्रोधित थे। इसको सीढ़ी बनाकर डॉ० अम्बेडकर भविष्य की उचाइयों पर चढ़ते गये।

कुछ लोग यहां यह कह सकते हैं कि दलितों के हित के लिए ऐसा करना आवश्यक था। किन्तु यह कथन दूरदर्शितापूर्ण नहीं है। डॉ० अम्बेडकर का विरोध सकारात्मक कम, प्रतिशोधात्मक अधिक था। वह विरोध दलितों को उस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में ले गया जिससे भारत में एक नये वर्गसंघर्ष की परिस्थिति की आशंका उत्पन्न हो गयी है। डॉ० अम्बेडकर अपने मन में हिन्दुओं के प्रति गहरी घृणा पाल चुके थे, हिन्दू धर्म को त्यागने का निश्चय कर चुके थे; अतः उन्होंने हिन्दू-दलित सौहार्द को बनाये रखने की चिन्ता की ही नहीं।

यह स्थिति भारतीय समाज और राष्ट्र के लिए हितकर न थी, न रहेगी।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति की यथार्थ साहित्यिक स्थिति को, तर्क को, प्रमाण को, परम्परा को, तथ्यों को, तटस्थ समीक्षा को, सत्य के अनुसन्धान के दावे को तिलांजलि दे डाली। उन्होंने विरोध करने के अतिरिक्त, सभी आपत्तियों-आरोपों के उत्तर देने के दायित्व से भी चुप्पी साध ली। उनके अनुयायियों ने उनका अनुकरण किया। आज भी स्थिति यह है कि उनके समर्थक या अनुयायी मनु और मनुस्मृति का विरोध तो करते हैं किन्तु किसी भी शंका का तर्क और प्रमाण से उत्तर नहीं देते। प्रक्षिप्त और मौलिक श्लोकों के अन्तर को वे समझना और मानना नहीं चाहते। सत्य-परिस्थिति से मुंह मोड़कर आज भी वे केवल 'विरोध के लिए विरोध' को अपना लक्ष्य मानकर चल रहे हैं।

सच्चाई यह है कि डॉ० अम्बेडकर सहित मनुस्मृति-विरोधी सभी लेखकों में कुछ एकांगी और पूर्वाग्रहयुक्त बातें समानरूप से पायी जाती हैं। उन्होंने कर्मणा वर्णव्यवस्था को सिद्ध करने वाले आपत्तिरहित श्लोकों, जिनमें स्त्री-शूद्रों के लिए हितकर और सद्‌भावपूर्ण बाते हैं, जिन्हें कि पूर्वापर प्रसंग से सम्बद्ध होने के कारण मौलिक माना जाता है, को मान्य ही नहीं किया । केवल आपत्तिपूर्ण श्लोकों, जो कि प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं, को मान्य करके निन्दा-आलोचना की है। **उन्होंने इस शंका का समाधान नहीं किया है कि एक ही लेखक की पुस्तक में, एक ही प्रसंग में, स्पष्टतः परस्परविरोधी कथन क्यों पाये जाते हैं? और आपने दो कथनों में से केवल आपत्तिपूर्ण कथन को ही क्यों ग्रहण किया? दूसरों की उपेक्षा क्यों की?** यदि वे लेखक इस प्रश्न पर चर्चा करते तो उनकी आपत्तियों का उत्तर उन्हें स्वतः मिल जाता। न आक्रोश में आने का अवसर आता, न विरोध का, अपितु बहुत-सी भ्रान्तियों से बच जाते।

(च) निष्कर्ष

मनुस्मृति में समय-समय पर कांट-छांट, परिवर्तन-परिवर्धन के प्रयास हुए हैं। फिर भी मनु की मूल भावना के द्योतक श्लोक यत्र-तत्र संदर्भों में मिल जाते हैं। उनसे उनकी मौलिकता का ज्ञान हो जाता है।

संक्षेप में, प्रस्तुत विषय के मौलिक और प्रक्षिप्त श्लोकों का निर्णय इस प्रकार है—

१. मनु की व्यवस्था 'वैदिक वर्णव्यवस्था' है (डॉ. अम्बेडकर ने भी पूर्व उद्धृत उद्धरणों में इसे स्वीकार किया है), अतः गुण-कर्म-योग्यता के सिद्धान्त पर अधारित जो श्लोक हैं वे मौलिक हैं। उनके विरुद्ध जन्मना जातिविधायक और जन्म के आधार पर पक्षपात का विधान करने वाले श्लोक प्रक्षिप्त हैं क्योंकि वह सारा प्रसंग परवर्ती है।

मनु के समय जातियां नहीं बनी थीं। यही कारण है कि मनु ने वर्णों की उत्पत्ति के प्रसंग में जातियों की गणना नहीं की है। इस शैली और सिद्धान्त के आधार पर वर्णसंकरों से सम्बन्धित सभी श्लोक प्रक्षिप्त हैं और उनके आधार पर वर्णित जातियों का वर्णन भी प्रक्षिप्त है क्योंकि वह सारा प्रसंग परवर्ती है।

२. इस पुस्तक में उद्धृत मनु की यथायोग्य दण्डव्यवस्था, जो कि उनका 'सामान्य कानून' है, मौलिक है; उसके विरुद्ध पक्षपातपूर्ण दण्डव्यवस्था-विधायक श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

३. इस पुस्तक में उद्धृत शूद्र की परिभाषा, शूद्रों के प्रति सद्भाव, शूद्रों के धर्मपालन, वर्णपरिवर्तन आदि के विधायक श्लोक मौलिक हैं; उनके विपरीत जन्मना शूद्रनिर्धारक, स्पृश्यापृश्य, ऊंच-नीच, अधिकारों के शोषण आदि के विधायक श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

४. इस लेख में उद्धृत नारियों के सम्मान, स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा के विधायक श्लोक मौलिक हैं, इसके विपरीत प्रक्षिप्त हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि मनु एवं मनुस्मृति को मौलिक रूप में पढ़ा और समझा जाये और प्रक्षिप्त श्लोकों के आधार पर किये जाने विरोध का परित्याग किया जाये। आदिविधिदाता राजर्षि मनु एवं आदि संविधान 'मनुस्मृति' गर्व करने योग्य हैं, निन्दा करने योग्य नहीं। भ्रान्तिवश हमें अपनी अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण आदितम धरोहर को निहित स्वार्थमयी राजनीति में घसीटकर उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

* * *

अध्याय सात

डॉ० अम्बेडकर द्वारा मनुस्मृति एवं आर्य (हिन्दू) साहित्य के विरोध के कारण और उनकी समीक्षा

डॉ. अम्बेडकर के समग्र वाङ्मय को पढ़ने के उपरान्त यह निष्कर्ष सामने आता है कि डॉ० अम्बेडकर आरम्भ में प्राचीन भारतीय साहित्य के शोधात्मक और समीक्षात्मक ध्येय को लेकर चले थे और वे प्राचीन समाजव्यवस्था की मौलिकता को, विशेषतः उस अवस्था में शूद्रों की वास्तविक स्थिति को पाठकों के समक्ष रखकर जातिवादी समाज में विचार-परिवर्तन करना चाहते थे। यह उनका पहला चरण था। फिर दूसरा चरण शुरू हुआ जिसमें अकस्मात् उनका ध्येय घोर विरोधी स्वर में परिवर्तित हो गया और वे उसी को अपना पक्ष मानकर केवल खण्डनात्मक व प्रतिशोधात्मक लेखन करने लगे। इसके कुछ मनोवैज्ञानिक एवं परिस्थितिजन्य कारण रहे हैं।

डॉ० भीमराव रामजी अम्बेडकर का जब जन्म हुआ, उस समय पौराणिक हिन्दू समुदाय जन्मना जाति-पांति, ऊंच-नीच, छूआछूत, सामाजिक भेदभाव जैसी कुप्रथाओं से ग्रस्त था। उसके कारण उन्होंने अपने जीवन में अनेक भेदभावपूर्ण असमानताओं, अन्यायों, उपेक्षाओं और यातनाओं को भोगा। यह स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक जागरूक एवं स्वाभिमानी व्यक्ति के मन में ऐसे व्यवहार के प्रति आक्रोश जन्म लेता है। डॉ० अम्बेडकर के मन में ऐसे व्यवहार की प्रतिक्रिया में आक्रोश का एक स्थायी भाव बन गया था। उन्होंने जिन-जिन कारणों को इस भेदभावपूर्ण व्यवस्था का उत्तरदायी समझा, उनके प्रति उनका आक्रोश विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ। उनका यह आक्रोश जीवनभर बना रहा और अवसर पाकर प्रकट होता रहा। दलितों के साथ गत दो-तीन सहस्राब्दियों में जो व्यवहार हुआ वह सर्वथा अमानवीय और निन्दनीय था। अब उसमें कठोरता से सुधार किया जाना चाहिए। किन्तु विगत व्यवहार के प्रति प्रतिशोधात्मक भावना रखकर वैसा व्यवहार करना भी उतना ही अनुचित है। प्रतिशोधात्मक भावना से सुधार की आशा रखना व्यर्थ है जबकि वर्गविद्वेष की आशंका का

पनपना निश्चित है। यदि यह स्थिति बनेगी तो वह निश्चित रूप से समाज और राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध होगी। अतीत के व्यवहार का प्रतिशोध लेना वर्तमान में कभी संभव नहीं हो सकता, हाँ, स्थिति में सुधार अवश्य संभव हो सकता है।

डॉ० अम्बेडकर जैसे सुशिक्षित लेखक भी आक्रोश के इतने वशीभूत हो गये कि वे प्रतिशोधात्मक प्रतिक्रिया से बच नहीं सके। आगे उन्हीं कारणों पर विचार किया जा रहा है।

१. सत्य के शोध का दावा : केवल दिखावा

डॉ० अम्बेडकर के आरम्भिक लेखन में यह दावा प्राप्त होता है कि वे प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन-मनन-अन्वेषण करके उसमें वर्णित समाजव्यवस्था के मौलिक स्वरूप को और शूद्रों की प्राचीन स्थिति को पाठकों के सामने रखकर यह बताना चाहते हैं कि वर्तमान में जो व्यवस्था और व्यवहार प्रचलित है यह एक विकृत रूप है और उसको सुधारा जाना जरूरी है। डॉ० अम्बेडकर अपने ध्येय को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

(क) ''मैंने एक इतिहासवेत्ता की हैसियत से अनुसन्धान किया है। इतिहासवेत्ता धार्मिक पुस्तकों और अन्य पुस्तकों में कोई भेद नहीं मानते। **उनका काम तो सत्य की खोज है।**''

''इतिहासवेत्ता का तरीका दूसरा है। इतिहासवेत्ता को सही, निष्पक्ष, निष्काम, बेधड़क और **सत्य का प्रेमी होना चाहिए।** उसको निष्पक्षभाव से छोटी से छोटी चीज की जांच करनी चाहिए। अपने अनुसन्धान में **मैंने अपने को निष्पक्ष रखा है।**''(शूद्रों की खोज, प्राक्कथन, पृ० ५-६, समता प्रकाशन नागपुर)

(ख) ''इस आलेख का प्राथमिक उद्देश्य यह बताना है कि अनुसन्धान का सही मार्ग कौन-सा है, **ताकि एक सत्य उजागर हो।** हमें इस विषय के विश्लेषण में **पक्षपातरहित रहना है। भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए,** बल्कि इस विषय पर वैज्ञानिक और **निष्पक्ष रूप से विचार किया जाए।**'' (अम्बेडकर वाड्मय, खंड १, भारत में जातिप्रथा, पृ० ३६)

समीक्षा—सत्य के अनुसन्धान का यह दावा कुछ सीमा तक 'हू वर द शूद्राज्?' (शूद्रों की खोज) नामक पुस्तक में सही माना जा सकता है। उसके बाद रचे गये साहित्य में यह दावा कहीं सत्य नहीं दिखायी पड़ता। पाठक देख रहे हैं कि डॉ० अम्बेडकर का प्रायः सारा लेखन भावनात्मक विरोध पर टिका हुआ है। वह भी निष्पक्ष न होकर एकपक्षीय है। उसमें 'विरोध के लिए विरोध' का लक्ष्य स्पष्ट झलकता है। डॉ० साहब सत्य-अनुसन्धान और निष्पक्ष विचार की प्रतिज्ञा को नहीं निभा सके। सत्य-अनुसन्धान का लक्ष्य राह में ही कहीं भटक गया? इसकी आड़ में उन्होंने केवल विरोध ही विरोध किया है। यह दावा केवल दिखावा बन कर रह गया है।

२. दलित राजनीति के लिए मनु और मनुस्मृति का अन्धविरोध

ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० अम्बेडकर के आक्रोशपूर्ण मानस को केवल शोधात्मक समालोचना से सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने स्वयं को दलितों के संरक्षक और सामाजिक नेता के रूप में स्थापित करना आरम्भ किया। तब वे शोधात्मक समीक्षा को छोड़कर विरोधात्मक आलोचना पर उतर आये। इस दूसरे स्तर पर भी वे वैदिक साहित्य तथा वैदिक वर्णव्यवस्था को अपेक्षाकृत उपयोगी एवं तर्कसम्मत मानते रहे। जातिवाद और उसके उतरदायी घटकों का, विशेषतः मनु और मनुस्मृति का उन्होंने एकपक्षीय विरोध करना आरम्भ कर दिया। ब्राह्मणवाद पर उन्होंने तीखे प्रहार करने शुरू किये और ब्राह्मणवाद को ही जातिवाद का जनक एवं उत्तरदायी माना। मनुस्मृति को डॉ. अम्बेडकर ने केवल इसी पहलू से देखा और समझा था, इस कारण मनु और मनुस्मृति के अन्धविरोध को उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया। वे स्वयं अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

(क) "मुझ पर मनु का भूत सवार है और मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं उसे उतार सकूं। वह शैतान की तरह जिन्दा है।" (डॉ० अम्बेडकर संपूर्ण वाड्मय, खंड १, पृ० २९)

(ख) "भारत के विधिनिर्माता के रूप में यदि मनु का कोई अस्तित्व रहा है, तो वह एक ढीठ व्यक्ति रहा होगा।........यदि वह

क्रूर न होता, जिसने सारी प्रजा को दास बना डाला, तो ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वह अपना आधिपत्य जमाने के लिए इतने अन्यायपूर्ण विधान की संरचना करता, जो उसकी 'व्यवस्था' में साफ झलकता है।" (अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड १, पृ० २९)

(ग) "सामाजिक अधिकारों के सबन्ध में मनु के कानून से ज्यादा बदनाम और कोई विधि-संहिता नहीं है।" (वही खंड १, पृ० ८५ तथा वही, खंड ६, पृ० ९३)

(घ) "मनु एक ऐसा भाड़े का दलाल था, जो एक विशेष समुदाय में जन्मे लोगों के स्वार्थ की रक्षा करने के लिए रखा गया था।" (वही, खंड ६, पृ० १००)

(ङ) "नीत्शे की तुलना में मनु के महामानव का दर्शन अधिक नीच तथा भ्रष्ट है।" (वही, खंड ६, पृ० १०१)

पाठक अब इन कथनों को ध्यान से पढ़ें—

(च) "एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जातिप्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था।" (वही, खंड १, पृ० २९)

(छ) "कदाचित् मनु जाति के निर्माण के लिए जिम्मेदार न हो, परन्तु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश दिया है।......वर्णव्यवस्था जाति की जननी है और इस अर्थ में मनु जातिव्यवस्था का जनक न भी हो परन्तु उसके पूर्वज होने का उस पर निश्चित ही आरोप लागया जा सकता है।" (वही, खंड ६, पृ० ४३)

(ज) "तर्क में यह सिद्धान्त है कि ब्राह्मणों ने जाति-संरचना की।" (वही, खंड १, पृ० २९)

(झ) "जातिव्यवस्था का जनक होने के कारण विभिन्न जातियों की उत्पत्ति के लिए मनु को स्पष्टीकरण देना होगा।" (वही, खंड ७, पृ० ५७)

(ञ) "मनु ने जाति का सिद्धान्त निर्धारित किया है।" (वही, खंड ७, पृ० २२८)

समीक्षा—उक्त वाक्यों में हृदय का सच फूट पड़ा है। वस्तुतः डॉ० अम्बेडकर पर मनु का भूत सवार हो चुका था। भूत सवार होने

पर मनुष्य की असामान्य मनःस्थिति, असंतुलित विचार, अनिश्चयात्मक समीक्षा और अस्थिर चित्त हो जाते हैं। उपर्युक्त उद्धरणों में तीन-तीन परस्पर-विरोध हैं और मनु के लिए अपशब्दों की बौछार है। कोई भी कथन निश्चयात्मक नहीं, जिसको प्रामाणिक माना जा सके। यह केवल अविचारित और अन्धविरोध मात्र है। विडम्बना देखिए, एक ही मुंह से तीन-तीन बातें कही गयी हैं—१. मनु जातिनिर्माता नहीं, २. मनु जातिनिर्माता है, ३. जातिनिर्माता ब्राह्मण हैं।

प्रश्न यह है कि यदि मनु जातिनिर्माता नहीं हैं और ब्राह्मण जातिनिर्माता हैं तो मनु का अन्धविरोध और अपमान क्यों किया गया है? यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सभी चौदह मनु क्षत्रिय थे, ब्राह्मण नहीं; अतः उन पर ब्राह्मण या ब्राह्मणवादी होने का मिथ्या आरोप कैसे लग सकता है? स्वायंभुव मनु एक चक्रवर्ती सम्राट् था, अतः किसी का 'भाड़े का दलाल' भी नहीं हो सकता। यदि यह कथन मनु सुमति भार्गव (१८५ ई० पूर्व) के लिए है तो उस बात को स्पष्ट करना चाहिए था। वह मनुस्मृति का रचयिता है ही नहीं। उसके कारण प्राचीन आदरणीय मनुपरम्परा का अपमान करना एक साहित्यिक अपराध है। पाठक देख सकते हैं कि उपर्युक्त वाक्यों में कितनी आक्रोशपूर्ण और प्रतिशोधात्मक भावना भरी है। यह किसी सत्यानुसन्धाता या साहित्यिक समीक्षक का लेखन-स्तर नहीं कहा जा सकता।

पूर्व अध्यायों के उद्धरणों में डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि वर्णव्यवस्था की रचना वेदों से हुई। मनु इसके निर्माता नहीं, केवल प्रसारक हैं। वेदों की वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित है, जो बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है। वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था परस्परविरोधी हैं। मनु जातिव्यवस्था के निर्माता भी नहीं हैं। इस प्रकार मनु वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था, दोनों के निर्माता के आरोप से मुक्त हो जाते हैं। वर्णव्यवस्था के पोषक होने के कारण उन पर यह भी आरोप नहीं बनता कि उन्होंने जन्मना जातिवाद का पोषण किया। यदि वर्णव्यवस्था बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है, तो अव्यवस्था के समय में व्यवस्था का पोषण करके उन्होंने उत्तम कार्य ही किया है, अपराध नहीं किया। मनु

वैदिक धर्मावलम्बी होने से वेदों को परमप्रमाण मानते हैं। अपने धर्मग्रन्थों के आदेशों का पालन करते हुए उन्होंने उसकी अच्छी व्यवस्थाओं का प्रचार-प्रसार किया तो यह कोई दोष नहीं। सभी धर्मावलम्बी ऐसा करते हैं। बौद्ध बनने के बाद डॉ. अम्बेडकर ने भी बौद्ध विचारों का प्रचार-प्रसार किया है। यदि उनका यह कार्य उचित है, तो मनु का भी उचित था। इतनी स्वीकारोक्तियां होने के उपरान्त भी, आश्चर्य है, कि अपने ही कथनों के विरुद्ध जाकर डॉ. अम्बेडकर मनु को स्थान-स्थान पर जातिवाद का जिम्मेदार ठहरा कर उनकी निन्दा करते हैं। परवर्ती सामाजिक व्यवस्थाओं को मनु पर थोपकर उन्हें कटु वचन कहना कहां का न्याय है?

संविधान में पचास वर्षों में छियासी के लगभग संशोधन किये जा चुके हैं, जिनमें कुछ संविधान की मूल भावना के प्रतिकूल हैं, जैसे-अंग्रेजी की अवधि बढ़ाना, आरक्षण की अवधि बढ़ाना, मुसलमानों में गुजाराभत्ता की शर्त हटाना आदि। क्या इन परवर्ती संशोधनों का, और भावी संशोधनों का जिम्मेदार डॉ. अम्बेडकर को ठहराया जा सकता है? यदि नहीं, तो हजारों वर्ष परवर्ती विकृत-व्यवस्थाओं के लिए मनु को जिम्मेदार कैसे ठहराया जा सकता है?

जो यह कहा गया है कि 'अकेला मनु न तो जातिव्यवस्था को बना सकता था और न लागू कर सकता था।' यह तो स्वयं ही डॉ. अम्बेडकर ने मान लिया कि इन दोनों बातों के लिए मनु जिम्मेदार नहीं है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, इसका अर्थ यह निकला कि पहले से ही समाज में वर्णव्यवस्था प्रचलित थी और समाज ने उसे स्वयं स्वीकृत किया हुआ था। वह लोगों के दिल-दिमाग में रची-बसी व्यवस्था थी, लोगों द्वारा उत्तम मानी हुई व्यवस्था थी, और सर्वस्वीकृत थी। मनु द्वारा थोपी नहीं गयी थी। जब समाज द्वारा स्वीकृत व्यवस्था थी, तो उसमें मनु का क्या दोष? आपने जनता द्वारा स्वीकृत वर्तमान व्यवस्था का पोषण किया है, मनु ने समाज द्वारा स्वीकृत अपने समय की वर्णव्यवस्था का पोषण किया था। इसमें दोष या अपने-अपने समय में दोनों के दोषी होने का अवसर ही कहां है?

डॉ. अम्बेडकर का एक कथन में (दूसरे एक में नहीं) मानना है कि वर्णव्यवस्था जातिव्यवस्था की जननी है, क्योंकि वर्णव्यवस्था

का मनु ने पोषण किया था, इसलिए मनु दोष के पात्र हैं। कितना अटपटा और लचीला तर्क है यह! ठीक जातिवाद जैसा! जैसे-किसी ने श्राद्ध नहीं किया तो वह पिछली छह पीढ़ियों के पूर्वजों सहित नरक में जायेगा, क्योंकि वे उसके जनक और पोषक थे। किसी ने श्राद्ध किया तो उसकी पिछली छह-पीढ़ियां तर जायेंगी, क्योंकि वे उसके जनक थे। ऐसे ही डॉ० साहब कहते हैं कि जातिव्यवस्था दोषपूर्ण है, अतः उसकी पूर्वव्यवस्था और उसके पोषक मनु भी दोषी हैं। आश्चर्य तो यह है कि एक कानूनवेत्ता एक कानूनदाता के लिए ऐसे आरोपों का प्रयोग कर रहा है! संविधान में तो डॉ. अम्बेडकर ने ऐसा कानून नहीं बनाया कि किसी अपराधी को दण्ड देने के साथ-साथ उसके माता-पिता, दादा, परदादा आदि को भी अपराधी घोषित कर दिया जाये, इसलिए कि वे उसके 'जनक' हैं।

विगत को अपराधी घोषित करके उन्हें दण्डित और नष्ट-भ्रष्ट करने के इस सिद्धान्त को यदि कुछ राष्ट्रीय मामलों के लिए भी संविधान में लागू कर देते तो उससे उन राष्ट्रवादियों को सन्तोष होता, जिनकी यह विचारधारा रही है कि देश स्वतन्त्र होने के बाद उन लोगों को अपराधी घोषित करके दण्डित किया जाना चाहिए, जिन्होंने विगत में राष्ट्रद्रोह और स्वतन्त्रताप्राप्ति का विरोध किया था; जिन्होंने विदेशी शासकों का सहयोग किया, गुप्तचरी की, देशभक्तों को फांसी दिलवायी। वे लोग जमीन, पद-पैसे पाकर तब भी सम्पन्न-सुखी थे, आज भी हैं; और स्वतन्त्रतासेनानी और उनके परिजन दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं! शायद ही ऐसी छूट किसी व्यवस्था-परिवर्तन ने दी हो! यदि वैसा होता तो गद्दारों को सबक मिलता और भावी राष्ट्रीय एकता-अखण्डता और स्वतन्त्रता के हित में होता।

वर्ण को जाति का जनक मानकर मनु को इस तरह दोषी ठहराया जा रहा है, जैसे मनु पहले ही जानते थे कि भविष्य में वर्ण से जाति का जन्म होगा, और इस आशा में वे जानबूझकर वर्ण का पोषण कर रहे थे। डॉ. अम्बेडकर ने वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था का पोषण किया है। क्या वे जानते थे कि इससे भविष्य में कौन-सी व्यवस्था का जन्म होगा? बिल्कुल नहीं। इसी प्रकार मनु को भी नहीं पता था कि वर्णव्यवस्था का भविष्य में अच्छा या बुरा क्या रूप होगा।

डॉ. अम्बेडकर वर्तमान जाति-पांति रहित संविधान के लेखक एवं पोषक हैं। दुर्भाग्य से, सैकड़ों वर्षों के बाद यदि यह जातिवादी रूप ले जाये तो क्या डॉ. अम्बेडकर उस के जनक होने के जिम्मेदार बनेंगे? सभी कहेंगे-नहीं, वे तो जातिवाद के विरोधी हैं, उन्हें जनक क्यों कहा जाये? इसी प्रकार जातिव्यवस्था भी वर्णव्यवस्था की विरोधी व्यवस्था है। मनु को अपनी वर्णव्यवस्था की विरोधी जातिव्यवस्था का जनक कैसे कहा जा सकता है? इस प्रकार उन पर जातिव्यवस्था का जनक होने का आरोप सरासर गलत है। सच यह है कि बाद के समाज ने मनु की वर्णव्यवस्था को विकृत कर दिया और उसे जातिव्यवस्था में बदल दिया; अतः वही परवर्ती समाज इसका जनक भी है, दोषी भी।

३. दलित नेतृत्व और धर्मपरिवर्तन की आड़ में प्रतिशोधात्मक भावना

उनके विरोध का तीसरा चरण तब शुरू होता है जब उन्होंने स्वयं को सामाजिक नेता से राजनेता स्थापित करने की ओर कदम बढ़ाये। राजनेताओं की प्रायः यह नीति होती है कि अपने समर्थकों और अनुयायियों का संख्याबल बढ़ाने के लिए, उनकी प्रिय और हितकर बातों को बार-बार तथा तीव्र स्वर में उठाते हैं, और केवल उन्हीं एकपक्षीय बातों को कहते रहते हैं। डॉ० अम्बेडकर भी ऐसा ही कहने और करने लगे। उन्होंने साहित्यिक-ऐतिहासिक तथ्यों और तर्कों-प्रमाणों पर तटस्थ विचार करना छोड़ दिया।

यह चरण कई कदम आगे तब बढ़ा जब उन्होंने हिन्दू धर्म को त्यागकर बौद्धधर्म को ग्रहण करने का मन बनाया। जैसी कि पन्थों की रीति होती है, जब व्यक्ति अपने अभीष्ट पन्थ को स्थापित, सुदृढ़ एवं विकसित करना चाहता है और प्रतिपक्षी पन्थ को निर्बल देखना चाहता है तब वह अपने अभीष्ट पन्थ की प्रशंसा करता नहीं अघाता और प्रतिपक्षी पन्थ की निन्दा करते-करते संतुष्ट नहीं होता। उसी प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने भी वैदिक धर्म सहित हिन्दू धर्म पर उग्र प्रहार करने प्रारम्भ कर दिये जबकि बौद्ध पन्थ की महिमा का गुणगान शुरू कर दिया। तब उन्होंने एक धार्मिक प्रतिपक्षी के समान वेदों,

वैदिक साहित्य एवं वैदिक व्यवस्था सहित समस्त हिन्दू व्यवस्था का घोर एवं अविचारित विरोध करना अपना लक्ष्य बना लिया। इस चरण में उन्हें हिन्दुत्व और मनुस्मृति की प्रत्येक अच्छाई भी बुराई नजर आने लगी। वे एक-एक छिद्र को ढूंढ-ढूंढ कर ऐसे विरोध करने लगे जैसे केवल विरोध से ही उन्हें संतुष्टि मिलती हो। अब वे समीक्षक-आलोचक से कहीं दूर हटकर, केवल राजनीतिक और घोर धार्मिक विरोधी की भूमिका में आ गये। अपनी घोर धार्मिकविरोधी की भूमिका के बारे में वे स्वयं लिखते हैं। पाठक उन्हीं के शब्दों में पढ़ें—

(क) "वेद बेकार की रचनाएं हैं। उन्हें पवित्र या सन्देह से परे बताने में कोई तुक नहीं है।" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड १३, पृ० १११)

(ख)"ऐसे वेदशास्त्रों के धर्म को निर्मूल करना अनिवार्य है।" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड १, पृ० ९५)

(ग) "यदि आप जातिप्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों और शास्त्रों में डायनामाइट लगाना होगा। .....आपको श्रुति और स्मृति के धर्म को नष्ट करना ही चाहिए।" (वही खंड १, पृ० ९९)

(घ) "जहां तक नैतिकता का प्रश्न है, ऋग्वेद में प्रायः कुछ है ही नहीं, न ऋग्वेद नैतिकता का ही आदर्श प्रस्तुत करता है।" (वही, खंड 8, पृ० ४७, ५१)

(ङ) "यह (ऋग्वेद) आदिम जीवन की प्रतिच्छाया है, जिनमें जिज्ञासा आधिक है, भविष्य की कल्पना नहीं है। इनमें दुराचार अधिक, गुण मुट्ठी-भर हैं।" (वही, खंड ८, पृ० ५१)

(च) "अथर्ववेद मात्र जादू-टोनों, इन्द्रजाल और जड़ी-बूटियों की विद्या है। इसका चौथाई जादू-टोनों और इन्द्रजाल से युक्त है।" (वही, खंड ८, पृ० ६०)

(छ) "वेदों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे आध्यात्मिक अथवा नैतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता हो।" (वही, खंड ८, पृ० ६२)

(ज) "ब्राह्मणों ने नियोजित अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्य से आश्रम प्रणाली बनाई। यह इतनी बड़ी मूर्खता है कि उसका कारण और

उद्देश्य समझ पाना एक बहुत बड़ी पहेली है।'' (वही खंड ८, 'परिशिष्ट-१', पृ० २६५)

(झ) ''हिन्दूधर्म अपवित्रता के भय से व्याकुल है।......उसे धर्म कहना ही गलत है।'' (वही, खंड ६, पृ० १२०)

(ञ) ''इसीलिए डंके की चोट पर मैं यह कहा करता हूं कि ऐसे धर्म (हिन्दूधर्म) को निर्मूल करना अनिवार्य है और इस कार्य में कोई अधर्म नहीं है।'' (वही, खंड १, पृ० ९८)

(ट) ''मेरे जैसे व्यक्ति को जो **हिन्दूधर्म का इतना विरोधी** और अन्त्यज है।'' (वही, खंड १, पृ० २४)

यहां डॉ० अम्बेडकर के वे वचन और निष्कर्ष उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं जो उन्होंने वैदिक संस्कृति और ऋषि-मुनियों के बारे में लिखे हैं। वे इतने घृणित, असभ्य और कुत्सित हैं कि उन्हें सभ्य पाठकों के समक्ष नहीं रखा जा सकता।

समीक्षा- उपर्युक्त कथन और भाषा, उस लेखक की है जो अपने बारे में सत्य-अनुसन्धाता, पक्षपातरहित, निष्काम तथा तटस्थ इतिहासकार होने का दावा करता है। डॉ० अम्बेडकर को अपनी भावनाओं के आहत होने का कष्ट है किन्तु वैदिक और हिन्दू धर्मियों की आस्था पर क्रूरता से कुठाराघात करने का कोई दुःख नहीं है। स्वयं को वेद और वैदिक एवं हिन्दू धर्मविरोधी घोषित करने में जिसको गर्व का अनुभव हो रहा है, उस लेखक से पक्षपातरहित विवेचन की आशा करना मृगतृष्णा मात्र है।

वैदिक धर्म के विषय में जो सबसे अधिक आपत्तिपूर्ण दुर्भावयुक्त और खतरनाक बात डॉ० अम्बेडकर ने कही है, वह है- ''यदि आप जातिप्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों और शास्त्रों में डायनामाइट लगाना होगा।'' (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड १, पृ० ९९)। एक ओर वे मानते हैं कि वेदों में जातिव्यवस्था न होकर वर्णव्यवस्था है और वर्णव्यवस्था गुण-कर्म पर आधारित होने से बुद्धिमत्तापूर्ण है, घृणास्पद नहीं, फिर भी धर्मग्रन्थ वेदों में डयनामाइट लगाने की अनुचित और उत्तेजक बात कहते हैं!! कितना अनुचित और परस्परविरोधी वक्तव्य है उनका! वेद, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण, गीता सभी को नष्ट-भ्रष्ट करने और उनसे

नाता तोड़ने की बात कही है उन्होंने! धर्मशास्त्र धर्मजिज्ञासा, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, आचार-व्यवहार, जीवनमूल्य सभी के आश्रय और प्रेरणा स्रोत होते हैं। उनको नष्ट करने का अभिप्राय है आर्य (वैदिक) संस्कृति-सभ्यता, धर्म, इतिहास साहित्य आदि सब कुछ को नष्ट करना। क्या डॉ० अम्बेडकर यही चाहते थे? यदि डॉ० अम्बेडकर हिन्दू धर्म में रहकर पीड़ित थे और उन्हें वह छोड़ना था, तो वे उसे छोड़कर केवल 'मनुष्य' के नाते भी रह सकते थे, किन्तु धर्म के आश्रय के बिना वे नहीं रह सके। उन्होंने बौद्ध मत का आश्रय लिया और बौद्ध-शास्त्रों को प्रमाण माना, जबकि हिन्दुओं को वे धर्म और धर्मशास्त्रों का त्याग करने के लिए कहते हैं।

डॉ० अम्बेडकर और दलितवर्ग द्वारा झेली गयी पीड़ाएं अन्यायपूर्ण थीं, किन्तु किसी सम्पूर्ण समुदाय के धर्म और धर्मशास्त्रों को अपमानपूर्वक नष्ट करने की बात कहना, क्या अन्यायपूर्ण और पीड़ाजनक नहीं है? प्रतिशोध-भावना से इस प्रकार की अनुचित और आघातकारक बातें कहना बहुत ही आपत्तिजनक है। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि यह बात संभव भी है या नहीं?

डॉ० अम्बेडकर की उक्त सोच ठीक वैसी ही है जैसे किसी के हाथ-पैर में फोड़ा हो जाये तो उसका आप्रेशन कर उसको निकाल देने के बजाय उस आदमी को जान से ही मार दिया जाये! यहां मैं महात्मा गांधी द्वारा उस समय दिये गये उत्तर को उद्धृत करना चाहूंगा- "**जैसे कोई कुरान को अस्वीकार कर मुसलमान कैसे बना रह सकता है और बाइबल को अस्वीकार कर कोई ईसाई कैसे बना रह सकता है। (अंबेडकर वाङ्मय खंड १, पृ० ११०)** वैसे वेदों-शास्त्रों को अस्वीकार कर कोई हिन्दू कैसे हो सकता है?"

वेदों में जातिव्यवस्था का नामोनिशान तक नहीं है। फिर भी डॉ० अम्बेडकर ने वेदों की अकारण आलोचना की, उनको नष्ट करने की बात कही, उनके महत्त्व को अंगीकार नहीं किया। बौद्ध होकर भी उन्होंने ऐसा ही किया है। उन्होंने बौद्ध-शास्त्रों की और अपने गुरु की अवज्ञा की है, क्योंकि बौद्ध शास्त्रों में महात्मा बुद्ध ने वेदों और वेदज्ञों की प्रशंसा करते हुए धर्म में वेदों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। कुछ प्रमाण देखिए-

(अ) ''विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मम्।
न उच्चावचं गच्छति भूरिपज्जो।'' (सुत्तनिपात २९२)

अर्थात्—महात्मा बुद्ध कहते हैं—'जो विद्वान् वेदों से धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है, वह कभी विचलित नहीं होता।'

(आ) ''विद्वा च सो वेदगू नरो इध, भवाभवे संगं इमं विसज्जा।
सो वीतवण्हो अनिघो निरासो, अतारि सो जाति जरांति ब्रूमीति॥'' (सुत्तनिपात १०६०)

अर्थात्—'वेद को जानने वाला विद्वान् इस संसार में जन्म और मृत्यु की आसक्ति का त्याग करके और इच्छा, तृष्णा तथा पाप से रहित होकर जन्म-मृत्यु से छूट जाता है।' सुतनिपात के वेदप्रशंसा विषयक अन्य श्लोक द्रष्टव्य हैं- ३२२, ४५८, ५०३, ८४६,१०५९ आदि।

डॉ० अम्बेडकर की मनु-विरोध परम्परा में डॉ० भदन्त आनन्द कौसल्यायन द्वारा 'राष्ट्रीय कर्तव्य' के नाम से किया गया मनुस्मृति-विरोध केवल 'विरोध' के लिए ही है, जो अत्यन्त सतही है। उसमें न तर्क है, न सम्यक् विश्लेषण। अपव्याख्या और अपप्रस्तुति का आश्रय लेकर अच्छे को भी बुरा सिद्ध करने का प्रयास है। उन्हें जहां इस बात पर आक्रोश है कि मनु ने नारियों की निन्दा की है, तो इस बात पर भी दुःख है कि उन्हें ''पूजार्हा=सम्मानयोग्य'' क्यों कहा गया? इसी को कहते हैं 'चित भी मेरी पट भी मेरी।' उनकी स्थिति विरोधाभासी है। महात्मा गांधी के प्रशंसक हैं, किन्तु उनके निष्कर्षों को नहीं मानते। बौद्ध हैं, किन्तु बौद्ध साहित्य में वर्णित वेद-वेदज्ञ आदि के महत्त्व को स्वीकार नहीं करते। स्वयं को गर्व से अवैदिक = अहिन्दू घोषित करते रहे; किन्तु हिन्दुओं के शास्त्रों के तथाकथित उद्धार में और हिन्दुओं में पूज्य महापुरुषों मनु, राम आदि की निन्दा-आलोचना में आजीवन लगे रहे।

४. संस्कृत भाषा एवं शैली के ज्ञान का अभाव

मनु, मनुस्मृति तथा वैदिक साहित्य सम्बन्धी गम्भीर, व्यापक एवं तथ्यात्मक जानकारी न होने का एक कारण डॉ० अम्बेडकर का संस्कृत भाषा के ज्ञान का अभाव रहा है। यद्यपि उन्होंने एक गर्वोक्ति में इस कारण को अस्वीकार किया है तथापि परोक्ष शैली में उन्होंने इस वास्तविकता को स्वीकार भी कर लिया है। यह सत्य है कि वे

संस्कृत भाषा के गम्भीर ज्ञाता नहीं थे। उन्होंने प्राचीन भारतीय साहित्य एवं व्यवस्था सम्बन्धी जो कुछ पढ़ा, समझा और लिखा, वह अंग्रेजी रूपान्तरणों और समीक्षाओं के माध्यम से ही समझा है। डॉ० अम्बेडकर इस तथ्य को स्वयं स्वीकार करते हुए लिखते हैं—

(क) ''यदि यह कहा जाय कि **मैं संस्कृत का पंडित नहीं तो मैं मानने को तैयार हूं।''**

''परन्तु संस्कृत का पंडित न होने से मैं इस विषय पर लिख क्यों नहीं सकता? संस्कृत का बहुत-थोड़ा अंश है जो अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध नहीं है। इसलिए संस्कृत न जानना मुझे इस विषय पर लिखने का अनधिकारी नहीं ठहरा सकता। **अंग्रेजी अनुवादों का पन्द्रह साल अध्ययन करने के बाद** यह अधिकार मुझे अवश्य प्राप्त है।'' (शूद्रों की खोज, प्राक्कथन पृ० २, समता प्रकाशन नागपुर)

समीक्षा—आलोच्य ग्रन्थों की भाषा एवं शैली तथा परम्परा का गम्भीर ज्ञान न होने के कारण कोई भी लेखक उस भाषा की प्रकृति, शैली, अर्थपरम्परा, वक्ता का अभिप्राय, अन्तर्विरोध आदि को नहीं समझ पाता। डॉ० अम्बेडकर द्वारा उद्धृत सभी सन्दर्भ दूसरे लेखकों के हैं, अतः यह मानना पड़ेगा कि मूलतः निष्कर्ष भी उन्हीं के हैं। वे स्वयं मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के श्लोकों पर विचार नहीं कर सके। यदि वे संस्कृत भाषा के ज्ञाता होते तो निश्चय ही स्थिति कुछ अलग होती।

संस्कृत ज्ञान के अभाव में डॉ० अम्बेडकर न तो मनु के श्लोकों के सही अर्थ का निर्णय कर सके, न परस्परविरोध का और न मनुस्मृति की प्रक्षिप्तता एवं मौलिक स्थिति का। जहां तक प्रक्षिप्तों के अस्तित्व का प्रश्न है, अब इसमें कोई मतभेद नहीं रह गया है कि उपलब्ध मनुस्मृति में मौलिक व प्रक्षिप्त, दोनों प्रकार के श्लोक प्राप्त हैं। अनेक श्लोकों में परस्परविरोध और प्रसंगविरोध आदि हैं। डॉ० अम्बेडकर के समय तक इस विषय पर शोध नहीं हुआ था, अतः उन्हें यह निर्णय उपलब्ध नहीं हुआ और संस्कृत भाषा का ज्ञान न होने से वे स्वयं इनका निर्णय कर नहीं सके। उनके जितने विरोध और आपत्तियां हैं वे या तो प्रक्षिप्त श्लोकों पर केन्द्रित हैं, या फिर अर्थभेद या अशुद्ध अर्थ पर आधारित हैं। आपत्तिपूर्ण श्लोकों अर्थात्

प्रक्षिप्तों पर आलोचना प्रस्तुत करते हुए उन्होंने इस तथ्य का उत्तर नहीं दिया कि आलोचित श्लोक का विरोधी जो श्लोक मनुस्मृति में उपलब्ध है, जो कि आपत्तिरहित, उत्तम मान्यता का वर्णन करने वाला है, उसको वे क्यों नहीं स्वीकार करते? या एक साथ दो विरोधी श्लोक एक ग्रन्थ में क्यों है? यदि वे इस तथ्य पर चिन्तन कर लेते तो उन्हें मनुस्मृति का अन्धविरोध करने का विचार ही छोड़ देना पड़ता।

डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति की मौलिक और प्रक्षिप्त स्थिति पर पृथक् से विचार नहीं किया। न मौलिक श्लोकों को पृथक् विचारा, न प्रक्षिप्तों को, उन्होंने सारी मनुस्मृति की अलोचना की है; जो केवल प्रक्षिप्तों पर आधारित है। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने अच्छे श्लोकों के साथ सारी मनुस्मृति की निन्दा कर डाली, जो ऐतिहासिक तथ्य के विपरीत मत है। यह रहस्यपूर्ण बात है कि डॉ० अम्बेडकर ने वेदों, रामायण, गीता, महाभारत, पुराण, सूत्रग्रन्थ सभी में प्रक्षेपों का अस्तित्व घोषित किया है, किन्तु मनुस्मृति में स्वीकार नहीं किया। ऐसा क्यों? स्पष्ट है कि यदि वे मनुस्मृति में भी मौलिक व प्रक्षेप के अस्तित्व को ईमानदारी से स्वीकार कर लेते तो उनका 'विरोध के लिए विरोध' का अभियान चल ही नहीं पाता। (प्रमाणों के लिए द्रष्टव्य है अध्याय संख्या छह)

५. वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति-प्रक्रिया तथा व्यावहारिकता को न समझ पाना

वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति-प्रक्रिया एवं व्यावहारिकता के वास्तविक स्वरूप को न समझना अथवा समझे हुए सही स्वरूप पर स्थिर न रहना, विरोध का एक अन्य कारण है।

समीक्षा—डॉ० अम्बेडकर ने जब-जब चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को सही समझा है, तब-तक उन्होंने उसकी प्रशंसा की है। जब ठीक नहीं समझा, तब निन्दा की है। कभी-कभी ठीक समझकर भी वे अपने मत पर स्थिर नहीं रहे। यदि स्थिर रहते तो महर्षि मनु के उग्र और अविचारित विरोध के सारे अवसर समाप्त हो जाते अर्थात् डॉ० साहब को मनु का विरोध करने का अवसर ही नहीं मिलता।

वर्णव्यवस्था को समझने में भूल तब होती है जब हम वर्ण को जाति के समान जन्म से मान लेते हैं। वर्ण जन्म से निर्धारित नहीं होता था जबकि जाति जन्म से निर्धारित होती थी और होती है। वर्ण का अभिप्राय यह था कि किसी भी कुल में उत्पन्न होने के उपरान्त व्यक्ति अपने गुण, कर्म, योग्यता के अनुसार किसी भी वर्ण का चयन करके उस वर्ण को धारण कर सकता था। यह व्यवस्था ठीक ऐसी ही थी जैसे आज किसी भी कुल का व्यक्ति किसी भी नौकरी का कार्य कर सकता है। जब डॉ० अम्बेडकर वर्ण के इस मौलिक और सही स्वरूप को त्यागकर उसको जन्म पर आधारित मान लेते हैं तब वे चातुर्वर्ण्य का विरोध करते हैं और चातुर्वर्ण्य-विधायक वेदमन्त्रों की तथा मनुस्मृति के श्लोकों की जन्माधारित व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। यह निर्विवाद है कि वे भलीभांति जानते थे, और जैसा कि उन्होंने अनेक बार लिखा भी है कि वैदिक चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में वर्ण गुण-कर्म-योग्यता से निर्धारित होते थे। उनके द्वारा किये गये बारंबार विरोध को पढ़कर यह संदेह होता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के सही स्वरूप की जानकारी रखते हुए भी डॉ० अम्बेडकर द्वारा जो उसका विरोध किया जाता रहा है, वह जानबूझकर और योजनाबद्ध है। शायद वे राजनीति से प्रेरित स्थिति में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के सही स्वरूप को जानबूझकर मानना नहीं चाहते थे क्योंकि फिर वे **'विरोध के लिए विरोध'** नहीं कर सकते थे। तब तर्क उन्हें विरोध के मार्ग पर नहीं बढ़ने देता। इसलिए उन्होंने वर्णव्यवस्था के सही स्वरूप को अनेक स्थलों पर प्रस्तुत करने के बावजूद चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को जन्म से जोड़कर भ्रामक रूप में प्रस्तुत किया है और उसकी आड़ लेकर मनु, मनुस्मृति तथा आर्य (हिन्दू) शास्त्रों का खुलकर विरोध किया है। (इसके उदाहरण द्रष्टव्य हैं—'डॉ० अम्बेडकर के ग्रन्थों में परस्परविरोध' शीर्षक आगामी अध्याय आठ में)

डॉ० अम्बेडकर सहित वर्णव्यवस्था के समीक्षकों को एक भ्रान्ति यह है कि वे मुख, बाहु, जंघा, पैर से सीधे वर्णस्थ व्यक्तियों की उत्पत्ति मानते हैं जबकि उन प्रसंगों में वर्णों की आलंकारिक उत्पत्ति है, व्यक्तियों की नहीं। पहले वर्ण बने हैं फिर उनमें कर्मानुसार व्यक्ति दीक्षित हुए हैं (द्रष्टव्य - 'वर्णव्यवस्था का यथार्थ स्वरूप' शीर्षक

अध्याय तीन)। पहले व्यवस्था बनती है, पुनः व्यक्तियों पर लागू होती है। अतः पैर से शूद्रवर्ण की आलंकारिक उत्पत्ति दर्शाई है, शूद्रों की नहीं। इस सही प्रक्रिया को समझ लेने पर यह आक्रोश स्वतः समाप्त हो जाता है कि शूद्रों की उत्पत्ति पैर से क्यों कही गयी है? क्योंकि चारों वर्णों में से अयोग्यता के कारण किसी भी कुल का व्यक्ति शूद्र होकर शूद्रवर्ण में समाविष्ट हो सकता था।

संसार की सभी व्यवस्थाएं शतप्रतिशत मान्य और खरी नहीं होती। अतः कुछ कमियों के आधार पर परवर्ती जातिव्यवस्था (हिन्दू व्यवस्था) की निन्दा और अपमान करना कदापि उचित नहीं माना जा सकता। हाँ, उसमें निहित कुप्रथाओं पर प्रहार होना ही चाहिए। आज की संवैधानिक व्यवस्था, जिसका न्याय, समानता आदि का दावा है, क्या सम्पूर्ण है? अभी ही वह न जाने कितने विवादों से घिरी है। सामयिक आवश्यकता के आधार पर आरक्षण का प्रावधान किया गया है, फिर भी आज उस पर उग्र विवाद है। आज के सैकड़ों वर्ष पश्चात् जब ये परिस्थितियां विस्मृत हो जायेंगी, तब जो इस व्यवस्था का इतिहास लिखा जायेगा, शायद वह आरक्षित जातियों के लिए भी वैसा ही लिखा जायेगा, जो ब्राह्मणों के सन्दर्भ में आज प्राचीन धर्मशास्त्रों का लिखा जा रहा है।

वर्तमान संवैधानिक व्यवस्थाओं में, उच्चतम अधिकारी से लेकर निम्नतम कर्मचारी तक के लिए परीक्षाओं-उपाधियों के अनुसार नियुक्ति का प्रावधान है। कुछ स्थान मनोनयन से भरे जाते हैं। थोड़े से वर्षों में ही स्थिति यहां तक पहुंच गयी है कि महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों के मनोनयन में, सत्ता में बैठे नेताओं, अधिकारियों के सम्बन्धी या सिफारिशी ही अधिकांशतः ले लिये जाते हैं; योग्यता का पैमाना भुला दिया गया है। योग्यता की जांच के लिए साक्षात्कार आयोजित होते हैं, किन्तु तब भी हजारों नौकरियां सिफारिश और पैसे के आधार पर दी जा रही हैं। न्यायालयों द्वारा रद्द अनेक चयनसूचियां इसके सत्यापित प्रमाण हैं। राजनीतिक स्तर पर होने वाले 'राज्यपाल' आदि पदों के मनोनयन में योग्यता नाम की कोई वस्तु दिखायी नहीं पड़ती। वहां अपने-पराये का नग्न रूप है। कल्पना कीजिए, जिसकी कि संभावनाएं प्रबल दिखायी पड़ रही हैं, सैकड़ों वर्ष बाद ये

व्यवस्थाएं और अधिक विकृत होकर यदि जन्माधारित रूप ले गयीं तो क्या उसकी जिम्मेदारी डॉ० अम्बेडकर और संविधान-सभा की मानी जायेगी? क्या उन द्वारा प्रदत्त व्यवस्था उस भावी विकृत व्यवस्था की जननी मानी—जानी जायेगी? यदि नहीं, तो मनु को भी जाति-व्यवस्था का जनक और जिम्मेदार नहीं कहा जा सकता।

६. प्राचीन धर्मशास्त्रों एवं मान्यताओं के ज्ञान का अभाव

आर्य (हिन्दू)-शास्त्रों की मौलिक परम्पराओं और मान्यताओं को भी डॉ० अम्बेडकर भारतीय परम्परा के अनुसार नहीं समझ सके। अंग्रेजी अनुवादों पर निर्भर होने के कारण उन्होंने शास्त्रों का स्वरूप और काल वही समझा, जो पाश्चात्य लेखकों ने कपोलकल्पना से स्थापित किया था। परिणामस्वरूप डॉ० अम्बेडकर का आर्य (हिन्दू) शास्त्रों का विवेचन एकपक्षीय रहा। इस स्थिति को वे अनुभव भी करते थे। उन्होंने इस विवशता को इन शब्दों में स्वीकार किया हैं—

(क) "हिन्दू धर्मशास्त्र का मैं अधिकारी ज्ञाता नहीं हूं।" (जातिभेद का उच्छेद, पृ० १०१, बहुजन कल्याण प्रकाशन, लखनऊ)

(ख) "महात्मा जी (गांधी जी) की पहली आपत्ति यह है कि मैंने जो श्लोक चुने हैं, वे अप्रमाणिक हैं। मैं यह मान सकता हूं कि मेरा इस विषय पर पूर्ण अधिकार नहीं है।" (वही, पृ० १२०)

समीक्षा—डॉ० अम्बेडकर ने वैदिक मान्यताओं, स्थापनाओं एवं परम्पराओं को प्राचीन भारतीय मतानुसार नहीं समझा, या समझकर स्वीकार नहीं किया। उनके प्रायः सभी निष्कर्ष अंग्रेजी अनुवादों और समीक्षाओं पर निर्भर हैं। इस कारण उन द्वारा प्रस्तुत मान्यताएं गड्ड-मड्ढ हो गयी हैं। जैसे, डॉ० अम्बेडकर ने लिखा है कि मनुस्मृति का रचयिता मनु नामधारी सुमति भार्गव है जो ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुङ्ग (१८५ ईस्वी पूर्व) का समकालीन है। इससे स्पष्ट हुआ कि वे उसी की आलोचना कर रहे हैं, प्राचीनतम मनुओं की नहीं। किन्तु उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट नहीं किया। विरोध में सभी मनुओं को घसीटा है।

भारतीय प्राचीन मतानुसार 'मनुस्मृति' मूलतः मनु स्वायंभुव की रचना है, जो ब्रह्मा के पुत्र थे। उसी मनुस्मृति का उल्लेख सम्पूर्ण

प्राचीन वैदिक एवं लौकिक संस्कृत वाङ्मय में है। वही प्राचीन काल से भारतीय समाज में प्रचलित है। उस मनुस्मृति में मूलतः गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था विहित है। यह संभव है कि उस मनुस्मृति में प्रक्षेप के रूप में जो जातिव्यवस्था के श्लोक मिलाये हैं वे मनु सुमति भार्गव ने मिलाये हो। इस तथ्य का स्पष्टीकरण न किये जाने से प्राचीन मनु भी अनावश्यक रूप से निन्दा के शिकार हो रहे हैं।

मनु का काल मनुष्यों की सृष्टि का प्रारम्भिक काल है (देखिए आरम्भ में वंशावली)। उस समय कर्मणा वैदिक व्यवस्था ही थी। स्वयं डॉ० अम्बेडकर का भी मत है कि जन्मना जाति व्यवस्था तो महाभारत के बाद और बौद्धकाल से पूर्व प्रारम्भ हुई और ईसापूर्व की शताब्दियों में ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुङ्ग के काल में सुदृढ़ हुई। मनु के काल में जन्मना जातिव्यवस्था थी ही नहीं तो उसका मनु द्वारा वर्णन कैसे संभव है? स्पष्ट है कि मनुस्मृति में ऐसे श्लोकों का प्रक्षेप जन्मना जातिवाद के उद्भव के बाद हुआ है। उनका जिम्मेदार प्राचीनतम महर्षि मनु स्वायम्भुव को कैसे माना जा सकता है? इस तथ्य पर न तो पाश्चात्य लेखकों ने ईमानदारी से विचार किया और न डॉ० अम्बेडकर ने किया। यदि डॉ० अम्बेडकर ऐसा करने का अवसर पाते तो आज स्थिति भिन्न और सुखद होती। अब, डॉ० अम्बेडकर के अनुयायियों को इस तथ्य पर अवश्य ही विचार करना चाहिये कि जो आदिपुरुष एवं राजर्षि मनु जब निर्दोष एवं आरोपरहित हैं तो उनको दोषी और आरोपी कहने का अन्याय क्यों किया जाये? यदि वे विरोध करना ही चाहते हैं तो डॉ० अम्बेडकर द्वारा कथित ईसापूर्व द्वितीय शती के ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुङ्गकालीन 'मनु सुमति भार्गव' का विरोध करें, जो अनुमानतः मनुस्मृति में ब्राह्मणवादी विचारधारा का प्रक्षेपकर्त्ता है, आदिपुरुष मनु का विरोध नहीं करें।

* * *

अध्याय आठ

डा. अम्बेडकर द्वारा मनु के श्लोकों के अशुद्ध अर्थ करके उनसे विरोधी निष्कर्ष निकालना

डॉ. अम्बेडकर द्वारा मनु के श्लोकों का अशुद्ध अर्थ करना और उन अशुद्ध अर्थों के आधार पर अशुद्ध और मनु—विरोधी निष्कर्ष प्रस्तुत करना, इन दोनों ही कारणों से डॉ० साहब के लेखन की प्रामणिकता नष्ट हुई है। वे अर्थ, चाहे अनजाने में किये गये हैं अथवा जान बूझकर, वे संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण के अनुसार अशुद्ध हैं। संस्कृत भाषा का साधारण ज्ञाता भी तुरन्त समझ लेता है कि वे अर्थ गलत हैं। बुद्धिमानों में अशुद्ध लेखन कभी मान्य नहीं होता। यद्यपि डॉ० अम्बेडकरकृत अशुद्ध अर्थ पर्याप्त संख्या में हैं, तथापि यहां स्थालीपुलाक न्याय से कुछ ही श्लोकार्थ उद्धृत करके उनका सही अर्थ और समीक्षा दी जा रही है। इस लेखन से दो संकेत मिलते हैं-या तो दूसरों के अनुवादों पर निर्भरता के कारण और स्वयं संस्कृत ज्ञान न होने कारण ये अशुद्धियां हुई हैं, या राजनीतिक लक्ष्य से विरोध करने के लिए जान-बूझकर कर उन्होंने अशुद्ध अर्थ किये हैं। पाठक देखें—

(१) अशुद्ध अर्थ करके मनु के काल में भ्रान्ति पैदा करना और मनु को बौद्ध—विरोधी सिद्ध करना :-

(क) **पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्।**
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ (४.३०)

डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ :—"वह (गृहस्थ) वचन से भी **विधर्मी,** तार्किक (जो वेद के विरुद्ध तर्क करे) को सम्मान न दे।" "मनुस्मृति में बौद्धों और बौद्ध धर्म के विरुद्ध स्पष्ट व्यवस्थाएं दी गई हैं।"(अम्बेडकर वाङ्मय, ब्राह्मणवाद की विजय, पृ० १५३)

शुद्ध अर्थ :—'पाखण्डियों, विरुद्ध कर्म करने वालों अर्थात् अपराधियों, बिल्ली के समान छली-कपटी जनों, धूर्तों, कुतर्कियों, बगुलाभक्त लोगों का, अपने घर आने पर, वाणी से भी सत्कार न करे।'

समीक्षा—इस श्लोक में आचरणहीन लोगों की गणना है और उनका वाणी से भी आतिथ्य न करने का निर्देश है। यहां 'विकर्मी अर्थात् विरुद्ध कर्म करने वालों' का बलात् विधर्मी अर्थ कल्पित करके फिर

उसका अर्थ बौद्ध कर लिया है। विकर्मी का 'विधर्मी' अर्थ किसी भी प्रकार नहीं बनता। ऐसा करके सभी भाष्यकार और डॉ. अम्बेडकर, मनु को बौद्धों से परवर्ती और बौद्ध-विरोधी सिद्ध करना चाहते हैं। यह कितनी बेसिरपैर की कल्पना है!! बुद्ध से हजारों पीढ़ी पूर्व उत्पन्न मनु की स्मृति में परवर्ती बौद्धों की चर्चा कैसे हो सकती है? ऐसे अशुद्ध अर्थ बुद्धिमानों में कभी मान्य नहीं हो सकते।

(ख) या वेदबाह्याः स्मृतयः याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ (१२.९५)

अर्थ—डॉ० अम्बेडकरकृत जो वेद पर आधारित नहीं हैं, मृत्यु के बाद कोई फल नहीं देतीं, क्योंकि उनके बारे में यह घोषित है कि वे अंधकार पर आधारित हैं। "मनु के शब्दों में **विधर्मी** बौद्ध **धर्मावलम्बी** हैं।" (वही, पृ० १५८)

शुद्ध अर्थ—'वेदोक्त' सिद्धान्तों के विरुद्ध जो मान्यताएं, ग्रन्थ हैं (असुरों, नास्तिकों आदि के बनाये हुए), और जो कोई कुसिद्धान्त हैं, वे सब श्रेष्ठ फल से रहित हैं। वे परलोक और इस लोक में अज्ञानान्धकार एवं दुःख में फंसाने वाले हैं।'

समीक्षा—इस श्लोक के किसी शब्द से यह भासित नहीं होता कि इसमें बौद्ध धर्म का खण्डन है। जब मनु के समय में ही वर्णबाह्य अनार्य, असुर आदि लोग थे, तो उनकी भिन्न विचारधाराएं भी थीं, जो वेद विरुद्ध थीं। उनको छोड़कर इसे बौद्धों से जोड़ना अपनी अज्ञानता और पूर्वाग्रह को दर्शाना है। ऐसा करके सभी लेखक, चाहे वे पाश्चात्य हैं या भारतीय, मनु के स्थितिकाल के विषय में भ्रम फैला रहे हैं और मनुस्मृति के भावों को स्वेच्छाचारिता एवं दुर्भावना-पूर्वक विकृत कर रहे हैं। इसे कहते हैं विरोध के लिए सत्य को तिलांजलि देना!

(ग) कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाखण्डस्थांश्च मानवान्।
विकर्मस्थान् शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात्। (९.२२५)

डॉ. अम्बेडकरकृत अर्थ :—"जो मनुष्य **विधर्म का पालन करते हैं**....... राजा को चाहिए कि वह उन्हें अपने साम्राज्य से निष्कासित कर दे।"(वही, खंड ७, ब्राह्मणवाद की विजय, पृ०१५२)

शुद्ध अर्थ :—'जुआरियों, अश्लील नाच-गान करने वालों, अत्याचारियों, पाखण्डियों, विरुद्ध या बुरे कर्म करने वालों, शराब बेचने वालों को राजा अपने राज्य से शीघ्रातिशीघ्र निकाल दे।'

समीक्षा :- संस्कृत पढ़ने वाला छोटा बच्चा भी जानता है कि कर्म,

सुकर्म,विकर्म, दुष्कर्म, अकर्म इन शब्दों में कर्म 'क्रिया' या 'आचरण' का अर्थ देते है। इस श्लोक में "विकर्मस्थ" का अर्थ है- विपरीत, या विरुद्ध कर्म करने वाले लोग अर्थात् बुरे या निर्धारित कर्मों के विपरीत कर्म करने वाले लोग। इसमें कर्म का 'धर्म' अर्थ नहीं है। किन्तु डॉ० अम्बेडकर ने यहा बलात् 'धर्म' अर्थ करके 'विधर्मी' यह अनर्थ किया है। ऐसा करके अनर्थकर्त्ता का प्रयोजन यह है कि वह विधर्मी से 'बौद्धधर्मी' मनमाना अर्थ लेना चाहता है और फिर मनु तथा मनुस्मृति को बौद्ध धर्म के बाद का ग्रन्थ बताकर मनु को बौद्धविरोधी सिद्ध करना चाहता है, जबकि पूर्वप्रदत्त प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि 'मनुस्मृति' बौद्धकाल से बहुत पहले की रचना है। क्या मनुविरोधियों का यही तटस्थ और कथित ऐतिहासिक एवं सत्य अनुसन्धान है?

(२) अशुद्ध अर्थ करके मनु को ब्राह्मणवादी कहकर बदनाम करना

(क) **सैनापत्यं च राज्यं च दण्डेनतृत्वमेव च।**
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥ (१२.१००)

डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ :—"राज्य में सेनापति का पद, शासन के अध्यक्ष का पद, प्रत्येक के ऊपर शासन करने का **अधिकार ब्राह्मण के योग्य** है।" (वही, पृ० १४८)

शुद्ध अर्थ :-'सेनापति का कार्य, राज्यप्रशासन का कार्य, दण्ड और न्याय करने का कार्य, चक्रवर्ती सम्राट् होना, इन कार्यों को भली-भांति करने की योग्यता वेदशास्त्रों का विद्वान् ही रखता है। अर्थात् वही इन पदों के योग्य है।'

समीक्षा :—पाठक देखें कि मनु ने इस श्लोक में कहीं भी ब्राह्मण पद का प्रयोग नहीं किया है। वेद-शास्त्रों के विद्वान् तो क्षत्रिय और वैश्य भी होते थे। मनु स्वयं राजर्षि था और अपने समय का सर्वोच्च वेदशास्त्रज्ञ था [द्रष्टव्य मनु० १.४]। यहां भी क्षत्रिय की योग्यता वर्णित की है। ब्राह्मण शब्द बलात् श्लोकार्थ में जोड़ लिया है। इसका लक्ष्य यह है कि इससे मनुस्मृति को ब्राह्मणवादी शास्त्र कहकर बदनाम करने का अवसर मिले। इसमें 'वेदशास्त्रविद्' शब्द है जिसका अर्थ स्पष्टतः 'वेदशास्त्रों का विद्वान्' होता है मनु की व्यवस्था के अनुसार ये क्षत्रिय के कार्य हैं (देखिए १.८९ श्लोक)।

अतः यहां 'वेदशास्त्रों का विद्वान् क्षत्रिय' अर्थ है। ब्राह्मण अर्थ करना मनुमत के विरुद्ध भी है क्योंकि मनुमतानुसार ये ब्राह्मण के कार्य हैं ही नहीं। इस प्रकार पक्षपातपूर्ण और अशुद्ध अर्थ करना किसी भी लेखक व समीक्षक के लिए उचित नहीं है।

(ख) कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यःसहस्त्रमिति धारणा॥ (८.३३६)

डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ :—"जहां निम्न जाति का कोई व्यक्ति एक पण से दण्डनीय है, उसी अपराध के लिए राजा एक सहस्र पण से दण्डनीय है और **वह यह जुर्माना ब्राह्मणों को दे या नदी में फेंक दे, यह शास्त्र का नियम है।**" (वही, हिन्दू समाज के आचार-विचार पृ० २५०)

शुद्ध अर्थ :— जिस अपराध में साधारण मनुष्य एक कार्षापण (= पैसा) से दण्डित किया जाये, उसी अपराध में राजा को एक हजार पैसा (हजार गुणा) दण्ड होना चाहिए। यह दण्ड का मान्य सिद्धान्त है।

समीक्षा :—अर्थ में काले अक्षरों में अंकित वाक्य मनमाने ढंग से कल्पित हैं, जो श्लोक के किसी पद से नहीं निकलते। यह अनर्थ मनु को ब्राह्मणवादी होने का भ्रम फैलाने के लिए या फिर नदी में फैंकने की बात कहकर उसे मूर्ख और अन्धविश्वासी दिखाने के लिए किया गया है। एक ऊंचे आदर्शात्मक विधान को भी किस प्रकार निम्न स्तर का दिखाने की कोशिश है! पाठक इस रहस्य पर विचार करें।

(ग) शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते।
द्विजातीनां च वर्णानां विप्लवे कालकारिते॥ (८.३४८)

डॉ. अम्बेडकरकृत अर्थ :—"जब **ब्राह्मणों के** धर्माचरण में बलात् विघ्न होता हो, तब द्विज शस्त्रास्त्र ग्रहण कर सकते हैं,और तब भी जब किसी समय द्विज वर्ग पर कोई भंयकर विपत्ति आ जाए।" (वही, हिन्दू समाज के आचार विचार, पृ० २५०)

शुद्ध अर्थ :—'जब द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) के धर्मपालन में बाधा उत्पन्न की जा रही हो और किसी समय या किसी परिस्थिति के कारण उनमें विद्रोह उत्पन्न हो गया हो, तो उस समय द्विजों को भी शस्त्रधारण कर लेना चाहिए।'

समीक्षा :—पाठक ध्यान दें, इस श्लोक के अर्थ में ब्राह्मण शब्द बलात् प्रक्षिप्त किया है क्योंकि इस श्लोक में ब्राह्मण शब्द है ही नहीं। बहुवचन में स्पष्टतः तीनों द्विजातियों का उल्लेख है। यहां भी वही पूर्वाग्रह है मनु को ब्राह्मणवादी सिद्ध करने का। "विप्लवे" का यहां 'विपत्ति' अर्थ अशुद्ध है, सही अर्थ 'विद्रोह' है।

(३) अशुद्ध करके शूद्र के वर्णपरिर्वतन के सिद्धान्त को झुठलाना।

(क) शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुः मृदुवागानहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥ (९.३३५)

डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ :—"प्रत्येक शूद्र जो शुचिपूर्ण है, जो अपने से उत्कृष्टों का सेवक है, मृदुभाषी है, अहंकार रहित है और **सदा ब्राह्मणों के आश्रित रहता है, (अगले जन्म में)** उच्चतर जाति प्राप्त करता है।" (वही, खंड ९, अराजकता कैसे जायज है,पृ०११७)

शुद्ध अर्थ :—'जो शूद्र तन-मन से शुद्ध-पवित्र है, अपने से उत्कृष्टों की संगति में रहता है, मधुरभाषी है, अहंकाररहित है और जो सदा ब्राह्मण आदि उच्च तीन वर्णों के सेवाकार्य में रहता है, वह उच्च वर्ण को प्राप्त कर लेता है।'

समीक्षा :—यह मनु का वर्णपरिर्वतन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसमें शूद्र द्वारा उच्च वर्ण की प्राप्ति का वर्णन है। इसका अभिप्राय यह है कि मनु की वर्णव्यवस्था गुण ,कर्म, योग्यता पर आधारित है जो पूर्णतः आपत्तिरहित है। डॉ. अम्बेडकर ने इतने आदर्श सिद्धान्त का भी अनर्थ करके उसे विकृत कर दिया। इसमें दो अनर्थ किये गये हैं, **एक**-श्लोक में इसी जन्म में उच्च वर्ण प्राप्ति का वर्णन है, अगले जन्म का कहीं उल्लेख नहीं है। डॉ० अम्बेडकर ने उच्चजाति की प्राप्ति अगले जन्म में वर्णित की है जो असंभव और मनमानी कल्पना है। **दूसरा**-श्लोक में **'ब्राह्मण आदि'** तीन वर्णों के आश्रय का कथन है किन्तु उन्होंने केवल ब्राह्मणों का नाम लेकर इस सिद्धान्त को भी ब्राह्मणवादी पक्षपात में घसीटने की कोशिश की है। इतना उत्तम सिद्धान्त भी उन्हें नहीं सुहाया, महान् आश्चर्य है !!

(४) अशुद्ध अर्थ करके जातिव्यवस्था का भ्रम पैदा करना

(क) ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः त्रयो वर्णाः द्विजातयः।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रः नास्ति तु पंचमः॥ (१०.४)

डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ :—"इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि मनु चातुर्वर्ण्य का विस्तार नहीं चाहता था और इन समुदायों को मिलाकर पंचम वर्ण की व्यवस्था के पक्ष में नहीं था, जो चारों वर्णों से बाहर थे।"(वही खंड ९, 'हिन्दू और जातिप्रथा में उसका अटूट विश्वास,' पृ० १५७-१५८)

शुद्ध अर्थ :—'आर्यों की वर्णव्यवस्था में विद्यारूपी दूसरा जन्म होने के कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण द्विजाति कहलाते हैं। विद्याध्ययन रूपी दूसरा जन्म न होने के कारण 'एकमात्र जन्मवाला' चौथा वर्ण शूद्र है। पांचवां कोई वर्ण नहीं है।'

समीक्षा :—गुण, कर्म, योग्यता पर अधारित मनु की वर्णव्यवस्था की परिभाषा देने वाला और शूद्र को आर्य तथा सवर्ण सिद्ध करने वाला यह सिद्धान्त भी डॉ० अम्बेडकर को नहीं भाया। दुराग्रह एवं कुतर्क के द्वारा उन्होंने इसको भी विकृत करने की कोशिश कर डाली। डॉ० अम्बेडकर द्वारा विचारित अर्थ इस श्लोक में दूर-दूर तक भी नहीं है। मनु का यह आग्रह कहीं भी नहीं रहा कि आर्येतर जन वर्णव्यवस्था में सम्मिलित न हों। उन्होंने तो "**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥**" (२.२०) श्लोक में पृथ्वी के सभी वर्गों के लोगों का आह्वान किया है कि वे यहां आयें और अपने-अपने योग्य चरित्र-कर्त्तव्यकर्म की शिक्षा प्राप्त करें। अतः डॉ० अम्बेडकर का कथन मनु की मान्यता और व्यवस्था के विपरीत है। इस श्लोक में मनु ने केवल आर्यों की वर्णव्यवस्था के चार समुदायों को परिभाषित किया है। अन्य कोई आग्रह या निषेध नहीं है। आश्चर्य है कि इस श्लोक की आलोचना करते समय डॉ० अम्बेडकर अपने दूसरे स्थान पर किये प्रशंसात्मक अर्थ को भी भूल गये और परस्पर विरोधी लेखन पर बैठे। वहां उन्होंने इस श्लोक के आधार पर शूद्रों को आर्य माना है (अंबेडकर वाङ्मय, खंड ८, पृ० २२६; उद्धृत इस पुस्तक के पृ० २१९ पर) सरकार की नौकरी व्यवस्था में चार समुदाय हैं- प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी। इस पर कोई आपत्ति करे कि 'इसका मतलब सरकार पांचवें वर्ग को नौकरी ही नहीं देना चाहती,' तो ऐसा ही बालपन का तर्क डॉ० अम्बेडकर का है। चार वर्णों में जब विश्व

के सभी जन समाहित हो जायेंगे तो पांचवें वर्ण की आवश्यकता ही कहां रहेगी?

(५) अशुद्ध अर्थ करके मनु को स्त्री-विरोधी कहना

(क) न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा॥ (११.३६)

डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ :—"स्त्री वेदविहित अग्निहोत्र नहीं करेगी।" (वही, नारी और प्रतिक्रान्ति, पृ०३३३)

शुद्ध अर्थ :—'कन्या, युवती, अल्पशिक्षित, मूर्ख, रोगी और संस्कारों से हीन व्यक्ति, ये किसी अग्निहोत्र में होता नामक ऋत्विक् बनने के अधिकारी नहीं हैं।'

समीक्षा :—इस श्लोक का इतना अनर्थ कर दिया कि डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ में इसका न अर्थ है और न भाव। यहां केवल कन्या और युवती को ऋत्विक्='यज्ञ कराने वाली' न बनाने का कथन है, अग्निहोत्र-निषेध का नहीं। न ही सारी स्त्री जाति के लिए यज्ञ का निषेध है। यह अनर्थ मनु को स्त्री-विरोधी सिद्ध करने के लिए किया गया है। इसको निष्पक्ष और सत्य शोध कैसे कहा जा सकता है?

(ख) **पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः।**
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले॥ (५.१४९)

डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ :—"स्त्री को अपने पिता, पति या पुत्रों से अलग रहने की इच्छा नहीं करनी चाहिए, इनको त्यागकर वह दोनों परिवारों (उसका परिवार और पति का परिवार) को निंदित कर देती है। स्त्री को अपना पति छोड़ देने का अधिकार नहीं मिल सकता।" (वही पृ २०३)

शुद्ध अर्थ :—'स्त्री को अपने पिता,पति या पुत्रों से अलग रहने की इच्छा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इनसे पृथक् बिल्कुल अकेली रहने से (बलात्कार, अपहरण आदि अपराध की आशंका होने से) दोनों कुलों की निन्दा होने का भय रहता है।'

समीक्षा :—इस श्लोक में कहीं नहीं लिखा कि "स्त्री को अपना पति छोड़ देने का अधिकार नहीं मिल सकता।" श्लोक में स्त्रियों के लिए परामर्श- मात्र है कि स्त्रियां पिता, पति, पुत्र से अलग न रहें" श्लोकार्थ में उक्त निष्कर्ष स्वेच्छा से बलात् निकाला गया है जो श्लोक के विपरीत और मनुविरुद्ध है। मनु ने विशेष परिस्थितियों में

पति-पत्नी को पृथक् हो जाने का अधिकार दिया है (९.७४-८१; द्रष्टव्य पृ० १६७-१६८)। इस अनर्थ के द्वारा मनु को स्त्री-निन्दक सिद्ध करने का प्रयास है।

(ग) सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥ (५.१५०)

डॉ. अम्बेडकरकृत अर्थ :—"उसे सर्वदा प्रसन्न, गृह कार्य में चतुर, घर में बर्तनों को स्वच्छ रखने में सावधान तथा खर्च करने में मितव्ययी होना चाहिए।" (वही, पृ० २०५)

शुद्ध अर्थ :—'पत्नी को सदा प्रसन्नमन रहना चाहिए, गृहकार्यों में चतुर, घर तथा घरेलू सामान को स्वच्छ-सुन्दर रखने वाली और खर्च करने में मितव्ययी होना चाहिए।'

समीक्षा :—"**सुसंस्कृत-उपस्करया**" का "बर्तनों को स्वच्छ रखने वाली" अर्थ अशुद्ध है। 'उपस्कर' का अर्थ केवल बर्तन नहीं होता। यह संकीर्ण अर्थ करके स्त्री के प्रति मनु की संकीर्ण मनोवृत्ति दिखाने का प्रयास है। यहां 'संपूर्ण घर व सारा घरेलू सामान' अर्थ है, जो पत्नी के निरीक्षण में हुआ करता है।

(६) अशुद्ध अर्थों से विवाह—विधियों को विकृत करना

(क)(ख)आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्यायाः ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥ (३.२७)
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥(३.२८)
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिविदार्षो धर्मः स उच्यते॥ (३.२९)

डॉ० अम्बेडकरकृत अर्थ :—"ब्राह्म विवाह के अनुसार किसी वेदज्ञाता को वस्त्रालंकृत पुत्री **उपहार में** दी जाती थी। दैव विवाह था जब कोई पिता अपने घर यज्ञ करने वाले पुरोहित को **दक्षिणास्वरूप** अपनी पुत्री दान कर देता था॥ आर्ष विवाह के अनुसार वर, वधू के पिता को उसका **मूल्य चुका कर** प्राप्त करता था।" (वही, खंड ८, उन्नीसवीं पहेली पृ० २३१)

शुद्ध अर्थ :—'वेदज्ञाता और सदाचारी विद्वान् को कन्या द्वारा स्वयं पसन्द करने के बाद उसको घर बुलाकर वस्त्र और अलंकृत कन्या को विवाहविधिपूर्वक देना 'ब्राह्म विवाह' कहाता है॥'

'आयोजित विस्तृत यज्ञ में ऋत्विज् कर्म करने वाले विद्वान् को अलंकृत पुत्री का विवाहविधिपूर्वक कन्यादान करना 'दैव विवाह' कहाता है॥'

'एक अथवा दो जोड़ा गायों का धर्मानुसार वर पक्ष से लेकर विवाहविधिपूर्वक कन्या प्रदान करना 'आर्ष विवाह' है।' आगे ३.५३ में गाय का जोड़ा लेना मनु मतानुसार वर्जित है॥

समीक्षा :—वैदिक व्यवस्था में विवाह एक प्रमुख संस्कार है और प्रत्येक संस्कार यज्ञीय विधिपूर्वक सम्पन्न होता है। मनु ने ५.१५२ में विवाह में यज्ञीयविधि का विधान किया है। संस्कार की पूर्णविधि करके कन्या को पत्नी के रूप में ससम्मान प्रदान किया जाता है। इन श्लोकों में उन्हीं विवाहविधियों का निर्देश है। डॉ० अम्बेडकर ने उन सभी विधियों को अर्थ से निकाल दिया और कन्या को **'उपहार', 'दक्षिणा', 'मूल्य'** में देने का अशुद्ध अर्थ करके सम्मानित नारी से एक 'वस्तु-मात्र' बना दिया। श्लोकों में यह अर्थ किसी भी दृष्टिकोण से नहीं बनता। आर्ष विवाह में गाय का जोड़ा वैदिक संस्कृति में एक श्रद्धापूर्ण प्रतीक मात्र है। उसे वर और कन्या का मूल्य बता दिया गया है। क्या वर व कन्या का मूल्य 'एक जोड़ा गाय' ही है? कितना अनर्थ किया है!!

अनुवादक को जब भाषा, शैली, उसकी गम्भीरता और परम्परा का सटीक ज्ञान नहीं होता तो उससे इसी प्रकार की भूलें हो जाती हैं। 'कन्यादान' का अर्थ तो आज भी 'विवाह संस्कार करके कन्या देना' परम्परा में है। यह परम्परा संस्कृत के इन्हीं श्लोकों से आयी है। पता नहीं डॉ० अम्बेडकर ने उनको भी गलत क्यों प्रस्तुत किया?

उपर्युक्त उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया गया है कि भाषा, शब्दशैली और वैदिक परम्परा की वास्तविकता के ज्ञान के अभाव में कैसी-कैसी भयंकर भूलें डॉ० अम्बेडकर से हुई हैं, और कैसे गलत निष्कर्ष प्रस्तुत हुए हैं। इन श्लोकों में मनु बिल्कुल ठीक थे, किन्तु उन्हें गलत रूप में प्रस्तुत किया गया है। डॉ० अम्बेडकर के साहित्य में ऐसी दर्जनों भूलें या दुराग्रह और भी हैं। विस्तारभय से यहां उनकी समीक्षा नहीं की जा रही है। यदि उक्त अनर्थ नहीं किये जाते तो डॉ० अम्बेडकर की आलोचना वस्तुतः निष्पक्ष मानी जा सकती थी, किन्तु अब वह अशुद्ध, दुराग्रहपूर्ण और अप्रामाणिक हो गयी है।

* * *

अध्याय नौ

डॉ० अम्बेडकर के लेखन में परस्परविरोध

डॉ० अम्बेडकर ने शंकराचार्य की आलोचना करते हुए उनके लेखन में परस्परविरोधी कथन माने हैं। उन्होंने उन परस्परविरोधों के आधार पर शंकराचार्य के कथनों को अप्रामाणिक कहकर अमान्य घोषित किया है और यह कटु टिप्पणी की है कि जिसके लेखन में परस्परविरोध पाये जाते हैं, उसे ''पागल'' ही कहा जायेगा। (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ८, पृ० २८९)

आश्चर्य का विषय है कि स्वयं डॉ० अम्बेडकर के ग्रन्थ परस्परविरोधी कथनों से भरे पड़े हैं और पुनरुक्तियों की तो कोई गणना ही नहीं है। यह स्वीकृत तथ्य है कि परस्परविरोध नामक दोष से युक्त कथन न तो प्रमाण-कोटि में आता है, न मान्य होता है, और न आदरणीय। न्यायालय में भी उसको प्रमाण नहीं माना जाता। बुद्धिमानों में ऐसा त्रुटिपूर्ण लेखन सम्मानयोग्य नहीं होता। ऐसे लेखन को पढ़कर पाठक जहां दिग्भ्रमित होता है वहीं उससे उसे निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता। ऐसा लेखन तब होता है जब लेखक अस्थिरचित्त हो, अनिर्णय की स्थिति में हो, अथवा भावुकताग्रस्त हो। पाठक इन बातों का निर्णय अग्रिम उल्लेखों को स्वयं पढ़कर करें।

डॉ० अम्बेडकर के लेखन को, विशेषतः इस अध्याय में उद्धृत संदर्भों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि वे दो प्रकार की मनः—स्थिति में जीते रहे। जब उनका समीक्षात्मक मन उन पर प्रभावी होता था तो वे तर्कपूर्ण मत प्रकट करते थे, और जब प्रतिशोधात्मक मन प्रभावी होता था तो वे सारी मर्यादाओं को तोड़कर कटुतम शब्दों का प्रयोग करने लगते थे। उनका व्यक्तित्व बहुज्ञसम्पन्न किन्तु दुविधापूर्ण, समीक्षक किन्तु पूर्वाग्रहग्रस्त, चिन्तक किन्तु भावुक, सुधारक किन्तु प्रतिशोधात्मक था।

यहां परस्परविरोधों को उद्धृत करने का मुख्य प्रयोजन यह भी दिखाना है कि डॉ० अम्बेडकर ने अपने ग्रन्थों में मनुस्मृति के जिन श्लोकार्थों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है, उनमें परस्परविरोधी

विधान हैं। एक श्लोकार्थ जो विधान कर रहा है, दूसरा उसके विपरीत विधान कर रहा है। डॉ० अम्बेडकर ने दोनों तरह के श्लोकों को प्रमाण मानकर उद्धृत किया है। ऐसी स्थिति में ये प्रश्न उपस्थित होते हैं जिनका समाधान पाठकों को चाहिए—

१. परस्परविरोधी श्लोकार्थ और मत, डॉ० अम्बेडकर के लेखन में दोनों ही हैं। उनका ज्ञान डॉ० अम्बेडकर को कैसे नहीं हुआ? उन्होंने दोनों को प्रस्तुत करते समय परस्परविरोध दोष पर ध्यान क्यों नहीं दिया? अथवा उनको स्वीकार क्यों नहीं किया?
२. क्या कभी दोनों परस्परविरोधी वचन प्रामाणिक हो सकते हैं?
३. क्या उनसे उनके लेखन की प्रामाणिकता नष्ट नहीं हुई है?
४. परस्परविरोधी श्लोकार्थ मिलने पर क्या डॉ० अम्बेडकर को मनु के किसी एक श्लोक को प्रक्षिप्त नहीं मानना चाहिए था? दोनों मौलिक कैसे माने जा सकते हैं?

यदि डॉ० अम्बेडकर परस्परविरोध को स्वीकार कर एक को प्रक्षिप्त स्वीकार कर लेते तो उनकी मनुसम्बन्धी सारी आपत्तियों का निराकरण स्वतः हो जाता। न गलत निष्कर्ष प्रस्तुत होते, न उनका लेखन विद्वानों में अप्रमाणिक कोटि का माना जाता, न विरोध का बवंडर उठाना पड़ता। देखिए परस्परविरोधों के कुछ उदाहरण—

(१) क्या महर्षि मनु जन्मना जाति का जनक है?

आश्चर्य तो यह है कि इस बिन्दु पर डॉ० अम्बेडकर के तीन प्रकार के परस्परविरोधी मत मिलते हैं। देखिए—

(अ) मनु ने जाति का विधान नहीं बनाया अतः वह जाति का जनक नहीं

(क) "एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया न वह ऐसा कर सकता था। जातिप्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था।" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड १, पृ० २९)

(ख) "कदाचित् मनु जाति के निर्माण के लिए जिम्मेदार न हो, परन्तु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश दिया है।........वर्णव्यवस्था जाति की जननी है और इस अर्थ में मनु जातिव्यवस्था का जनक न

भी हो परन्तु उसके पूर्वज होने का उस पर निश्चित ही आरोप लगाया जा सकता है।'' (वही खंड ६, पृ० ४३)

(आ) जाति-संरचना ब्राह्मणों ने की

(क) 'तर्क में यह सिद्धान्त है कि ब्राह्मणों ने जाति-संरचना की।'' (वही, खंड १, पृ० २९)

(ख) ''वर्ण-निर्धारण करने का अधिकार गुरु से छीनकर उसे पिता को सौंपकर ब्राह्मणवाद ने वर्ण को जाति में बदल दिया।'' (वही, खंड ७, पृ० १७२)

(इ) मनु जाति का जनक है

(क) ''जाति-व्यवस्था का जनक होने के कारण विभिन्न जातियों की उत्पत्ति के लिए मनु को स्पष्टीकरण देना होगा।'' (वही, खंड ६, पृ० ५७)

(ख) ''मनु ने जाति का सिद्धान्त निर्धारित किया है।'' (वही, खंड ७, पृ० २२८)

(ग) ''वर्ण को जाति में बदलते समय मनु ने अपने उद्देश्य की कहीं व्याख्या नहीं की।'' (वही, खंड ७, पृ० १६८)

(२) चातुर्वर्ण्य व्यवस्था प्रशंसनीय या निन्दनीय

(अ) चातुर्वर्ण्य व्यवस्था प्रशंसनीय

(क) ''प्राचीन चातुर्वर्ण्य पद्धति में दो अच्छाइयां थीं, जिन्हें ब्राह्मणवाद ने स्वार्थ में अंधे होकर निकाल दिया। पहली, वर्णों की आपस में एक दूसरे से पृथक् स्थिति नहीं थी। एक वर्ण का दूसरे वर्ण में विवाह, और एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ भोजन, दो बातें ऐसी थी जो एक-दूसरे को आपस में जोड़े रखती थीं। विभिन्न वर्णों में असामाजिक भावना के पैदा होने के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी, जो समाज के आधार को ही समाप्त कर देती है।'' (अंबेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० २१८)

(ख) ''यह कहना कि आर्यों में वर्ण के प्रति पूर्वाग्रह था जिसके कारण इनकी पृथक् सामाजिक स्थिति बनी, कोरी बकवास होगी। अगर कोई ऐसे लोग थे जिनमें वर्ण के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं था, तो वह आर्य थे।'' (अंबेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० ३२०)

(ग) "वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों में शूद्र चौथा वर्ण है। यदि समाज केवल चार वर्णों में विभक्त मात्र रहता तो चातुर्वर्ण्यव्यवस्था में कोई आपत्ति न होती।" (शूद्रों की खोज, प्राक्कथन, पृ० १)

(घ) "ब्राह्मणवाद ने समाज के आधार के रूप में वर्ण की मूल संकल्पना को किस प्रकार गलत और घातक स्वरूप दे दिया।" (वही, खंड ७, पृ० १६९)

(ङ) "ब्राह्मणवाद ने प्रमुखतः जो कार्य किया, वह अन्तर्जातीय विवाह और सहभोज की प्रणाली को समाप्त करना था, जो प्राचीन काल में चारों वर्णों में प्रचलित थी।" (वही, खंड ७, पृ० १९४)

(च) "बौद्ध पूर्व समय में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था एक उदार व्यवस्था थी और उसमें गुंजाइश थी। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में जहां चार विभिन्न वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया गया था, वहां इन वर्गों में आपस में विवाह सम्बन्ध करने पर कोई निषेध नहीं था। किसी भी वर्ण का पुरुष विधिपूर्वक दूसरे वर्ण की स्त्री के साथ विवाह कर सकता था।" (वही, खंड ७, पृ० १७५)

(आ) चातुर्वर्ण्य व्यवस्था निन्दनीय

(क) "चातुर्वर्ण्य से और अधिक नीच सामाजिक संगठन की व्यवस्था कौन-सी है, जो लोगों को किसी भी कल्याणकारी कार्य करने के लिए निर्जीव तथा विकलांग बना देती है। इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।" (वही, खंड ६, पृ० ९५)

(ख) "कोई व्यक्ति जो जन्मजात जड़बुद्धि या मूर्ख नहीं है, चातुर्वर्ण्य को समाज का आदर्श रूप कैसे स्वीकार कर सकता है?" (वही, खंड १, 'रानाडे, गांधी और जिन्ना' पृ० २६३)

(ग) "चातुर्वर्ण्य के ये प्रचारक बहुत सोच-समझकर बताते हैं कि उनका चातुर्वर्ण्य जन्म के आधार पर नहीं बल्कि गुण के आधार पर है। यहां पर पहले ही मैं बता देना चाहता हूं कि भले ही यह चातुर्वर्ण्य गुण के आधार पर हो, किन्तु यह आदर्श मेरे विचारों से मेल नहीं खाता।" (वही, खंड १, पृ० ८१)

(३) वेदों की चातुर्वर्ण्य—व्यवस्था

(अ) वेदों का चातुर्वर्ण्य उत्तम और सम्मानजनक—

(क) "शूद्र आर्यं समुदाय के अभिन्न, जन्मजात और सम्मानित सदस्य थे। यह बात यजुर्वेद में उल्लिखित एक स्तुति से पुष्ट होती है।" (वही, खंड ७, पृ० ३२२)

(ख) "शूद्र आर्य समुदाय का सदस्य होता था और वह उसका सम्मानित अंग था।" (वही, खंड ७, पृ० ३२२)

(ग) "मैं मानता हूं कि स्वामी दयानन्द व कुछ अन्य लोगों ने वर्ण के वैदिक सिद्धान्त की जो व्याख्या की है, बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है। " (वही, खंड १, पृ० ११९)

(घ) "चातुर्वर्ण्य की वैदिक पद्धति जाति व्यवस्था की अपेक्षा उत्तम थी।" (वही, खंड ७, पृ० २१८)

(ङ) "वेद में वर्ण की धारणा का सारांश यह है कि व्यक्ति वह पेशा अपनाए, जो उसकी स्वाभाविक योग्यता के लिए उपयुक्त हो।.......वह (वैदिक वर्णव्यवस्था) केवल योग्यता को मान्यता देती है। वर्ण के बारे में महात्मा (गांधी) के विचार न केवल वैदिक वर्ण को मूर्खतापूर्ण बनाते हैं, बल्कि घृणास्पद भी बनाते हैं।......वर्ण और जाति दो अलग-अलग धारणाएं हैं।" (वही, खंड १, पृ० ११९)

(आ) वेदों का चातुर्वर्ण्य समाज-विभाजन और असमानता का जनक—

(क) "यह निर्विवाद है कि वेदों ने चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त की रचना की है, जिसे पुरुषसूक्त नाम से जाना जाता है। यह दो मूलभूत तत्त्वों को मान्यता देता है। उसने समाज के चार भागों में विभाजन को एक आदर्श योजना के रूप में मान्यता दी है। उसने इस बात को भी मान्यता प्रदान की है कि इन चारों भागों के सम्बन्ध असमानता के आधार पर होने चाहिएं।" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ६, पृ० १०५)

(ख) "जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था का नया संस्करण है, जिसे वेदों से आधार मिलता है।" (वही, खंड ९, पृ० १६०)

(४) वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था का सम्बन्ध

(अ) जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था का विकृत रूप है

(क) "कहा जाता है कि जाति, वर्ण-व्यवस्था का विस्तार है। बाद में मैं बताऊंगा कि यह बकवास है। जाति वर्ण का विकृत स्वरूप है। यह विपरीत दिशा में प्रसार है। जात-पात ने वर्ण-व्यवस्था को पूरी तरह विकृत कर दिया है।" (वही, खंड ६, पृ० १८१)

(ख) "जातिप्रथा चातुर्वर्ण्य का, जो कि हिन्दू का आदर्श है, एक भ्रष्ट रूप है।" (वही, खंड १, पृ० २६३)

(ग) "अगर मूल वर्ण पद्धति का यह विकृतीकरण केवल सामाजिक व्यवहार तक सीमित रहता, तब तक तो सहन हो सकता था। लेकिन ब्राह्मण धर्म इतना कर चुकने के बाद भी संतुष्ट नहीं रहा। उसने इस चातुर्वर्ण्य पद्धति के **परिवर्तित तथा विकृत रूप को** कानून बना देना चाहा।" (वही, खंड ७, पृ० २१६)

(आ) जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था का विकास है

(क) "वर्णव्यवस्था जाति की जननी है।" (वही, खंड ६, 'हिन्दुत्व का दर्शन' पृ० ४३)

(ख) "कुछ समय तक ये वर्ण केवल वर्ण ही रहे। कुछ समय के बाद जो केवल वर्ण ही थे, वे जातियां बन गईं और ये चार जातियां चार हजार बन गईं। इस प्रकार आधुनिक जाति-व्यवस्था प्राचीन वर्ण-व्यवस्था का विकास मात्र है।"

"निस्संदेह यह जाति व्यवस्था का ही विकास है। लेकिन वर्ण व्यवस्था के अध्ययन द्वारा कोई भी जाति-व्यवस्था के विचार को नहीं समझ सकता है। जाति का वर्ण से पृथक् अध्ययन किया जाना चाहिए।" (वही, खंड ६, पृ० १७६)

(५) शूद्र आर्य या अनार्य?

(अ) शूद्र मनुमतानुसार आर्य थे

(क) "धर्मसूत्रों की यह बात कि शूद्र अनार्य हैं, नहीं माननी चाहिए। यह सिद्धान्त मनु तथा कौटिल्य के विपरीत है।" (शूद्रों की खोज, पृ० ४२)

(ख) "आर्य जातियों का अर्थ है चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। दूसरे शब्दों में मनु चार वर्णों को आर्यवाद का सार मानते हैं।"....[ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः त्रयो वर्णाः" (मनु० १०.०४)] यह श्लोक दो कारणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक तो यह कि इसमें शूद्रों को दस्यु से भिन्न बताया गया है। दूसरे, इससे पता चलता है कि शूद्र आर्य हैं।" (अंबेडकर वाङ्मय, खंड ८, पृ० २१७)

(आ) शूद्र मनुमतानुसार अनार्य थे

(क) "मनु शूद्रों का निरूपण इस प्रकार करता है, जैसे वे बाहर से आने वाले अनार्य थे।" (वही, खंड ७, पृ० ३१९)

(६) शूद्रों का वेदाध्ययन-अधिकार

(अ) वेदों में सम्मानपूर्वक शूद्रों का अधिकार था

(क) "वेदों का अध्ययन करने के बारे में शूद्रों के अधिकारों के प्रश्न पर 'छान्दोग्य उपनिषद्' उल्लेखनीय है।.......एक समय ऐसा भी था, जब अध्ययन के सम्बन्ध में शूद्रों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।" (वही, खंड ७, पृ० ३२४)

(ख) "केवल यही बात नहीं थी कि शूद्र वेदों का अध्ययन कर सकते थे। कुछ ऐसे शूद्र थी थे, जिन्हें ऋषि-पद प्राप्त था और जिन्होंने वेदमन्त्रों की रचना की। कवष एलूष नामक ऋषि की कथा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वह एक ऋषि था और ऋग्वेद के दसवें मंडल में उसके रचे हुए अनेक मन्त्र हैं।" (वही, खंड ७, पृ० ३२४)

(ग) "शतपथ ब्राह्मण में ऐसा प्रमाण मिलता है कि शूद्र सोम यज्ञ कर सकता था।" (वही, खंड ७, पृ० ३२४)

(घ) "ऐसे भी प्रमाण हैं कि शूद्र स्त्री ने 'अश्वमेध' नामक यज्ञ में भाग लिया था।" (वही, खंड ७, पृ० ३२५)

(ङ) "जहां तक उपनयन संस्कार और यज्ञोपवीत धारण करने का प्रश्न है, इस बात का कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता कि यह शूद्रों के लिए वर्जित था। बल्कि 'संस्कार गणपति' में इस बात का स्पष्ट प्रावधान है और कहा गया है कि शूद्र उपनयन के अधिकारी हैं।" (वही, खंड ७, पृ० ३२५-३२६)

(आ) वेदों में शूद्रों का अधिकार नहीं था

(क) "वेदों के ब्राह्मणवाद में शूद्रों का प्रवेश वर्जित था, लेकिन भिक्षुओं के बौद्ध धर्म के द्वार शूद्रों के लिए खुले हुए थे।" (वही, खंड ७, पृ० १९७)

(७) शूद्र का सेवाकार्य स्वेच्छापूर्वक

(अ) शूद्र सेवाकार्य में स्वतन्त्र है

(क) "ब्रह्मा ने शूद्रों के लिए एक ही व्यवसाय नियत किया है—विनम्रता पूर्वक तीन अन्य वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना [मनु० १.९१]।" (अंबेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० ३१८, २०१, २३१; खंड ६, पृ० ६२, १४२; खंड ९, पृ० १०५, १०९, १७७, खंड १३, पृ० ३० आदि)

(ख) "यदि कोई शूद्र (जो ब्राह्मणों की सेवा से अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर पाता है) जीविका चाहता है तब वह क्षत्रिय की सेवा करे या वह किसी धनी वैश्य की सेवा कर अपना जीवन-निर्वाह करे (मनु० १०.१२१)।" (वही, खंड ९, पृ० ११६, १७७; खंड ६, पृ० १५२;)

(आ) शूद्र को केवल ब्राह्मण की सेवा करनी है

(क) "परन्तु शूद्र को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए [१०.१२२]।" (वही, खंड ६, पृ० ६१, १५२; खंड ९, पृ० १७७)

(ख) "ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सेवा के लिए ही शूद्रों की सृष्टि की है [मनु० ८.४१३]।" (वही, खंड ७, पृ० २००; खंड ९, पृ० १७७,)

(ग) "ब्राह्मणों की सेवा करना शूद्र के लिए एकमात्र उत्तम कर्म कहा गया है क्योंकि इसके अतिरिक्त वह जो कुछ करेगा, उसका उसे कोई फल नहीं मिलेगा (मनु० १०.१२३)।" (वही, खंड ९, पृ० ११३, १७७; खंड ६, पृ० ९८; खंड ७, पृ० २३४)

(८) शूद्र वेतनभोगी सेवक या पराधीन ?

(अ) शूद्र को उचित वेतन और जीविका दें

(क) "शूद्र की क्षमता, उसका कार्य तथा उसके परिवार में उस

पर निर्भर लोगों की संख्या को ध्यान में रखते हुए वे लोग उसे अपनी पारिवारिक संपत्ति से उचित वेतन दें (मनु० १०.१२४)।" (अंबेडकर वाड्मय, खंड ६, पृ० ६२, १५२; खंड ७, पृ० २०१, २३४, ३१८; खंड ९, पृ० ११६, १७८)

(ख) "वेद में वर्ण की धारणा का सारांश यह है कि व्यक्ति वह पेशा अपनाए जो उसकी स्वाभाविक योग्यता के लिए उपयुक्त हो।" (वही, खंड १, पृ० ११९)

(आ) शूद्र गुलाम था

(क) "मनु ने गुलामी को मान्यता प्रदान की है। परन्तु उसने उसे शूद्र तक ही सीमित रखा।" (वही, खंड ६, पृ० ४५)

(ख) "अपने अन्न का शेष भाग और उसके साथ ही पुराने कपड़े अनावश्यक अनाज और अपने घर का साज-सामान उसे देना चाहिए (मनु० १०.१२५)।" (वही, खंड ६, पृ० ६२, १५२; खंड ७, पृ० २०१, २३४, ३१८; खंड ९, पृ० ११६, १७८)

(ग) "प्रत्येक ब्राह्मण शूद्र को दास कर्म करने के लिए बाध्य कर सकता है, चाहे उसने उसे खरीद लिया हो अथवा नहीं, क्योंकि शूद्रों की सृष्टि ब्राह्मणों का दास बनने के लिए ही की है [मनु० ८.४१३]।" (वही, खंड ७, पृ० ३१८)

(घ) "उनका (शूद्रों का) भोजन आर्यों के भोजन का उच्छिष्ट अंश होगा (मनु० ५.१४०)।" (वही, खंड ९, पृ० ११३)

(९) मनु की दण्डव्यवस्था कौन—सी है?

(अ) ब्राह्मण सबसे अधिक दण्डनीय और शूद्र सबसे कम

"यदि पिता, शिक्षक, मित्र, माता, पत्नी, पुत्र, घरेलू पुरोहित, अपने-अपने कर्त्तव्य का दृढ़ता व सच्चाई के साथ निष्पादन नहीं करते हैं तो इनमें से किसी को भी राजा द्वारा बिना दंड के नहीं छोड़ा जाना चाहिए।" (मनु० ८.३३५,३३६) (अंबेडकर वाड्मय, खंड ६, पृ० ६१, १५६ तथा खंड ७, २५०)

(ख) "चोरी करने पर शूद्र को आठ गुना, वैश्य को सोलह गुना, और क्षत्रिय को बत्तीस गुना पाप होता है। ब्राह्मण को चौंसठ गुना या एक सौ गुना या एक सौ अठाईस गुना तक, इनमें से प्रत्येक

को अपराध की प्रकृति की जानकारी होती है [मनु० ८.३३७, ३३८]।" (वही, खंड ७, पृ० १६३)

(आ) ब्राह्मण दण्डनीय नहीं है, शूद्रादि अधिक दण्डनीय

(क) "पुरोहित वर्ग के व्यभिचारी को प्राणदंड देने की बजाए उसका अपकीर्तिकर मुंडन करा देना चाहिए तथा इसी अपराध के लिए अन्य वर्गों को मृत्युदंड तक दिया जाए (मनु० ८.३७९)।" (वही, खंड ६, पृ० ४९)

(ख) "(राजा) किसी भी ब्राह्मण का वध न कराए, चाहे उस ब्राह्मण ने सभी अपराध क्यों न किए हों, वह ऐसे (अपराधी को) अपने राज्य से निष्कासित कर दे और उसे (अपनी) समस्त सम्पत्ति और अपना (शरीर) सकुशल ले जाने दे (मनु० ८.३८०)। (अम्बेडकर वाङ्मय खंड ९, पृ० ११५ तथा खंड ६, पृ० ४९, १५० तथा खंड ७, पृ० १६१)"

(ग) "लेकिन न्यायप्रिय राजा तीन निचली जातियों (वर्णों) के व्यक्तियों को आर्थिक दंड देगा और उन्हें निष्कासित कर देगा, जिन्होंने मिथ्या साक्ष्य दिया है, लेकिन ब्राह्मण को वह केवल निष्कासित करेगा (मनु० ८.१२३, १२४)।" (वही खंड ७, पृ० १६१, २४५)

(घ) "कोई भी ब्राह्मण जिसने चाहे तीनों लोकों के मनुष्यों की हत्याएं क्यों न की हों, उपनिषदों के साथ-साथ ऋक्, यजु या सामवेद का तीन बार पाठ कर सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (मनु० ११.२६१-२६२)।" (वही, खंड ७, पृ० १५८)

(१०) शूद्र का ब्राह्मण बनना

(अ) आर्यों में शूद्र ब्राह्मण बन सकता था

(क) "इस प्रक्रिया में यह होता था कि जो लोग पिछली बार केवल शूद्र होने के योग्य बच जाते थे, ये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने के लिए चुन लिए जाते थे, जब कि पिछली बार जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने के लिए चुने गए होते थे, वे केवल शूद्र होने के योग्य होने के कारण रह जाते थे। इस प्रकार वर्ण के व्यक्ति बदलते रहते थे।" (वही, खंड ७, पृ० १७०)

(ख) "अन्य समाजों के समान भारतीय समाज भी चार वर्णों में विभाजित था।.......इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि आरंभ में यह अनिवार्य रूप से वर्ग विभाजन के अन्तर्गत व्यक्ति दक्षता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था और इसीलिए वर्णों को व्यक्तियों के कार्य की परिवर्तनशीलता स्वीकार्य थी।" (वही, खंड १, पृ० ३१)

(ग) "जिस प्रकार कोई शूद्र ब्राह्मणत्व को और कोई ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त होता है, उसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से उत्पन्न शूद्र भी क्षत्रियत्व और वैश्यत्व को प्राप्त होता है (मनुस्मृति १०.६५)" (वही, खंड १३, पृ० ८५)

(घ) "प्रत्येक शूद्र जो शुचिपूर्ण है, जो अपने से उत्कृष्टों का सेवक है, मृदुभाषी है, अहंकाररहित है, और सदा ब्राह्मणों के आश्रित रहता है, वह उच्चतर जाति प्राप्त करता है (मनु० ९.३३५)" (वही, खंड ९, पृ० ११७)

(आ) आर्यों में शूद्र ब्राह्मण नहीं बन सकता था

(क) "आर्यों के समाज में शूद्र अथवा नीच जाति का मनुष्य कभी ब्राह्मण नहीं बन सकता था।" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० ९३)

(ख) "वैदिक शासन में शूद्र ब्राह्मण बनने की कभी आकांक्षा नहीं कर सकता था।" (वही, खंड ७, पृ० १९७)

(ग) "उच्च वर्ण में जन्मे और निम्न वर्ण में जन्मे व्यक्ति की नियति उसका जन्मजात वर्ण ही है।" (वही, खंड ६, पृ० १४६)

(११) ब्राह्मण कौन हो सकता था?

(अ) वेदों का विद्वान् ब्राह्मण होता था

(क) "स्वयंभू मनु ने ब्राह्मणों के कर्त्तव्य वेदाध्ययन, वेद की शिक्षा देना, यज्ञ करना, अन्य को यज्ञ करने में सहायता देना और अगर वह धनी है, तब दान देना और अगर निर्धन है, तब दान लेना निश्चित किए (मनु० १.८८)।" (अंबेडकर वाङ्मय, खंड ७, पृ० २३०; खंड ६, पृ० १४२; खंड ९, पृ० १०४; खंड १३, पृ० ३०)

(ख) "वेदों का अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना, अन्य को यज्ञ करने में सहायता देना, यदि पर्याप्त सम्पत्ति है तब निर्धनों को दान देना, यदि स्वयं निर्धन है तब पुण्यशील व्यक्तियों से दान लेना, ये छह कर्त्तव्य प्रथम उत्पन्न वर्ण (ब्राह्मणों) के हैं (मनु० १०.७५)।" (वही, खंड ७, पृ० १६०, २३१; खंड ६, पृ० १४२; खंड ९, पृ० ११३)

(ग) "वर्ण के अधीन कोई ब्राह्मण मूढ़ नहीं हो सकता। ब्राह्मण के मूढ़ होने की संभावना तभी हो सकती है, जब वर्ण जाति बन जाता है, अर्थात् जब कोई जन्म के आधार पर ब्राह्मण हो जाता है।" (वही, खंड ७, पृ० १७३)

(आ) वेदाध्ययन से रहित मूर्ख भी ब्राह्मण होता था

(क) "कोई भी ब्राह्मण जो जन्म से ब्राह्मण है अर्थात् जिसने न तो वेदों का अध्ययन किया है और न वेदों द्वारा अपेक्षित कोई कर्म किया है, वह राजा के अनुरोध पर उसके लिए धर्म का निर्वचन कर सकता है अर्थात् न्यायाधीश के रूप में कार्य कर सकता है, लेकिन शूद्र यह कभी भी नहीं कर सकता, चाहे वह कितना ही विद्वान् क्यों न हो (मनु० ८.२०)।" (वही, खंड ७, पृ० ३१७; खंड ९, पृ० १०९, १७६; खंड १३, ३०)

(ख) "जिस प्रकार शास्त्रविधि से स्थापित अग्नि और सामान्य अग्नि दोनों ही श्रेष्ठ देवता हैं, उसी प्रकार चाहे वह मूर्ख हो या विद्वान्, दोनों ही रूपों में श्रेष्ठ देवता है (मनु० ९.३१७)।" (वही, खंड ७, पृ० २३०; खंड ६, पृ० १५५; १०१)

(१२) मनुस्मृति विषयक मान्यता

(अ) मनुस्मृति धर्मग्रन्थ और नीतिशास्त्र है

(क) "इस प्रकार मनुस्मृति कानून का ग्रन्थ है.......चूंकि इसमें जाति का विवेचन है जो हिन्दू धर्म की आत्मा है, इसलिए यह धर्मग्रन्थ है।" (वही, खंड ७, पृ० २२६)

(ख) "मनुस्मृति को धर्मग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।" (वही, खंड ७, पृ० २२८)

(ग) "अगर नैतिकता और सदाचार कर्त्तव्य है, तब निस्संदेह मनुस्मृति नीतिशास्त्र का ग्रन्थ है।" (वही, खंड ७, पृ० २२६)

(आ) मनुस्मृति धर्मग्रन्थ और नीतिशास्त्र नहीं है

(क) "यह कहना कि मनुस्मृति एक धर्मग्रन्थ है, बहुत कुछ अटपटा लगता है।" (वही, खंड ७, पृ० २२६)

(ख) "हम कह सकते हैं कि मनुस्मृति नियमों की एक संहिता है। यह कथन अन्य स्मृतियों के बारे में भी सच है। यह न तो नीतिशास्त्र है और न ही कोई धार्मिक ग्रन्थ है।" (वही, खंड ७, पृ० २२४)

(१३) समाज में पुजारी की आवश्यकता

(अ) पुजारी आवश्यक था बौद्ध धर्म के लिए

(क) बौद्ध धर्म के समर्थन में डॉ० अम्बेडकर लिखते हैं—"धर्म की स्थापना केवल प्रचार द्वारा ही की जा सकती है। यदि प्रचार असफल हो जाए तो धर्म भी लुप्त हो जाता है। पुजारी वर्ग, वह चाहे जितना भी घृणास्पद हो, धर्म के प्रवर्तन के लिए आवश्यक होता है। धर्म, प्रचार के आधार पर ही रह सकता है। **पुजारियों के बिना धर्म लुप्त हो जाता है।** इस्लाम की तलवार ने (बौद्ध) पुजारियों पर भारी आघात किया। इससे वह या तो नष्ट हो गया या भारत के बाहर चला गया।" (वही, खंड ७, पृ० १०८)

(आ) हिन्दू धर्म में पुजारी नहीं हो

हिन्दू धर्म का विरोध करते हुए वे लिखते हैं—

(क) "अच्छा होगा, यदि हिन्दुओं में पुरोहिताई समाप्त की जाए।" (वही, खंड १, पृ० १०१)

* * *

अध्याय दस

डॉ०अम्बेडकर के साहित्य में किस मनु का विरोध है?

(अ) प्राचीन मनुओं से भिन्न है डॉ. अम्बेडकर का मनु

डॉ. अम्बेडकर के साहित्य का मनु का समर्थनात्मक एवं सकारात्मक पहलू गत पृष्ठों में दिखाया गया है किन्तु दूसरा पहलू यह भी है कि उन्होंने अपने साहित्य में अनेक स्थलों पर 'मनु' का नाम लेकर कटु आलोचना भी की है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि यदि वे किसी मनु का समर्थन कर रहे हैं तो आलोचना किस 'मनु' की कर रहे हैं?

इसका उत्तर उन्होंने स्वयं दिया है। डॉ० अम्बेडकर के अनुयायी और मनु-विरोधियों को उस पर गम्भीरता से ध्यान देना चाहिए। उन्होंने मनुस्मृति-विषयक एक नयी मान्यता स्वीकृत की है। उस मान्यता को लेकर मतभेद हो सकता है, किन्तु उन्होंने इस स्वीकृति में यह स्पष्ट कर दिया कि मैं किस व्यक्ति का विरोध कर रहा हूँ। उनकी मान्यता है कि वर्तमान में उपलब्ध मनुस्मृति आदिकालीन मनु द्वारा रचित नहीं है, अपितु **पुष्यमित्र शुङ्ग (ई० पूर्व १८५) के काल में 'मनु सुमति भार्गव' नाम के व्यक्ति** ने इसको रचा है और उस पर अपना **छद्‌म नाम 'मनु' लिख** दिया है। वही सुमति भार्गव उनकी निन्दा और आलोचना का केन्द्र है। इस बात को उन्होंने दो स्थलों पर स्वयं स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं—

(क) "प्राचीन भारतीय इतिहास में 'मनु' आदरसूचक संज्ञा थी। इस संहिता (मनुस्मृति)को गौरव प्रदान करने के उद्देश्य से मनु को इसका रचयिता कह दिया गया। इसमें कोई शक नहीं है कि यह लोगों को धोखे में रखने के लिए किया गया। जैसी कि प्राचीन प्रथा थी, इस संहिता को भृगु के वंश नाम से जोड़ दिया गया।........इसमें हमें इस संहिता के लेखक के परिवार के नाम की जानकारी मिलती है। लेखक का व्यक्तिगत नाम इस पुस्तक में नहीं बताया गया है, जबकि कई लोगों को इसका ज्ञान था। लगभग चौथी शताब्दी में नारद

स्मृति के लेखक को मनुस्मृति के लेखक का नाम ज्ञात था। नारद के अनुसार 'सुमति भार्गव' नाम के एक व्यक्ति थे जिन्होंने मनु-संहिता की रचना की।......इस प्रकार **मनु नाम 'सुमति भार्गव' का छद्म नाम था और वह ही इसके वास्तविक रचयिता थे''** (अंबेडकर वाङ्मय, भाग ७, पृ. १५१)।

एक अन्य पुस्तक में वे लिखते हैं—''मनु के काल-निर्धारण के प्रसंग में मैंने संदर्भ देते हुए बताया था कि **मनुस्मृति का लेखन** ईसवी पूर्व १८५, अर्थात् पुष्यमित्र की क्रान्ति के बाद **सुमति भार्गव के हाथों हुआ था।''** (वही, भाग ७, पृ. ११६)

(ग) ''पाणिनि ईसा से ३०० वर्ष पहले हुआ। मनु ईसा के २०० वर्ष पूर्व हुआ।'' (वही, खंड ६, पृ० ५९)

(घ) ''मनु एक कर्मचारी था जिसे ऐसे दर्शन की स्थापना के लिए रखा गया था जो ऐसे वर्ग के हितों का पोषण करे जिस समूह में वह पैदा हुआ था और जिसका महामानव (ब्राह्मण) होने का हक उसके गुणहीन होने के बावजूद भी न छीना जाए।'' (वही, खंड 6, पृ० १५५)

उक्त उद्धरणों की समीक्षा से ये निष्कर्ष सामने आता है कि सृष्टि का आदिकालीन मनु स्वायंभुव या मनु वैवस्वत किसी के कर्मचारी नहीं थे, वे स्वयं चक्रवर्ती राजा (राजर्षि) थे। डॉ. अम्बेडकर का यह कथन उन पर लागू नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि यह कथन मनु नामधारी सुमति भार्गव के लिए है जो ई० पूर्व १८५ में राजा पुष्यमित्र शुङ्ग का कर्मचारी था। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर प्राचीन मनुओं का विरोध नहीं करते अपितु वे वस्तुतः पुष्यमित्र-कालीन मनु छद्म नामधारी सुमति भार्गव का विरोध करते हैं।

(ङ) ''बौद्ध धर्म के पतन के कारणों से सम्बन्धित तथ्यों को उस ब्राह्मण साहित्य से छान-बीन कर एकत्र किया जाना चाहिए, जो पुष्यमित्र की राजनीतिक विजय के बाद लिखा गया था। इस साहित्य को छह भागों में बांटा जा सकता है—(१) मनुस्मृति, (२) गीता, (३) शंकराचार्य का वेदान्त, (४) महाभारत, (५) रामायण और (६) पुराण।'' (वही, खंड ७, ब्राह्मण साहित्य, पृ० ११५)

डॉ० अम्बेडकर यदि उपलब्ध मनुस्मृति को ईसा पूर्व १८५ की

रचना मानते हैं और उसे 'मनु' छद्म नामधारी सुमति भार्गव रचित मानते है तो प्राचीन मनुओं ने कौन सा धर्मशास्त्र रचा? यह प्रश्न शेष रहता है। उसका उत्तर भी उन्होंने स्वयं दिया है। उनका कहना है—

(च) "वर्तमान मनुस्मृति से पूर्व दो अन्य ग्रन्थ विद्यमान थे। इनमें से एक **'मानव अर्थशास्त्र'** अथवा 'मानवराजशास्त्र' अथवा **'मानव राजधर्मशास्त्र'** के नाम से एक पुस्तक बतायी जाती थी। एक अन्य पुस्तक **'मानव गृह्यसूत्र'** के नाम से जानी जाती थी।" (वही, भाग ७, पृ. १५२)

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने आदिपुरुषों और आदि विधिप्रणेताओं प्राचीन-मनुओं और उन द्वारा रचित साहित्य की आलोचना नहीं की है उन्होंने १८५ ईस्वी पूर्व पुष्यमित्र शुङ्ग के काल में 'मनु' छद्म नामधारी सुमति भार्गव और उनके द्वारा रचित जाति-पांति विधायक स्मृति की आलोचना की है।

(आ) शोध निष्कर्ष

पाश्चात्य लेखकों की समीक्षा से प्रभावित होकर डॉ. अम्बेडकर ने मनुस्मृति का काल १८५ ई०पू० माना और इसका आद्य रचयिता 'सुमति भार्गव मनु' को माना। प्राचीन वैदिक ग्रन्थों की परम्परा का ज्ञान तथा उनका गम्भीर अध्ययन न होने के कारण डॉ० अम्बेडकर इस विषय का तथ्यात्मक चिन्तन नहीं कर सके। उनसे यह भूल हुई है। गत पुष्ट प्रमाणों के आधार पर वास्तविकता यह है कि मनुस्मृति मूलतः स्वायम्भुव मनु की रचना है। यह आदिकालीन है। जैसा कि एक स्थान पर डॉ० अम्बेडकर ने स्वयं लिखा है—

"इससे प्रकट होता है केवल मनु ने विधान बनाया। जो स्वायम्भुव मनु था।"(अंबेडकर वाङ्मय, खंड ८, पृ० २८३)

इस मनु तथा इसके धर्मशास्त्र का उल्लेख प्राचीनतम संहिताग्रन्थों, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, बौद्धसाहित्य, जैनसाहित्य, पुराणों और प्राचीन शिलालेखों में आता है जो ईसापूर्व की कृतियां हैं। अतः मनुस्मृति को मूलतः और पूर्णतः सुमति भार्गव की आद्य रचना मानना एक ऐतिहासिक भूल है तथा साहित्यिक परम्परा के विपरीत है। वंश-परम्परा और काल-परम्परा की कसौटी पर भी यह स्थापना गलत सिद्ध होती है।

डॉ० अम्बेडकर ने जिस सुमति भार्गव का उल्लेख किया है, उन्होंने लिखा है कि उसकी चर्चा नारद-स्मृति में आती है। यह अनुमान विश्वास किये जाने योग्य है कि बौद्ध धर्म के ह्रास के बाद, ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुङ्ग (१८५ ई०) के द्वारा अपने राजा की हत्या करके स्वयं को राजा घोषित करने के उपरान्त, उसके द्वारा जब ब्राह्मणवाद की पुनः स्थापना हुई, तब सुमति भार्गव ने मनुस्मृति में पर्याप्त परिवर्तन-परिवर्धन किये हों और उसका एक नया संस्करण तैयार किया हो जिसमें वर्णव्यवस्था पर जन्मना जातिवाद की स्थापना करने की कोशिश की गयी है। यही कारण है कि मनुस्मृति में दोनों सिद्धान्तों का विधान करने वाले परस्पर-विरोधी श्लोक साथ-साथ पाये जाते हैं।

डॉ० अम्बेडकर यदि इस पक्ष का विशेष विचार कर लेते कि मनुस्मृति में एक ओर गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित व्यवस्था वाले, शूद्र और नारियों के पक्षधर, न्यायपूर्ण श्लोक हैं, जिनका कि स्वयं उन्होंने भी समर्थन किया है तथा दूसरी ओर जाति-पांति, ऊंच-नीच, छूत-अछूत वर्णक एवं पक्षपातपूर्ण श्लोक हैं; किसी विद्वान् की रचना में यह दोष संभव नहीं है, फिर मनुस्मृति में क्यों हैं? तब उन्हें स्वतः उत्तर मिल जाता कि इसमें बाद के लोगों ने प्रक्षेप किये हैं। डॉ० अम्बेडकर ने वेदों में पुरुष—सूक्त को प्रक्षिप्त माना, रामायण, महाभारत, गीता, पुराणों में प्रक्षेप होना स्वीकार किया, किन्तु मनुस्मृति में प्रक्षेपों का होना नहीं माना। यह न केवल आश्चर्यपूर्ण है, अपितु रहस्यमय भी है!! उन्होंने ऐसा क्यों नहीं स्वीकार किया, यह विचारणीय है ! उन्होंने इस विसंगति का उत्तर भी नहीं दिया कि मनुस्मृति में प्रकरणविरोधी और परस्परविरोधी श्लोक क्यों हैं? यदि वे इस बात का उत्तर देने को उद्यत होते तो उन्हें प्रक्षेपों की सच्चाई को स्वीकार करना ही पड़ता। फिर उन्हें मनु का **'विरोध के लिए विरोध'** करने का विचार त्यागना पड़ता। यदि ऐसा होता तो क्या ही अच्छा होता!

(इ) संदेश-सार

अस्तु, इस विषय को और अधिक लंबा न करके डॉ० अम्बेडकर की पूर्वोक्त मान्यताओं पर आते हैं जिनसे हमें ये संदेश मिलते हैं—

१. डॉ० अम्बेडकर का नाम लेकर बात-बात पर मनु एवं

मनुस्मृति का विरोध करने और मनुवाद का नारा देने वाले उनके अनुयायियों का कर्त्तव्य बनता है कि उनकी इस विषयक स्पष्ट मान्यता आने के बाद अब उसे ईमानदारी से स्वीकार करें और आचरण में लायें। उन्हें स्पष्ट करना चाहिए कि वे आदिपुरुष मनु का नहीं, अपितु छद्म नामधारी सुमति भार्गव का विरोध कर रहे हैं।

अब उन्हें 'मनु' और 'मनुवाद' शब्दों का प्रयोग छोड़कर 'सुमति भार्गव' और '**सुमति भार्गववाद**' शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि 'मनु' प्रयोग से भ्रान्ति फैलती है और निर्दोष आदि—पुरुषों का देश-विदेश में अपमान होता है। ऐसा करना अपने आदिपुरुषों के साथ अन्याय है। इस बात को यदि हम इस प्रकार समझें तो बात आसानी से समझ में आ जायेगी। जैसे, आज कोई व्यक्ति 'अम्बेडकर' छद्म नाम रखकर जाति-पांति, ऊंच-नीच आदि कुप्रथाओं का समर्थक ग्रन्थ लिख दे, तो उसे संविधान प्रस्तोता अम्बेडकर का ग्रन्थ कहना और उस विचारधारा को 'अम्बेडकरवाद' कहना अनुचित होगा, उसी प्रकार जाति-पांति विषयक श्लोकों को 'मनुरचित' कहना या 'मनुवाद' कहना अनुचित है। क्योंकि आदिकालीन मनुओं के समय जाति-पांति नहीं थी, और जाति-पांति जब चली तब उन मनुओं का अस्तित्व नहीं था।

२. उन्हें यह स्पष्ट बताना चाहिए कि हम उस 'मनु' छद्मनामधारी सुमति भार्गव रचित स्मृति के उन अंशों का विरोध कर रहे हैं जिसमें जातिवाद का वर्णन है और जो १८५ ईसवी पूर्व लिखे गये थे। डॉ० अम्बेडकर ने इसी सुमति भार्गव का विरोध किया है। साथ ही यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि उन द्वारा प्रयुक्त 'मनु' नाम इसी व्यक्ति का छद्म नाम है।

३. डॉ० अम्बेडकर ने शूद्रों के भी ''आदरणीय'' ''आदिपुरुष'' मनु या मनुओं का कहीं भी विरोध कर उन्हें अपमानित नहीं किया, अपितु तत्कालीन व्यवस्था की प्रशंसा ही की है। डॉ० अम्बेडकर का लक्ष्य यह नहीं था। डॉ० अम्बेडकर के अनुयायियों को भी अपने 'आदिपुरुष' मनुओं का विरोध त्याग देना चाहिए।

४. डॉ० अम्बेडकर ने जिस छद्म नामधारी 'मनु' का विरोध किया है उस पर आरोप है कि उसने शूद्रों के लिए अत्याचार और

अन्यायपूर्ण तथा अमानवीय व्यवस्थाएं निर्मित कीं, जिनके कारण शूद्र पिछड़ते चले गये और दलित हो गये। कोई कितनी भी निन्दा करे किन्तु जब भी दो विचारधाराओं में टकराव होता है तब विजेता विजित पर बदले की भावना से या आक्रोश में अमानवीय व्यवहार करता है और विपक्षी का भरसक दमन करता है। गत कुछ सहस्राब्दियों में ऐसा यदि ब्राह्मणों ने शूद्रों के साथ किया तो शूद्रों ने ब्राह्मणों के भी साथ किया। डॉ० अम्बेडकर ने माना है कि **''इसके पश्चात् मौर्य हुए जिन्होंने ईसा पूर्व ३२२ से ईसा पूर्व १८३ शताब्दी तक शासन किया, वे भी शूद्र थे।'' ''इस प्रकार लगभग १४० वर्षों तक मौर्य साम्राज्य रहा, ब्राह्मण दलित और दलितवर्गों की तरह रहे। बेचारे ब्राह्मणों के पास बौद्ध साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं था। यही विशेष कारण था, जिससे पुष्यमित्र ने मौर्यसम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व किया।** (वही, भाग ७, 'शूद्र और प्रतिक्रान्ति', पृ० ३२३, ब्राह्मणवाद की विजय, पृ० १४९)

(५) जो कुछ हुआ, वह वैचारिक वर्गसंघर्ष का परिणाम था। अपने-अपने समय में दोनों ने एक-दूसरे को '**दलित**' बनाने में कोई कसर नहीं रखी। लेकिन दोनों को आज उस अतीत को भुलाकर लोकतान्त्रिक ढंग से रहना होगा। आज भारत में लोकतन्त्र—प्रणाली है और शासन-प्रशासन एक नये संविधान के अनुसार चलता है। इस प्रणाली में सभी समुदायों और महापुरुषों के लिए समान स्थान है। बात-बात पर किसी समुदाय या महापुरुष का विरोध करना और असहनशीलता का प्रदर्शन करना, कदापि उचित नहीं माना जा सकता। इससे एक नये वर्गसंघर्ष की आशंका बढ़ती जायेगी जो समरसता, सुधारीकरण की प्रक्रिया और लोकतन्त्र-प्रणाली के लिए अशुभ सिद्ध होगी।

६. जो लोग अपने को 'शूद्र' समझते हैं और अभी तक किसी कारण से स्वयं को 'शूद्रकोटि' में मानकर मानवीय स्वाभाविक अधिकारों से वंचित रखा हुआ है, मनु को धर्मगुरु मानने वाला और मनु के सिद्धान्तों तथा व्यवस्थाओं पर चलने वाला महर्षि दयानन्द द्वारा प्रवर्तित 'आर्यसमाज' योग्यतानुसार किसी भी वर्ण में दीक्षित होने का उनका आह्वान करता है और उन्हें व्यावहारिक अवसर देता है। जब आज का संविधान नहीं बना था, उससे बहुत पहले महर्षि दयानन्द

ने मनुस्मृति के आदेशों के परिप्रेक्ष्य में छूत-अछूत, ऊंच-नीच, जाति-पांति, नारी-शूद्रों को न पढ़ाना, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, बहु-विवाह, सतीप्रथा, शोषण आदि को समाजिक बुराइयां घोषित करके उनके विरुद्ध संघर्ष का आह्वान किया था। नारियों के लिए गुरुकुल और विद्यालय खोले। अपनी शिक्षा संस्थाओं में कथित शूद्रों को प्रवेश दिया। परिणामस्वरूप वहां से शिक्षित सैकड़ों दलित युवक-युवतियां संस्कृत एवं वेद-शास्त्रों के विद्वान् स्नातक बन चुके हैं।

दलित जाति के लोग क्यों भूलते हैं कि उनकी अस्पृश्यता को मिटाने के लिए मनु के अनुगामी ऋषि दयानन्द के शिष्य कितने ही आर्यसमाजी स्वयं 'अस्पृश्य' बन गये थे, किन्तु उन्होंने अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष को नहीं छोड़ा। आज आर्यसमाज का वह संघर्ष स्वतन्त्र भारत का आन्दोलन बन चुका है। आज भी आर्यसमाज का प्रमुख लक्ष्य जातिभेद-उन्मूलन और सबको शिक्षा का समान अधिकार दिलाना है। दलित जन आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश लेकर भेदभाव रहित परिवेश में वेदादिशास्त्रों का अध्ययन कर सकते हैं। आर्यसमाज सिद्धान्त और मानवीय, दोनों आधारों पर दलित एवं पिछड़े वर्गों का स्वाभाविक हितैषी है। जो दलित या अन्य लेखक दलितोत्थान में आर्यसमाज के योगदान से अनभिज्ञ रहकर आर्यसमाज पर भी संदेहात्मक प्रतिक्रिया करते हैं, यह उनकी अकृतज्ञता ही कही जायेगी।

बुद्धिमानी इसी में है कि दोनों को मिलकर अमानवीय व्यवस्थाओं, सामाजिक कुप्रथाओं, रूढ़- परम्पराओं तथा कुरीतियों के विरुद्ध प्रयत्न जारी रखने चाहियें। बहुत-सी कुप्रथाएं नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी हैं, शेष भी हो जायेंगी। परस्पर आरोप-प्रत्यारोप में उलझने तथा प्रतिशोधात्मक मानसिकता अपनाने के बजाय, आइए, उस रूढ़-विचारधारा के विरुद्ध मिलकर संघर्ष करें। जिस विचारधारा ने संस्कृति और मानवता को कलंकित किया है, समाज को विघटित किया है, राष्ट्र को खण्डित किया है और जिसने असंख्य लोगों के जीवन को असमानता के नरक में धकेल कर नारकीय जीवन जीने को विवश किया है। आइए, उस नरक को स्वर्ग में बदलने का संकल्प लें।

* * *

प्रमाण-अनुक्रमणिका

संक्षिप्त पदानुक्रमणी

अ०	अध्याय	अ०	अध्याय
अथर्व०	अथर्ववेद	प्र०अ०	प्रकरण, अध्याय
अनु०	अनुशासन पर्व	बाल०	बालकाण्ड
अयो०	अयोध्याकाण्ड	बृह०उप०	बृहदारण्यकउपनिषद्
अष्टा०	अष्टाध्यायी	बृह० स्मृति	बृहस्पतिस्मृति
आदि०	आदि पर्व	ब्रह्माण्ड०	ब्रह्माण्ड पुराण
ई०पू०	ईसवी पूर्व	भागवत०	भागवत पुराण
उ० पर्व	उत्तर पर्व	मनु०	मनुस्मृति
उप०	उपनिषद्	महा०	महाभारत
ऋग्०	ऋग्वेद	मार्कण्डेय०	मार्कण्डेय पुराण
काठक०	काठक ब्राह्मण	वा०रामा०	वाल्मीकि-रामायण
किष्कि०	किष्किन्धाकाण्ड	वायु०	वायु पुराण
तैत्ति०ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण	विष्णु०	विष्णु पुराण
तैत्ति०सं०	तैत्तिरीय संहिता	यजु०	यजुर्वेद
निरु०	निरुक्त	याज्ञ० स्मृति	याज्ञवल्क्य स्मृति
पृ०	पृष्ठ	शान्ति०	शान्ति पर्व

जी हाँ, डॉ० अम्बेडकर ने कहा है—

- "एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जातिप्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी।" (पृष्ठ ११३)
- "प्राचीन भारतीय इतिहास में मनु आदरसूचक संज्ञा थी।" (पृ० ११)
- "बौद्ध पूर्व समय में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था एक उदार व्यवस्था थी और उसमें गुंजाइश थी। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में वर्णों में आपस में विवाह सम्बन्ध करने पर कोई निषेध नहीं था।" (पृ० १११)
- "मैं मानता हूं कि स्वामी दयानन्द व कुछ अन्य लोगों ने वर्ण के वैदिक सिद्धान्त की जो व्याख्या की है, वह बुद्धिमत्ता पूर्ण है और घृणास्पद नहीं है।" (पृ० २१७)
- "वर्ण और जाति दो अलग-अलग धारणाएं हैं। वर्ण इस सिद्धान्त पर टिका हुआ है कि प्रत्येक जन्म के अनुसार। दोनों में इतना ही अन्तर है जितना पनीर और खड़िया में।" (पृ० ८९)
- "धर्मसूत्रों की यह बात कि शूद्र अनार्य हैं, नहीं माननी चाहिए। यह सिद्धान्त मनु तथा कौटिल्य के विपरीत है।" (पृ० १३१)
- "शूद्र वेदों का अध्ययन कर सकते थे। कुछ ऐसे शूद्र भी थे जिन्हें ऋषि-पद प्राप्त था।" "ऐसे भी प्रमाण हैं कि शूद्र स्त्री ने 'अश्वमेध' नामक यज्ञ में भाग लिया था।" (पृ० २१९)
- "अन्य समाजों के समान भारतीय समाज भी चार वर्णों में विभाजित था।.......वर्ण विभाजन के अन्तर्गत व्यक्ति दक्षता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था।" (पृ० २१६)
- "कहा जाता है कि जाति, वर्णव्यवस्था का विस्तार है। बाद में मैं बताऊंगा कि यह बकवास है। जाति वर्ण का विकृत स्वरूप है। जात-पांत ने वर्णव्यवस्था को पूरी तरह विकृत कर दिया है।" (पृ० ११४)
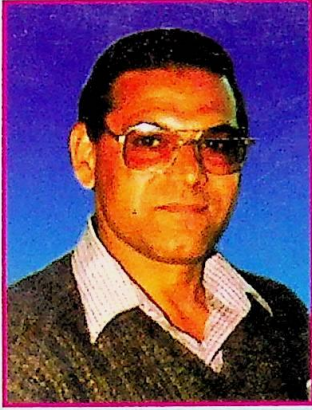
लेखक का जीवनवृत्त

हरियाणा प्रान्त के गांव-मकड़ौली, जिला-रोहतक में, श्री गहरसिंह जी एवं माता श्रीमती शान्तिदेवी के यहा जन्मप्राप्त डॉ० सुरेन्द्रकुमार संस्कृत तथा हिन्दी-साहित्य के चिन्तक हैं। आपने प्रक्षिप्त विषयों के शोध को एक नयी दिशा दी है।

आपने विभिन्न संस्थाओं में रहकर संस्कृत तथा हिन्दी का गम्भीर एवं व्यापक अध्ययन किया है। सभी परीक्षाओं में आपका शैक्षिक स्तर अति-उत्तम रहा है। महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर (हरियाणा) से व्याकरण, दर्शन, निरुक्त में 'आचार्य' तथा 'वेदवाचस्पति' परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) से विद्याभास्कर और गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार से एम.ए. हिन्दी उपाधि विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान पर रहकर प्राप्त की। पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से एम.ए. संस्कृत तथा पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

आप पैंतीस वर्षों से महाविद्यालयों में प्राध्यापक के रूप में अध्यापनरत हैं। आपकी दस पुस्तकें तथा एक सौ से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। सम्पादित ग्रन्थ इनके अतिरिक्त हैं। आकाशवाणी पर आधा दर्जन के लगभग वार्ताएं प्रसारित हो चुकी हैं। 'मनु का विरोध क्यों' पुस्तक हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती आदि कई भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है। 'विशुद्ध मनुस्मृति' मराठी तथा गुजराती में अनूदित होकर प्रकाशित हो चुकी है।

आप द्वारा मनुस्मृति में प्रक्षेपों पर किया गया अनुसन्धान कार्य साहित्यिक मानदण्डों पर आधारित नया शोध है। वह इतना प्रशंसनीय, उल्लेखनीय एवं प्रामाणिक है कि उसने आपको देश-विदेश में ख्याति दिलाई है। आज आपके भाष्ययुक्त मनुस्मृति सर्वाधिक पढ़ी जाती है। उसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

लेखन कार्य पर अब तक आपको राष्ट्रीय और प्रान्तीय स्तर के नौ पुरस्कार/सम्मान प्राप्त हो चुके हैं, जिनमें आर्यसमाज सान्ताक्रुज, मुम्बई में प्रदत्त 'मेघजी भाई आर्य साहित्य लेखक पुरस्कार' तथा श्री विक्रम प्रतिष्ठान (अमेरिका) द्वारा प्रदत्त 'वेदवागीश पुरस्कार' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत कृति आपके गम्भीर, व्यापक एवं तार्किक अध्ययन का निष्कर्ष है।

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी; 011-65845599, 9313784272